ISSN-0971-8397

योजना

विशेषांक जनवरी 2012 विकास को समर्पित मासिक ₹ 20

त्वरित, सतत और अधिक समावेशी विकास

12 वीं पंचवर्षीय योजना की दृष्टि

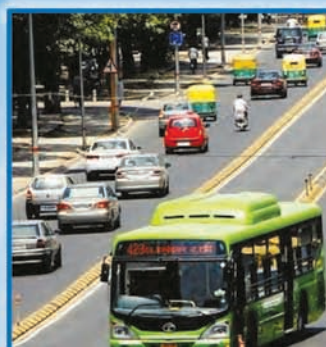

विगत पंचवर्षीय योजनाओं में क्षेत्रवार विकासदर और बारहवीं योजना के लक्ष्य

		9वीं योजना	10वीं योजना	11वीं योजना	12वीं योजना	
					9.0% लक्ष्य	9-5% लक्ष्य
1.	कृषि, वानिकी एवं मत्स्यपालन	2.5	2.3	3.2*	4.0	4.2
2.	खनन	4.0	6.0	4.7	8.0	8.5
3.	उत्पादन	3.3	9.3	7.7	9.8	11.5
4.	बिजली, गैस एवं जल आपूर्ति	4.8	6.8	6.4	8.5	9.0
5.	निर्माण	7.1	11.8	7.8	10.0	11.0
	6. व्यापार, होटल एवं रेस्तरां	7.5	9.6	7.0		
	7. परिवहन, भंडारण एवं संचार	8.9	13.8	12.5		
6–7.	व्यापार, होटल आदि + परिवहन, संचार व भंडारण	8.0	11.2	9.9	11.0	11.2
8.	वित्त, बीमा, भवन निर्माण एवं व्यावसायिक क्षेत्र	8.0	9.9	10.7	10.0	10.5
9.	सामुदायिक, सामाजिक और निजी सेवाएं	7.7	5.3	9.4	8.0	8.0
	सकल जीडीपी	**5.5**	**7.8**	**8.2**	**9.0**	**9.5**
	उद्योग	4.3	9.4	7.4	9.6	10.9
	सेवाएं	7.9	9.3	10.0	10.0	10.0

टिप्पणी : *पिछले वर्ष के कृषि क्षेत्र के जीडीपी विकासदर का संशोधित आंकड़ा आने तथा वर्ष 2011–12 के दौरान अपेक्षित बेहतर कृषि उपज के कारण 11वीं योजना का औसत 3.3–3.5 प्रतिशत के स्तर तक ऊपर जा सकता है।*

स्रोत : *12वीं पंचवर्षीय योजना का दृष्टिपत्र, योजना आयोग, भारत सरकार*

योजना

वर्ष : 56 • अंक : 1 • जनवरी 2012 • पौष-अग्रहायण, शक संवत 1933 • कुल पृष्ठ : 76

प्रधान संपादक
रीना सोनोवाल कौली

संयुक्त निदेशक
स्नेह राय

वरिष्ठ संपादक
राकेशरेणु

संपादक
रेमी कुमारी

संपादकीय कार्यालय

538, योजना भवन, संसद मार्ग,
नयी दिल्ली-110 001
दूरभाष : 23717910, 23096738
टेलीफैक्स : 23359578
ई-मेल : exeed.yojana@gmail.com
yojanahindi@gmail.com
वेबसाइट : www.yojana.gov.in
www.publicationsdivision.nic.in
a) dpd@nic.in
b) dpd@hub.nic.in

संयुक्त निदेशक (उत्पादन)
बी.के. मीणा

व्यापार व्यवस्थापक (प्रसार एवं विज्ञापन)
सूर्यकांत शर्मा
दूरभाष : 26100207, 26105590
फैक्स : 26175516
ई-मेल : pdjucir_jcm@yahoo.co.in

आवरण : **विमल मोहन ठाकुर**

इस अंक में

संपादकीय	–	5
संपन्न, समावेशी, धर्मनिरपेक्ष और बहुलतावादी राष्ट्र निर्माण की ओर	डॉ. मनमोहन सिंह	6
परिदृश्य और नीतिगत चुनौतियां	मोंटेक सिंह अहलुवालिया	9
कृषि का सतत विकास	एम.एस. स्वामीनाथन	25
दृष्टिपत्र में कृषि : कुछ और विचार	योगिन्दर के अलघ	29
बारहवीं योजना में जनस्वास्थ्य	ए.के. अरुण	33
बुनियादी ढांचा में निवेश की समीक्षा और संभावनाएं	मनोज सिंह	37
परिवहन क्षेत्र के लिए दीर्घकालीन योजना	कैलाश चन्द्र पपनै	41
पंचवर्षीय योजनाओं का मूल्यांकन और भविष्य	अशिमा गोयल	45
भ्रष्टाचार और बारहवीं पंचवर्षीय योजना	बिबेक देवरॉय	49
लक्ष्य मुश्किल तो है	रहीस सिंह	51
कृषि का ऊंचा उठता मुकाम	वेद प्रकाश अरोड़ा	54
खाद्य सुरक्षा के लिए मज़बूत पीडीएस	अमरेन्द्र कुमार राय	59
शोध यात्रा : गन्ना आधारित बहुउद्देशीय कृषि यंत्र	–	61
कर्मयोग की दिव्य लौ - गांधी	सरोज कुमार शुक्ल	63
विवेकानंद और गांधी : आधुनिक सभ्यता के स्वीकार से इंकार का सफ़र	सरोज कुमार वर्मा	66
नये प्रकाशन : आर्थिक संवृद्धि एवं विकास का सच	उत्पल कुमार	71

योजना **हिंदी के अतिरिक्त असमिया, बांग्ला, अंग्रेजी, गुजराती, कन्नड़, मलयालम, मराठी, तमिल, उड़िया, पंजाबी, तेलुगु तथा उर्दू भाषाओं में भी प्रकाशित की जाती है। पत्रिका मंगवाने हेतु, नयी सदस्यता, नवीकरण, पुराने अंकों की प्राप्ति एवं एजेंसी आदि के लिए मनीआर्डर/डिमांड ड्राफ्ट/पोस्टल आर्डर 'महानिदेशक, प्रकाशन विभाग' के नाम से बनवा कर निम्न पते पर भेजें : व्यापार व्यवस्थापक (प्रसार एवं विज्ञापन), प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड IV, तल VII, आर.के.पुरम, नयी दिल्ली-66 दूरभाष :** 26100207, 26105590 तार : सूचनाप्रकाशन।

सदस्य बनने अथवा पत्रिका मंगाने के लिए आप हमारे निम्नलिखित बिक्री केंद्रों पर भी संपर्क कर सकते हैं : सूचना भवन, सीजीओ कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड, नयी दिल्ली-110003 (दूरभाष : 24367260, 5610), हाल सं. 196, पुराना सचिवालय, दिल्ली-110054 (दूरभाष : 23890205) * 701, सी- विंग, सातवीं मंजिल, केंद्रीय सदन, बेलापुर, नवी मुंबई-400614 (दूरभाष : 27570686) * 8, एसप्लानेड ईस्ट, कोलकाता-700069 (दूरभाष : 22488030) * 'ए' विंग, राजाजी भवन, बंसल नगर, चेन्नई-600090 (दूरभाष : 24917673) * प्रेस रोड नयी गवर्नमेंट प्रेस के निकट, तिरुवनंतपुरम-695001 (दूरभाष : 2330650) * ब्लॉक सं-4, पहला तल, गृहकल्प, एमजी रोड, नामपल्ली, हैदराबाद-500001 (दूरभाष : 24605383) * फर्स्ट फ्लोर, 'एफ' विंग, केंद्रीय सदन, कोरामंगला, बंगलुरु-560034 (दूरभाष : 25537244) * बिहार राज्य कोऑपरेटिव बैंक भवन, अशोक राजपथ, पटना-800004 (दूरभाष : 2683407) * हॉल सं-1, दूसरा तल, केंद्रीय भवन, सेक्टर-H, अलीगंज, लखनऊ-226024 (दूरभाष : 2225455) * अंबिका कॉम्प्लेक्स, फर्स्ट फ्लोर, पाल्दी, अहमदाबाद-380007 (दूरभाष : 26588669) * के.के.बी. रोड, नयी कॉलोनी, मकान संख्या-7, चेनीकुटी, गुवाहाटी-781003 (दूरभाष : 2665090)

चंदे की दरें : वार्षिक : ₹ 100 **द्विवार्षिक :** ₹ 180; **त्रैवार्षिक :** ₹ 250; **विदेशों में वार्षिक दरें : पड़ोसी देश:** ₹ 500; **यूरोपीय एवं अन्य देश :** ₹ 700। ***योजना*** में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। ज़रूरी नहीं कि ये लेखक भारत सरकार के जिन मंत्रालयों, विभागों अथवा संगठनों से संबद्ध हैं, उनका भी यही दृष्टिकोण हो। पत्रिका में प्रकाशित विज्ञापनों की विषयवस्तु के लिए *योजना* उत्तरदायी नहीं है।

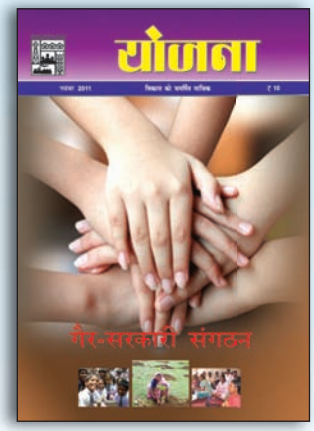

आपकी राय

प्रतियोगियों के लिए जरूरी पत्रिका

मैं *योजना* का विगत दो वर्षों से नियमित पाठक हूं। मैं भारतीय प्रशासनिक सेवा की तैयारी में जुटा हूं। प्रतियोगी परीक्षाओं में सफलता के लिए मानक पुस्तकों व पत्रिकाओं का अध्ययन अपरिहार्य होता है और इसमें *योजना* सर्वप्रमुख है। *योजना* अपने आप में परिपूर्ण व प्रतियोगियों की पोषक पत्रिका है। इसका हर अंक एक खास विषयवस्तु पर केंद्रित होता है। *योजना* विशेषज्ञों के सारगर्भित, विश्लेषणात्मक व अद्यतन लेखों से सराबोर होती है।

पत्रिका का सार संपादकीय में मिलता है, जो पाठक को विश्लेषणात्मक अध्ययन करने तथा सारगर्भित व सर्वोत्कृष्ट लेखन के लिए प्रेरित करता है। ❑

गोपाल पंवार
रावतसर, बाड़मेर, राजस्थान
ई-मेल: gopal.panwar.bmr@gmail.com

विकास के लिए गैर-सरकारी संगठन

योजना का नवंबर अंक, जोकि गैर-सरकारी संगठन पर केंद्रित है, पढ़ा।

प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से यह कई दशकों से अपनी जिम्मेदारी निभा रहे हैं, चाहे वह सरकारी विभागों की ही जिम्मेदारी क्यों न हो। ये संगठन देश के विभिन्न क्षेत्रों में, ख़ासकर शिक्षा, स्वास्थ्य, पर्यावरण, बाल-अधिकार तथा मानवाधिकार जैसे महत्वपूर्ण विभागों में अपनी सक्रियता एवं उपस्थिति दर्ज़ करा रहे हैं।

सरकार ने भी इनकी सक्रियता तथा भागीदारी को देखते हुए कई महत्वपूर्ण क़दम उठाए हैं, जो स्वयंसेवी संगठन की भावी संभावनाओं को इंगित करते नज़र आते हैं। यहां इस बात की आवश्यकता है कि सरकार एवं स्वयंसेवी संगठनों के बीच तालमेल की स्थिति बने। यदि ऐसी समन्वयपूर्ण स्थिति व्यावहारिक रूप से सामने आए तो वह दिन दूर नहीं जब हमारे देश की अर्थव्यवस्था विकसित देशों की तरह उन्नत एवं शक्तिशाली हो जाएगी। अतएव, ऐसे संगठनों की भूमिका को नया आयाम देने की आवश्यकता तो है ही साथ ही इनकी निगरानी के लिए सरकारी एवं गैर-सरकारी स्तर पर प्रयास किया जाना चाहिए ताकि वे अपने सुनियोजित कार्यक्रमों के अनुसार सक्रिय रूप से काम कर सकें तथा देश के विकास कार्यक्रमों में अपनी सार्थक भागीदारी सुनिश्चित कर सकें। ❑

राकेश कुमार
बिहार शरीफ, नालंदा, बिहार

बुढ़ापा अभिशाप नहीं वरदान

योजना का नवंबर अंक पढ़ा। वैसे तो पूरा अंक ज्ञानप्रद है, परंतु सरोज कुमार शुक्ल का आलेख 'अकेलेपन का सन्नाटा' बहुत अच्छा लगा। उम्र का बढ़ना एक निरंतर सिलसिला है, जिसमें कई पड़ाव आते हैं। इनमें एक पड़ाव है– वृद्धावस्था। शारीरिक कमज़ोरी व दवाइयों के साथ ही अपनों का बेगानों जैसा व्यवहार के कारण बुढ़ावा अभिशाप बन जाता है। वास्तव में बुढ़ावा अभिशाप नहीं वरदान है। जिस चश्मो-चिराग़ को खूने ज़िगर से सींचा गया हो, अगर वह अपने मां-बाप से दुर्व्यवहार करे तो उस मां-बाप के दिल पर क्या गुज़रती होगी?

पैग़म्बर मोहम्मद का फरमान है कि "मां के क़दमों के नीचे जन्नत है और पिता जन्नत का दरवाज़ा है।" मां-बाप का दर्ज़ा कितना बुलंद है इसका अंदाज़ा आप इस हदीसे पाक से लगा सकते हैं: "जिसने अपने मां-बाप को सताया, उसे जन्नत नसीब नहीं हो सकेगी।" यह किसी दुनियादार का फरमान नहीं है, बल्कि दो आलम के ताज़दार का फरमान है। इसलिए हमसे जितना हो सके अपना जीवन मां-बाप व अपने बड़े-बुजुर्गों की ख़िदमत में लगाना चाहिए। दुनिया में जितने भी महान लोग हुए उनके लिए वालिदैन की दुआ ज़रूर वसीला बनी है। ❑

दिलाबर हुसैन कादरी
मेहराबाद, जैसलमेर, राजस्थान

बड़े-बूढ़ों की बढ़ती उपेक्षा

योजना के नवंबर अंक में प्रकाशित लेख 'अकेलेपन का सन्नाटा' पढ़कर परिवार के प्रति बड़े-बुजुर्गों के योगदान, उनके अनुभवों के ख़ज़ाने से लाभ उठाने व उनकी उचित देखभाल के प्रति वर्तमान पीढ़ी की उदासीनता से अवगत हुआ। आज हमारे समाज में जो बदलाव देखे जा रहे हैं, इससे स्पष्ट है कि युवा वर्ग को अपने बड़े-बुजुर्गों की तनिक भी परवाह नहीं है। आधुनिकता के रंग-ढंग में डूबे युवाओं को पारिवारिक मान-मर्यादा, परंपरा और प्रथाओं की कोई परवाह नहीं है। वे सारे पारिवारिक संस्कारों को भूल गए हैं। आज की युवा पीढ़ी उन लोगों की देन है जिन्होंने अपने बच्चों को संस्कारों एवं परंपराओं की कोई शिक्षा नहीं दी और न ही सामाजिक आदर्श तथा नैतिकता का कोई पाठ पढ़ाया। इसी लापरवाही का नतीज़ा है कि आज का युवा वर्ग अपनी पत्नी और बच्चों के पालन-पोषण तक को ही अपना दायित्व समझते हैं। निज़ी स्वार्थों की पूर्ति के लिए कभी माता-पिता तो कभी परिवार के किसी दूसरे सहभागी के हक़-हनन की ललक में हत्याएं

तक करने लगे हैं। इसे रोकने के लिए हमें बच्चों को नैतिक मानदंडों से युक्त शिक्षा-दीक्षा देनी होगी, जिससे वे अपने सामाजिक मूल्यों, परंपराओं, आदर्शों और नैतिक मानदंडों के प्रति संवेदनशील बने रहें। ❑

चंद्रकान्त यादव
चांदीतारा, चंदौली, उ.प्र.

अभी बहुत कुछ करना बाकी

गैर-सरकारी संगठनों पर केंद्रित *योजना* का नवंबर अंक पढ़ने को मिला। अंक पढ़ने के बाद मेरा पूर्वाग्रह काफी हद तक दूर हो गया। दरअसल, स्वयंसेवी संगठन अस्तित्व में आते तो बहुत अच्छे उद्देश्यों के लिए हैं, लेकिन जब इसकी कमान कालांतर में अविश्वसनीय, अयोग्य, लालची किस्म के प्रशासकों के हाथों में आ जाती है तब संगठनों में वहम का बीजारोपण अनायास ही हो जाता है, जो आगे जाकर सारे किए-कराए पर पानी फेर देता है। आज देश में जितने भी स्वयंसेवी संगठन हैं, वे न तो पूर्ण रूप से विकसित हैं और न ही योग्य। ये न तो विकास कर सकते हैं और न ही पूर्णरूपेण नष्ट होते हैं। इनके कर्ता-धर्ताओं में जो कीटाणु रूपी जीव होते हैं, उनकी लालची महत्वाकांक्षा, घटिया मानसिकता के विकास के पोषण का वे महत्वपूर्ण साधन बने हुए हैं, जबकि सरकारी संगठन पर सरकार का वरदहस्त होने से ये कई गुना ज्यादा प्रभावकारी एवं असरकारक हैं। आवश्यकता इस बात की है कि महत्वपूर्ण विकासपरक संगठनों को उत्साहित किया जाए। ❑

सुखदेव सिसौदिया
जेरला, बाड़मेर, राजस्थान

आविष्कार के लिए ज़रूरी लगन

नवंबर अंक पढ़ा। इससे गैर-सरकारी संगठनों के बारे में विस्तृत जानकारी मिली। 'भारत में स्वैच्छिक संगठनों का भविष्य' शीर्षक लेख अच्छा लगा। रहीस सिंह का लेख 'विश्व-व्यवस्था के साथ चलते एनजीओ' से दुनिया के कुछ बड़े स्वयंसेवी संगठनों के बारे में जानकारी मिली। 'भारत में स्वयंसेवी संगठनों पर विहंगम दृष्टि', शीर्षक लेख में लेखकद्वय जोमोन मैथ्यू एवं जोबी वर्गीज ने स्वयंसेवी संगठनों के बारे में विस्तृत जानकारी दी है। 'ग्रामीण विकास और स्वयंसेवी संगठन' लेख में लेखक ने बताया है कि ग्रामीण विकास में स्वयंसेवी संगठनों की भूमिका क्या हो सकती है।

'पंचायती व्यवस्था ने बदला कश्मीरी समाज का नज़रिया' शीर्षक लेख से ज्ञात होता है कि कश्मीरी समाज उग्रवाद से तंग आ गया है, और अब वह विकास चाहता है। इसका सबसे अच्छा साधन लोकतंत्र है, जिसमें सभी के विकास के लिए अवसर हैं। 'बहुउद्देशीय खाद्य प्रसंस्करण मशीन' लेख को पढ़ने से पता चलता है कि आविष्कार के लिए किसी बड़ी डिग्री की आवश्यकता नहीं होती बल्कि होती है लगन एवं परिश्रम की। ❑

शशिकांत त्रिपाठी
आवास विकास कालोनी
तिवारीपुर, गोरखपुर

लोकतंत्र का उभरता स्तंभ

नवंबर का अंक पढ़ा। हर बार की तरह नये विचारों को समेटे विद्वानों के लेख पसंद आए। यह बिल्कुल सही है कि गैर-सरकारी संगठन समाज निर्माण के एक मज़बूत स्तंभ के रूप में उभर रहे हैं। देश के विकास में ये सक्रिय भूमिका निभा रहे हैं। स्थानीय स्तर पर गैर-सरकारी संगठनों की पहुंच और आम लोगों में इनकी पकड़ ने ही सरकार को गैर-सरकारी संगठन से मदद लेने तथा इनके लिए नयी नीति बनाने को मज़बूर किया है। आज देश के कई गैर-सरकारी संगठन ग्रामीण विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं। गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका इस बात से समझ में आती है कि योजना आयोग के अलावा कई मंत्रालय इन्हें अपने नीति-निर्माण में सलाह-मश्विरा के लिए आमंत्रित करती हैं। 1860 के सोसाइटीज़ रजिस्ट्रेशन एक्ट से शुरू हुआ यह सफ़र काफी आगे तक जाएगा। गैर-सरकारी संगठन पर आधारित इस अंक के सारे लेख काफी अच्छे थे ख़ासकर सैयदा हमीद, हर्ष जैतू, मृदुला सिन्हा, कविता पंत, जी. श्रीनिवासन के। शोधयात्रा भी प्रेरणादायक लगा। ❑

मोहित कुमार झा
भांगाबांध, जरमुंडी, दुमका, झारखंड

अंतरिक्ष में 'जुगनू'

योजना का नवंबर अंक पढ़ा। मैं कक्षा 12 का छात्र हूं। विधायिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका व मीडिया आज के बाद स्वयंसेवी संगठन पांचवें स्तंभ के समान हैं। स्वयंसेवी संगठन वैधानिक रूप से गठित संगठन होते हैं जो शासन-व्यवस्था से मुक्त रहकर लोकहित के कार्य कर लोगों एवं सरकार के बीच सामंजस्य स्थापित करते हैं। विश्व बैंक इसे दो भागों में देखता है– क्रियात्मक संगठन (राष्ट्रीय, अंतरराष्ट्रीय, समुदाय आधारित संगठन) व पैरोकार संगठन। भारत में आज मशरूम की तरह उगते स्वयंसेवी संगठन मात्र सरकार से जुड़ने, विदेशी धन प्राप्त करने एवं पैसा अर्जित करने की रीति-नीति अपनाते जा रहे हैं। जनता के बीच ये ईद के चांद की तरह नज़र आते हैं। इनके पदाधिकार अपने लक्ष्य से विचलित होते नज़र आ रहे हैं। जनता की सेवा के नाम पर सरकार से एक मोटा बजट ले लेते हैं, लेकिन गगरी फूटी-फूटी ही रहती है व बैल प्यासे ही मरते हैं। अर्थात यहां पैसों का दुरुपयोग होता है।

फिर भी हम स्वयंसेवी संगठनों की भूमिका नकार नहीं सकते हैं। 1986 से जानकारी एवं ग्रामीण प्रौद्योगिकी प्रोन्नयन परिषद (कपार्ट) ने ग्रामीण विकास की नयी नज़ीर पेश की है। ग़ौरतलब है कि इसकी नींव भारत सरकार के ग्रामीण मंत्रालय के तत्वाधान में रखी गई। शशांक द्विवेदी का अंतरिक्ष से जुड़ा लेख समीचीन लगा। 19 अप्रैल, 1975 को भारत ने प्रथम उपग्रह आर्यभट्ट बैंकानूर प्रेक्षण स्थल से छोड़कर अंतरिक्ष की दुनिया में प्रवेश किया था। 22 अक्तूबर, 2008 में मून मिशन भेजकर इसने दुनिया में अपना लोहा मनवा लिया। हाल ही में आईआईटी (कानपुर) के विद्यार्थियों द्वारा निर्मित नैनो उपग्रह 'जुगनू' आठ सेंटीमीटर चौड़ा और तीस सेंटीमीटर लंबा है। यह बाढ़, सूखा, आपदा व दूरसंचार में अध्ययन के लिए समर्पित है। छात्रों ने अपनी प्रगति की बानगी प्रस्तुत की है।

सरोज कुमार शुक्ल का लेख सोचने के लिए विवश कर देता है कि आज वृद्ध अपनत्व के लिए तरस रहे हैं। आज बच्चे भी कंप्यूटर के मकड़जाल में उलझते जा रहे हैं। हरिद्वार, मक्का व यरूशलम में भटकते लोग मातृ-पितृ सेवा करने से क्यों कतरा रहे हैं? इनमें ही सच्चे भगवान की तस्वीर है। इन्हें सम्मान व सहयोग की ज़रूरत है।

नये प्रकाशन में 1826 में युगल किशोर द्वारा प्रकाशित भारत का प्रथम पत्र *उदंत मार्तण्ड* से लेकर आज की पीत पत्रकारिता तक की यात्रा समाज में चर्चा के नये प्रवेशद्वार खोलती है।

रहीस सिंह व मृदुला सिन्हा के आलेख भी प्रशंसनीय रहे। नूतन वर्ष के प्रथम विशेषांक में 12वीं योजना के दृष्टिपत्र से जुड़ी जानकारियों का बेसब्री से इंतज़ार है। ❑

रणवीर चौधरी 'विद्यार्थी'
सांजटा, बाड़मेर, राजस्थान

arihant
Inspiring Minds.Inspiring Lives

सफलता की 'सम्पूर्ण' परिभाषा

सफलता एक यात्रा है, गंतव्य नहीं
आपके सुन्दर भविष्य के लिए, सदैव तत्पर...
नई 'अवधारणा' के साथ, नई 'समझ' के साथ

i-सक्सीड

सभी प्रतियोगी परीक्षाओं के लिए मासिक पत्रिका

सामयिक घटनाक्रम तथा IAS, बैंक PO, मैनेजमेन्ट प्रवेश, एन डी ए, रेलवे, बैंक क्लर्क, SSC, UGC-NET
राज्य सिविल सेवा एवं अन्य भर्ती एवं प्रवेश परीक्षाओं के लिए

(✓) करें	अवधि (अंक)	मूल्य	देय	बचत
☐	6 माह (6 अंक)	₹ 390	₹ 350	₹ 40
☐	1 वर्ष (12 अंक)	₹ 780	₹ 600	₹ 180
☐	2 वर्ष (24 अंक)	₹ 1560	₹ 1150	₹ 410
☐	3 वर्ष (36 अंक)	₹ 2340	₹ 1600	₹ 740

सफलता एक यात्रा है, गंतव्य नहीं

SUBSCRIBE NOW!

ऑर्डर कूपन

अपना विवरण अंग्रेज़ी के बड़े अक्षरों में भरें

Name :
Address :
Pincode
Tele No.
Mobile :
E-mail ID : _____
Date of Birth : MM YY
Sex: Male Female

DD No. _____ Amount _____

Demand Draft should be Drawn *in favour of*
ARIHANT MEDIA PROMOTERS, *Payable* at Meerut.

पूरी तरह भरा हुआ कूपन काटकर भेजेः
सबसक्रिप्शन विभाग
i-सक्सीड, 'अरिहन्त मीडिया प्रोमोटर्स'
कालिन्दी, ट्रांसपोर्ट नगर, मेरठ – 250 002.

शर्तें : 1. यह ऑफर केवल भारत में मान्य है। 2. सदस्यता शुल्क का बैंक ड्राफ्ट 'अरिहन्त मीडिया प्रोमोटर्स' के नाम (जो मेरठ में देय हो) भेंजे। 3. सदस्यता शुल्क प्राप्त होने के 2-4 सप्ताह में आपकी सदस्यता प्रारम्भ कर दी जाएगी। 4. अपने सदस्यता फार्म में पूरा नाम, पता पिन कोड एवं फोन/मोबाइल नं0 अवश्य लिखें। 5. अपनी सदस्यता के लिए प्रेषित बैंक ड्राफ्ट के पीछे अपना नाम, पता व फोन/मोबाइल नं0 अवश्य लिखें। 6. आपके द्वारा भेजा गया बैंक ड्राफ्ट डाक अथवा कोरियर द्वारा विलम्ब या नुकसान के लिए 'अरिहन्त मीडिया प्रोमोटर्स' उत्तरदायी नहीं होगी। 7. एक बार सदस्यता प्रारम्भ हो जाने पर बीच में समाप्त नहीं होगी। 8. सदस्यता लेने के लिए केवल बैंक ड्राफ्ट ही स्वीकार किये जायेगें। 9. योजना सीमित समय के लिए है। 10. किसी भी विवाद की स्थिति में न्याय क्षेत्र मेरठ ही होगा।

ऑनलाइन सब्सक्रिप्शन के लिए *www.arihantbooks.com* पर लॉग इन करें अथवा +91-9219641347 (सुधांशु) पर कॉल करें

YH-240/2011

संपादकीय

बारहवीं पंचवर्षीय योजना (2012-17) के दृष्टिपत्र का प्रारूप राष्ट्रीय विकास परिषद द्वारा अनुमोदित किया जा चुका है। दृष्टिपत्र की विषयवस्तु है– त्वरित, सतत तथा और अधिक समावेशी विकास। योजना आयोग ने राज्यों, विभिन्न हितग्राहियों, अर्थशास्त्रियों, वेब आधारित संवादों और विभागीय परामर्श से व्यापक विचार-विमर्श के बाद यह महत्वपूर्ण दस्तावेज़ तैयार किया है।

दृष्टिपत्र में बारहवीं योजना के प्रमुख लक्ष्यों, उनको हासिल करने में आने वाली प्रमुख चुनौतियों और घोषित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए अपनाए जाने वाले तौर-तरीक़ों का विवरण दिया गया है। इसमें 9 प्रतिशत की विकासदर का लक्ष्य रखा गया है। वैश्विक अर्थव्यवस्था में छाई अनिश्चितताओं और घरेलू अर्थव्यवस्था की चुनौतियों को देखते हुए यदि कुछ कठिन निर्णय नहीं लिए गए, तो संभव है कि नौ प्रतिशत की विकासदर हासिल न हो सके।

योजना का ज़ोर समावेशी विकास पर है। कृषि और शिक्षा, स्वास्थ्य, महिला और बाल-कल्याण सहित महत्वपूर्ण सामाजिक क्षेत्रों पर अधिक ध्यान केंद्रित करने की बात कही गई है। इसके अतिरिक्त संस्थाओं और कार्यप्रणाली को सुदृढ़ और व्यवस्थित करने पर भी बल दिया गया है ताकि उच्च विकासदर का लाभ निर्धनों को प्राप्त हो सके।

कृषि के मोर्चे पर दृष्टिपत्र में बारहवीं योजना में 4 प्रतिशत की औसत विकासदर हासिल करने हेतु सघन प्रयास करने की बात कही गई है। ग्यारहवीं योजना के प्रथम चार वर्षों में कृषि की विकासदर 3.2 प्रतिशत रही है। कृषि के विकास से न केवल ग्रामीणों की आय में सुधार होगा, बल्कि मुद्रास्फीति पर दबाव भी कम होगा। दृष्टिपत्र में जल संरक्षण को और कारगर बनाने का लक्ष्य लेकर समग्र जल प्रबंधन नीति विकसित करने और विशेषकर कृषि के क्षेत्र में जल के किफायती उपयोग पर ध्यान आकर्षित किया गया है।

समावेशन का संवर्द्धन करने वाले जो प्रमुख कार्यक्रम ग्यारहवीं योजना में प्रारंभ किए गए थे, वे बारहवीं योजना में भी जारी रहेंगे; परंतु उनकी प्रभाविकता में सुधार लाने के लिए क्रियान्वयन और प्रशासन पर अधिक ध्यान दिया जाएगा।

स्वास्थ्य, शिक्षा और कौशल विकास पर बारहवीं योजना में भी ध्यान दिया जाना जारी रहेगा। इन क्षेत्रों के लिए पर्याप्त संसाधन सुनिश्चित किया जाएगा। दृष्टिपत्र में इन क्षेत्रों में निजी निवेश को भी आकर्षित करने की आवश्यकता पर बल दिया गया है। सबके लिए स्वास्थ्य पर उच्चस्तरीय विशेषज्ञ समूह ने सकल घरेलू उत्पाद (सघउ) के 1.2 प्रतिशत के मौजूदा स्तर के बजाय बारहवीं योजना में स्वास्थ्य पर सघउ के 2.5 प्रतिशत के व्यय की संस्तुति की है जिसे देखते हुए स्वास्थ्य क्षेत्र का आवंटन दोगुना हो सकता है।

महत्वाकांक्षी विकासदर को हासिल करने के लिए ऊर्जा की आवश्यकताओं को पूरा करना एक बड़ी चुनौती होगी। चूंकि घरेलू ऊर्जा आपूर्ति सीमित है, इसलिए इस मद में आयात पर निर्भरता बढ़ जाएगी। अत: ऊर्जा की घरेलू आपूर्ति में वृद्धि के लिए दोगुना अधिक प्रयास करने की आवश्यकता है। विद्युत उत्पादन प्रक्रिया में ऊर्जा-क्षरण को भी कम करना होगा।

दृष्टिपत्र में यह बात स्वीकार की गई है कि 9 प्रतिशत की विकासदर हासिल करने के लिए बुनियादी संरचना क्षेत्र में अधिक निवेश की आवश्यकता होगी। ढांचागत अभावों के मुद्दों के समाधान के लिए सार्वजनिक निवेश पर अधिक ज़ोर देने के साथ-साथ सरकारी और निजी क्षेत्र की भागीदारियों (पीपीपी) को और प्रोत्साहन देना होगा।

दृष्टिपत्र में स्पष्ट किया गया है कि संसाधनों के सीमित होने के कारण प्राथमिकताएं निर्धारित किए जाने की आवश्यकता है। स्वास्थ्य, शिक्षा और बुनियादी संरचना जैसे प्राथमिकता वाले क्षेत्रों में अन्यों से अधिक निवेश करना होगा। उपलब्ध संसाधनों का उपयोग किफायत और कुशलतापूर्वक करना होगा। दृष्टिपत्र में क्रियान्वयन एजेंसियों को अधिक स्वतंत्रता, लचीलापन और जवाबदेही देने का सुझाव दिया गया है। साथ ही क्षमता निर्माण की आवश्यकता और विभिन्न योजना कार्यक्रमों के संसाधनों के बीच समायोजन की बात भी कही गई है।

योजना के इस अंक में बारहवीं योजना के दृष्टिपत्र से संबंधित विभिन्न मुद्दों पर विद्वतापूर्ण लेख प्रकाशित किए जा रहे हैं। उम्मीद है कि नियोजन प्रक्रिया से निकट रूप से जुड़े विशेषज्ञों और विचारकों के ये आलेख बारहवीं योजना की रूपरेखा को समझने में मदद करेंगे।

योजना के सभी पाठकों को नववर्ष की अनेक शुभकामनाएं! ❑

12वीं पंचवर्षीय योजना की दृष्टि

संपन्न, समावेशी, धर्मनिरपेक्ष और बहुलतावादी राष्ट्र निर्माण की ओर

राष्ट्रीय विकास परिषद की 56वीं बैठक में प्रधानमंत्री का संबोधन

दृष्टिपत्र में अगले पांच वर्षों में त्वरित, समावेशी और सतत विकास के लक्ष्य को हासिल करने में आने वाली चुनौतियों का ब्यौरा दिया गया है। बारहवीं योजना के लिए अपना मार्ग तय करने के पूर्व हमें इस बात पर गौर करना होगा कि विश्व अर्थव्यवस्था में और हमारे पड़ोस में क्या हो रहा है और उसके अनुसार अपनी नीतियों को आकार दें। विश्व में तमाम आर्थिक शक्तियां पुनर्गठन के दौर से गुजर रही हैं। औद्योगिक देशों में मंदी आ रही है, उभरती बाज़ार वाली अर्थव्यवस्थाएं सुदृढ़ हो रही हैं और क्षेत्र में उनका कद भी बढ़ रहा है। एशिया का वज़न बढ़ रहा है। एशिया की उभरती बाज़ार अर्थव्यवस्था होने के नाते हमें दोनों तरह से लाभ होगा। अत: बारहवीं पंचवर्षीय योजना की नीतियों को इस प्रकार तैयार किया जाना चाहिए कि हम इन उभरती संभावनाओं का पूरा लाभ उठा सकें।

योजनाकार के रूप में हमें यह पूछना होगा कि इन आर्थिक और सामाजिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए क्या करना चाहिए। विकास प्रक्रिया इस समय सरकार के सीधे नियंत्रण से परे रहने वाले तत्वों द्वारा संचालित होती है। इनमें लघु और बड़े कृषक, लघु और मझोले उद्यमी और निजी कॉरपोरेट क्षेत्र शामिल हैं। ये सभी बाज़ार की शक्तियों के अनुरूप काम करते हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि सरकार की विकास प्रक्रिया में कोई भूमिका ही नहीं है। इसकी भूमिका बहुत बड़ी है और इस संदर्भ में मैं चार क्षेत्रों की चर्चा करना चाहता हूं।

सर्वप्रथम, सरकार को अपनी नीतियों से एक ऐसा वातावरण प्रदान करना होगा जिसमें हमारे किसानों और उद्यमियों की रचनात्मक भावना को पूरा समर्थन और प्रोत्साहन मिले। इनमें वृहद आर्थिक स्थिरता का वातावरण, कुशलतापूर्वक काम करने वाले बाज़ार, जो निजी क्षेत्र के उत्पादकों में प्रतिस्पर्धात्मक अनुशासन सुनिश्चित पैदा करते हों, वित्तीय संसाधनों के आवंटन के लिए सुदृढ़ वित्तीय प्रणाली, पारदर्शिता के साथ सुशासन और कानून के राज को प्रभावी ढंग से लागू करना शामिल है।

दूसरे, व्यापक और समावेशी विकास के समर्थन के लिए ग्रामीण और शहरी, दोनों क्षेत्रों में आवश्यक बुनियादी ढांचे के विकास में सरकार को एक बड़ी भूमिका अदा करनी होगी।

तीसरा, निर्धन और कमज़ोर वर्गों की पैसा कमाने की क्षमता में सीधे तौर पर वृद्धि और संपूर्ण विकास प्रक्रिया की मुख्यधारा में सम्मिलित करने के लिए उनकी आजीविका का प्रबंध करने हेतु सरकार को विशेष कार्यक्रम चलाने होंगे।

चौथा, सरकार को यह सुनिश्चित करना होगा कि प्रत्येक नागरिक को स्वास्थ्य, शिक्षा, कौशल विकास, सुरक्षित पेयजल और स्वच्छता की स्वीकार्य गुणवत्ता वाली अनिवार्य लोक सेवाएं आसानी से सुलभ हो सकें। इन सेवाओं के बगैर प्रभावी समावेश संभव नहीं होगा।

दृष्टिपत्र में प्रतिवर्ष 9 प्रतिशत के विकासदर के लक्ष्य का प्रस्ताव किया गया है। यहां यह सवाल उठाना प्रासंगिक होगा कि वर्तमान में अर्थव्यवस्था में आ रही गिरावट को दृष्टिगत रखते हुए क्या यह संभव हो सकेगा? मौजूदा धीमापन चिंता का विषय अवश्य है, परंतु इसे अल्पावधि लक्षण के रूप में देखा जाना चाहिए, जो वैश्विक अर्थव्यवस्था में अत्यधिक अस्थिर स्थितियों को परिलक्षित कर रहा है। सभी देशों में वर्तमान वर्ष की विकास दरों को संशोधित किया जा रहा है।

देश को अपनी आगोश में लपेटे नकारात्मकता की भावना से हमें अपने को बचाना होगा। हाल ही में एक प्रमुख उद्योगपति ने कहा कि भारत में व्यापार, मूड (भावना) से बेहतर है। आखिरकार निवेश तो उद्यम की पाशविक भावनाओं को ही दर्शाता है। अब जब सरकार में बैठे हम लोग अधिक निवेश, अधिक रोज़गार और वृद्धिदर का आधार तैयार करने की कोशिश में जुटे हैं, हमें इस बात पर विशेष रूप से ध्यान देना होगा कि हमारी नीतियों और राजनीति का निजी और सरकारी निवेश की भावनाओं पर क्या असर पड़ता है।

बारहवीं योजना के लक्ष्यों को तय करते समय यह मानते हुए कि मौजूदा अल्पकालिक समस्याओं से निपट लिया जाएगा, हमें दीर्घकालिक संभावनाओं पर विचार करना होगा। मुझे इस बात में लेशमात्र भी संदेह नहीं है कि हमारे देश की दीर्घकालीन संभावनाएं बहुत उज्ज्वल हैं। बीस वर्ष पहले वित्तमंत्री के रूप में अपने पहले भाषण में, मैंने विक्टर ह्यूगो की एक उक्ति का सहारा लेते हुए कहा था कि विश्व की कोई भी शक्ति उस विचार को नहीं रोक सकती जिसका समय आ गया है। मैंने आगे कहा कि विश्व की एक प्रमुख आर्थिक शक्ति के रूप में भारत का उदय, इसी तरह का एक विचार है।

मुझे यह कहते हुए प्रसन्नता हो रही है कि पिछले दो दशकों में, विभिन्न समय में विभिन्न राज्यों और केंद्र में शासन करने वाले विभिन्न राजनीतिक दल इसी सामान्य दिशा की ओर बढ़े हैं। इससे यह सुनिश्चित हुआ है कि मेरी भविष्यवाणी व्यापक रूप से स्वीकार्य एक हक़ीक़त बन चुकी है। वर्ष 2004 में यूपीए (संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन) सरकार के सत्ता में आने के बाद के सात वर्षों में देश की अर्थव्यवस्था की विकासदर औसतन 8.5 प्रतिशत रही है। भारत को अब सबसे तेज़ी से विकास कर रहे देशों में गिना जाता है। जो बात विशेष रूप से उत्साहजनक है वह यह कि प्रारंभिक वर्षों में अपेक्षाकृत धीमी गति से बढ़ने वाले राज्यों सहित अनेक राज्यों ने विकास के मामले में तेज़ी दिखाई है। मैं इन सभी राज्यों के मुख्यमंत्रियों को बधाई देता हूं। यदि हमारे सभी राज्य सर्वोत्तम वैश्विक काम-काज की पद्धति न सही, सर्वोत्तम राष्ट्रीय पद्धति ही अपना लें, तो हमारे समूचे राष्ट्र को बेहद लाभ होगा।

निश्चय ही विकास ही हमारा एकमात्र उद्देश्य नहीं रहा है। हमारा उद्देश्य है समावेशी विकास जिससे हमारा अर्थ है एक ऐसा विकास जो हमारी जनसंख्या के सभी वर्गों विशेषकर अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़े वर्गों को लाभ पहुंचाना सुनिश्चित कर सके और साथ ही पर्यावरण की रक्षा भी कर सके। एक बात को लेकर प्राय: आलोचना की जाती है कि हमने उच्च विकासदर तो प्राप्त कर ली है, परंतु समाज के सभी वर्गों को उसका लाभ नहीं मिला है, कुछ वर्ग वंचित रह गए हैं। मुझे लगता है कि इस आलोचना में कुछ सच्चाई है। वह इसलिए कि हमें और बेहतर करना था। परंतु यह कहना उचित नहीं होगा कि इस दिशा में हुई प्रगति उल्लेखनीय नहीं रही है।

समावेशन के लिए प्रासंगिक हमारे काम-काज का एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि दसवीं योजनावधि में 2.2 प्रतिशत प्रतिवर्ष की औसत दर से घट रही कृषि की विकास दर के ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में औसतन 3.5 प्रतिशत तक पहुंचने की संभावना है। यह सुस्पष्ट सुधार इस बात का प्रमाण है कि केंद्र और राज्य सरकारों द्वारा इस दिशा में उठाए गए अनेक क़दम सफल रहे हैं। त्वरित कृषि विकास के साथ-साथ महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी अधिनियम के क्रियान्वयन से ग्रामीण क्षेत्रों की मज़दूरी में वास्तविक वृद्धि हुई है।

समावेशन की हमारी रणनीति में शिक्षा और स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है और इस क्षेत्र के समाचार उत्साहवर्धक हैं। शिक्षा का अधिकार कानून अब हमारी कानून की पुस्तकों में स्थान बना चुका है। प्राथमिक विद्यालयों में बच्चों की भर्ती की स्थिति उत्साहजनक है। प्राय: सभी बच्चों के नाम लिखे जा रहे हैं। अधबीच में पढ़ाई छोड़ने वाले बच्चों (ड्रॉप आउट्स) की संख्या काफी है, परंतु उसमें कमी आ रही है। अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों तथा शेष जनसंख्या के बीच दूरी (अंतर) बनी हुई है, जिसे समाप्त करना आवश्यक है। परंतु यह अंतर निरंतर कम होता जा रहा है। लड़कों और लड़कियों के बीच अंतर में भी कमी आ रही है। इन अंतरों में और कमी लाने के अपने प्रयासों के साथ-साथ हमें शिक्षा की गुणवत्ता को सुधारने की चुनौती का सामना करना होगा। शिक्षा ऐसी हो जिससे रोज़गार मिलने में आसानी हो।

राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन 2007 में ही शुरू हुआ है, परंतु इसने स्वास्थ्य अधोसंरचना में भारी अंतर को पाटने की दिशा में काम करना शुरू कर दिया है। अभी बहुत काम बाक़ी है, परंतु प्रगति स्पष्ट रूप से दिखाई दे रही है। संस्थागत प्रसवों की संख्या का प्रतिशत 2006 के 54 से बढ़कर 2009 में 73 तक पहुंच चुका है। इसी अवधि में शिशु मृत्युदर 57 से गिरकर 50 पर आ गई है। निर्धनों के लिए स्वास्थ्य क्षेत्र में राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना के तौर पर एक बड़ी पहल की गई है। इसके अंतर्गत इस समय इलाज के लिए भर्ती 10 करोड़ से अधिक मरीजों को बीमा की सुविधा मिली है। इसी प्रयोग के आधार पर हमें बारहवीं योजना में सार्वभौमिक स्वास्थ्य कार्यक्रम की प्रणाली को अपनाना होगा।

ग्रामीण और शहरी, दोनों ही क्षेत्रों में अधोसंरचना से सुधार समावेशी विकास के

लिए महत्वपूर्ण है। ग्रामीण अधोसंरचना विकास पर केंद्रित भारत निर्माण कार्यक्रम ने ग्रामीण सड़कों, ग्रामीण विद्युतीकरण, सिंचाई, ग्रामीण पेयजल और ग्रामीण आवास के क्षेत्र में भारी संसाधन मुहैया कराए हैं। यह प्रयास जारी रखना होगा। हमारी भूमि और जल संसाधनों के क्षरण पर नियंत्रण पाना आवश्यक है, अन्यथा इनसे जुड़े मामूली आमदनी वाले लाखों छोटे और सीमांत किसानों की आजीविका पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।

बुनियादी ढांचा विकास अर्थव्यवस्था के लिए काफी महत्वपूर्ण है। सरकारी क्षेत्र और निजी क्षेत्र, दोनों की ही इसमें प्रमुख भूमिका है। जहां पर निजी क्षेत्र के जाने की संभावना नहीं हो, वहीं सरकारी निवेश होना चाहिए। मुझे यह कहते हुए प्रसन्नता हो रही है कि केंद्र और राज्य सरकारों ने ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में सार्वजनिक और निजी क्षेत्र की भागीदारी में अनेक परियोजनाएं सफलतापूर्वक पूरी की हैं। एक हालिया अंतरराष्ट्रीय रिपोर्ट में पीपीपी (सार्वजनिक और निजी क्षेत्र की भागीदारी) परियोजनाओं की संख्या के मामले में भारत को दूसरा स्थान मिला है।

ग्यारहवीं योजना में, पहली बार, पूर्वोत्तर क्षेत्र के लिए अधोसंरचना योजना प्रस्तुत की गई है। इसकी शुरुआत अच्छी हुई है और हमें यही गति बारहवीं पंचवर्षीय योजना में भी बनाए रखना चाहिए। हमारी योजनाओं में जम्मू-कश्मीर की विशिष्ट आवश्यकताओं को भी ध्यान में रखना होगा। देश के हृदय स्थल वाले क्षेत्र में वामपंथी उग्रवाद केंद्रित जनजाति-बहुल ज़िलों में भी बेहतर बुनियादी ढांचे की आवश्यकता है। सड़कों की विशेष आवश्यकता है। उनके विकास के लिए यह बहुत ज़रूरी है और हमें इस कार्य पर विशेष ज़ोर देना होगा।

इनमें से अधिकांश राज्यों में, राज्य सरकारों को ही क्रियान्वयन की प्रमुख भूमिका निभानी है। केंद्र सरकार, केंद्र प्रायोजित योजनाओं के ज़रिये केवल सहायता कर सकती है। मुझे इस बात की जानकारी है कि इन योजनाओं के प्रसार को लेकर कुछ शिकायतें हैं और उनके दिशा-निर्देशों में लचीलेपन का अभाव है। बारहवीं योजना में इन ख़ामियों को पूरा करने के लिए केंद्र प्रायोजित योजनाओं के पुनर्गठन और उनको चाक-चौबंद बनाने का अच्छा अवसर मिला है। योजना आयोग ने इन मुद्दों पर विचार के लिए बी.के. चतुर्वेदी समिति नियुक्त की है। समिति की रिपोर्ट सभी मुख्यमंत्रियों को भेजी जा चुकी है।

मैं राजनीति और वैकासिक नीतियों के परस्पर संबंधों के जटिल मुद्दे पर कुछ कहना चाहता हूं। भारत को यदि विकास की अपनी पूर्ण संभावनाओं का लाभ उठाना है तो इस संबंध का प्रभावी प्रबंधन ज़रूरी है।

हमारे लोकतंत्र, हमारे बौद्धिक समाज और हमारे स्वतंत्र प्रेस, सभी को बढ़ती अपेक्षाओं की क्रांति का सामना करना पड़ रहा है। कुछ सीमा तक यह कतिपय क्षेत्रों में प्राप्त सफलता के कारण हो रहा है, जिससे लोगों को यह अहसास हो गया है कि क्या संभव है और इसीलिए सृजित अवसरों के लाभ का अपना उचित अंश मांग रहे हैं। यह तथ्य कि हमारी एक जीवंत लोकतांत्रिक प्रणाली है, जिसमें बहुत सारे लोग भाग लेते हैं और अपनी आवाज़ उठाते हैं, इस घटना को और बड़ा रूप दे देती है।

मेरा मानना है कि हमें इस बात का गर्व होना चाहिए कि किस प्रकार हमारा लोकतंत्र सरकार को इन समस्याओं के समाधान के लिए विवश करता है। परंतु यह भी सही है कि अपेक्षाओं का यह ज्वार हमारी संस्थाओं पर काफी दबाव बना देता है। चूंकि लोकतंत्र राजनीतिक रूप से एक प्रतियोगी प्रक्रिया है, स्वाभाविक है कि राजनीतिक दल लोगों की मांगों को मुखर करें। परंतु यह देखने के लिए समय और धैर्य की आवश्यकता है कि नीतियों का क्या प्रभाव होता है।

निर्वाचित सरकारें अपना काम भलीभांति तभी कर सकती हैं जब चुनाव पूरे हो जाएं और सरकार का गठन हो जाए। राजनीतिक प्रक्रिया सरकारों को इस ढंग से काम करने का अवसर देती है कि विकास की दीर्घकालिक आवश्यकताएं अल्पावधि की चिंताओं की बंदी बनकर न रह जाएं। इसका अर्थ है कि संसदीय दलों को अनेक मुद्दों पर प्रतिकूल राजनीतिक स्थितियों के बीच कठिन संतुलन बनाए रखना होता है। इस दौरान उन्हें एक दीर्घकालिक राष्ट्रीय एजेंडे को आगे बढ़ाने में सहयोग भी करना होता है। यह संतुलन बनाए रखना कोई आसान बात नहीं है।

आज जैसे समय में, हमारी कार्यकारिणी, न्यायपालिका, संसद, राज्यों के विधानमंडल, विभिन्न संवैधानिक और नियामक प्राधिकरण सभी के लिए यह बहुत महत्वपूर्ण है कि वे अपनी निर्धारित भूमिका को समझें और उसे रचनात्मक ढंग से निभाएं।

यह हमारा सामूहिक उत्तरदायित्व है कि आज जो नकारात्मकता की भावना छाई है, उसे पलट दें। भविष्य वही होगा जो हम करके दिखाएंगे। कुछ भी पहले से निर्धारित और भाग्य में बदा नहीं है। भारत ऊपर उठ सकता है, परंतु भारत भटक भी सकता है। हम आगे बढ़ने वाली और सस्ते से भटक जाने वाली अर्थव्यवस्थाओं के संसार में रह रहे हैं। या तो हम नकारात्मकता के शिकार बन हमेशा अपनी आलोचना करते रहें, या फिर साथ मिलकर काम करें ताकि अपने आपको बढ़ने वाली अर्थव्यवस्थाओं के समूह में दृढ़ता से स्थापित कर सकें।

मुझे विश्वास है कि हमारे समक्ष जो चुनौतियां हैं, हम उन पर विजय प्राप्त कर सकते हैं। परंतु मैं यह भी मानता हूं कि हमें विश्व में चल रहे बदलाव की विशालता और यह जो चुनौतियां पेश कर रहा है, उसे समझना होगा। माननीय मुख्यमंत्रियों, मैं आपसे आग्रह करता हूं कि विकास की गति को तेज़ करने और हमारे लोगों के विकास की गुणवत्ता में सुधार के लिए केंद्र सरकार के साथ मिलकर काम करें। आइए, राष्ट्र निर्माण की इसी पवित्र भावना के साथ हम बारहवीं योजना के क्रियान्वयन में अपने आप को समर्पित करें।

विश्व बड़ी दिलचस्पी के साथ भारत की ओर देख रहा है। मैं यह भी मानता हूं कि यह बहुत सारी शुभेच्छाओं के साथ देख रहा है। भारत की सफलता में विश्व की भी दिलचस्पी है क्योंकि एक शांतिपूर्ण, समृद्ध लोकतांत्रिक भारत में स्थायित्व लाने वाली विश्व की एक शक्ति मानी जाती है। आइए, बारहवीं पंचवर्षीय योजना की यात्रा पर हम पूरी विनम्रता, निश्चय और विश्वास के साथ कदम बढ़ाएं। हमें विश्व को यह दिखा देना है कि लोकतांत्रिक भारत एक संपन्न, समावेशी, धर्मनिरपेक्ष और बहुलतावादी राष्ट्र के निर्माण में सक्षम है। वह सतत विकास के पथ पर चल सकता है। विकास के भारतीय आदर्श की सफलता में विश्व की बड़ी दिलचस्पी है। ❑

12वीं पंचवर्षीय योजना की दृष्टि

परिदृश्य और नीतिगत चुनौतियां

● मोंटेक सिंह अहलुवालिया

भारतीय अर्थव्यवस्था सुखद संभावनाओं के बीच बारहवीं पंचवर्षीय योजनावधि में प्रवेश करने वाली है। लेकिन इस अवधि के दौरान चुनौतियां भी कम नहीं होंगी। ग्यारहवीं योजना में अर्थव्यवस्था का प्रदर्शन बहुत अच्छा रहा है लेकिन प्राप्त सूचनाओं के अनुसार अगर समावेशी दृष्टि डाली जाए, तो कुछ क्षेत्रों में यह अच्छा नहीं भी रहा।

सकल घरेलू उत्पाद (सघउ) तेज करने के लिए बारहवीं योजनावधि के दौरान बहुत कुछ करना बाक़ी है और इसका अधिकांश भाग निजी क्षेत्रों द्वारा पूरा किया जाएगा। केंद्रीय और राज्य सरकारों को भी इस काम में महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है और उन्हें अनुकूल नीतिगत माहौल का सृजन करना है। यह पर्यावरण निवेशक-हितैषी और सर्वसमावेशी विकास के अनुकूल होना चाहिए। बारहवीं योजनावधि के दौरान अर्थव्यवस्था को जिन चार प्रमुख चुनौतियों का सामना करना पड़ सकता है उसकी चर्चा आगे की गई है। संभवत: ग्यारहवीं योजनावधि में ये उतनी गंभीर नहीं थीं। ये चुनौतियां हैं- ऊर्जा का प्रबंधन, जल अर्थव्यवस्था का प्रबंधन, शहरीकरण के चलते उत्पन्न समस्याओं पर ध्यान देना (शहरीकरण की गति तेज़ हो सकती है) और पर्यावरण संरक्षण कुछ इस प्रकार से सुनिश्चित करना कि उसके कारण विकास की गति तेज़ हो सके।

इसके अलावा, ज़मीनी हक़ीक़त की नज़र से योजनाओं के कार्यान्वयन में कुशलता में भी सुधार लाने की ज़रूरत होगी।

खंड-1 में ग्यारहवीं योजना के अभिव्यक्त उद्देश्यों को देखते हुए प्रदर्शन पर विहंगम दृष्टि डालनी होगी। खंड-2 में बारहवीं योजना के दौरान विकास प्रदर्शन में सुधार की संभावनाओं का सूक्ष्म स्तर पर मूल्यांकन है। खंड-3 में कुछ उन चुनौतियों की पहचान की गई है जिनसे निपटने पर ध्यान देना ज़रूरी है।

हाल के निष्पादन की समीक्षा

ग्यारहवीं योजना का उद्देश्य विकास की उपलब्धियों को तेज़ी से हासिल करने के लिए सर्वसमावेशी विकास का लक्ष्य प्राप्त करना था और यह ठीक ही है कि इन दोनों उद्देश्यों को नज़र में रख कर हम निष्पादन का मूल्यांकन करें। विकास और सर्वसमावेश को दोहरा लक्ष्य बनाया गया था और जीडीपी के विकास की गति जारी रखनी थी। लेकिन एक विशेष प्रकार के विकास के चलते जो उच्च विकासदर जीवंत राजस्व के चलते संभव थी, वह अधिकांश जनसंख्या के जीवनस्तर में सुधार ला सकता है, जो अंतत: प्राप्त होने वाले उद्देश्यों में से एक था।

भारत का विकास निष्पादन

इसमें कोई संदेह नहीं कि विकास के मोर्चे पर अर्थव्यवस्था का निष्पादन बहुत अच्छा रहा और अगर दीर्घावधि परिदृश्य पर ध्यान दें, तो यह और भी प्रभावशाली लगेगा। 1960-70 के दो दशकों के दौरान भारतीय अर्थव्यवस्था की सघउ विकासदर औसतन 3.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष रही थी, वह भी ऐसे वक़्त जब अन्य विकासशील देशों में विकासदर काफी तेज़ थी। 1980 से शुरू होने वाले दशक के दौरान नीतियां अनुकूल बनाई गईं ताकि उच्च विकासदर की गति बढ़ाकर इस दशक के दौरान 5.6 प्रतिशत की जा सके। 1991 में एक बड़ा प्रयास किया गया जिसका आधार बाज़ार की ताक़तों को सक्रिय होने के अधिक अवसर देना और वित्तीय क्षेत्र का क्रमश: उदारीकरण तथा दुनियाभर के देशों के साथ व्यापार और पूंजी प्रवाह के लिए अर्थव्यवस्था को खोलना था। इसके चलते देश की अर्थव्यवस्था विकासदर में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई। 1990 के दशक के पूर्वार्द्ध में यह काफी तेज़ रही, लेकिन उत्तरार्ध में इसकी रफ़्तार कम हो गई जिसके कारण पूरे दशक की औसत विकासदर 5.7 प्रतिशत ही रही जो 1980 के दशक के दौरान रही विकासदर से अलग नहीं थी।

अगली सदी के पहले दशक के दौरान भारत के आर्थिक निष्पादन में महत्वपूर्ण सुधार दिखाई दिया। इसका कारण महत्वपूर्ण अंतरराष्ट्रीय परिस्थितियां और 1991 के दौरान शुरू किए गए व्यवस्थित सुधारों का संचयी परिणाम था। दसवीं योजनावधि (2002-03 से 2006-07) में 8 प्रतिशत विकासदर का लक्ष्य रखा गया और औसतन 7.8 प्रतिशत की विकासदर प्राप्त की गई। ग्यारहवीं योजनावधि में (2007-08 से 2011-12) 9 प्रतिशत विकासदर का लक्ष्य रखा गया (देखें तालिका-1)। इस अवधि में आर्थिक विकासदर पहले साल के दौरान 9.3 प्रतिशत रही लेकिन अंतरराष्ट्रीय वित्तीय संकट के चलते 2008 में यह रफ़्तार तब कम हो गई जब सघउ की विकासदर 6.8 प्रतिशत से कम हो गई। तथापि कुछ तत्वों की बदौलत इस रफ़्तार में तेज़ी आई और जल्दी ही अर्थव्यवस्था की विकासदर 8.6 प्रतिशत तक हो गई। वर्ष 2011-12 की शुरुआत में केंद्र सरकार ने अपने बजट में 9 प्रतिशत की विकासदर दिखाई थी लेकिन ऐसा जान पड़ता है कि यह कम हो कर 8.5 प्रतिशत रह जाएगी। अगर ऐसा हुआ भी तो ग्यारहवीं योजनावधि के लिए विकासदर का औसत 8.2 प्रतिशत रहेगा जो इस अवधि के सबसे बड़े आर्थिक संकट को ध्यान में रखते हुए कम नहीं है क्योंकि महामंदी का सामना पूरी दुनिया को करना पड़ रहा है।

भारत में आर्थिक निष्पादन में आए सुधार ने विश्व के अन्य देशों की भारत के प्रति धारणा को बदलकर रख दिया है। शुरू-शुरू में इसे तब मान्यता मिली जब नवंबर 2002 में गोल्डमैन साच्स ने अपनी एक रिपोर्ट में भारत, ब्राज़ील, रूस और चीन के बारे में

कहा कि चार देशों का यह ब्रिक ग्रुप अपनी कुल सघउ में वृद्धि के चलते 2035 तक जी-8 देशों पर छा जाएगा। वर्ष 2000 से शुरू होने वाले दशक के दौरान अर्थव्यवस्था के सुदृढ़ निष्पादन और वैश्विक मंदी के चलते लचीलेपन को देखते हुए भारत के लिए यह मूल्यांकन और भी सकारात्मक हो गया है। अब समसामयिक धारणा यह है कि भारत सतत उच्च विकासदर की राह पर चल रहा है और इसका आधार उच्च घरेलू बचत दर, उद्यमशीलता और प्रबंधशीलता की बेहतर गुणवत्ता और उत्पादकता पर आर्थिक सुधारों का संचयी प्रभाव है। एशिया के अन्य देशों, जापान, कोरिया, ताईवान और हाल ही में चीन भी इस सूची में शामिल हो गया है, ने उच्च विकासदर का लक्ष्य प्राप्त किया है। माना जाता है कि भारत भी अब उसी तरह की विकासदर का लक्ष्य प्राप्त कर लेगा।

समावेश पर निष्पादन

तीन कारणों के अलावा विकास पर समावेशी निष्पादन का मूल्यांकन करना मुश्किल है। पहला तो यह कि समावेशी विकास एक बहुकोणीय धारणा है और इसकी प्रगति के अनेक पक्षों के मूल्यांकन की जरूरत है। दूसरे, सर्वसमावेशी विकास के विभिन्न पक्षों से संबंधित आंकड़े तभी उपलब्ध हो पाते हैं जब काफी समय बीत जाता है और ग्यारहवीं योजनावधि के बारे में सूचना अभी तक नहीं मिली। तीसरे, सर्वसमावेशी लक्ष्य को लेकर बनाई गई नीतियों का प्रभाव सिर्फ़ लंबी अवधि के बाद दिखाई देता है। इसका मतलब यह है कि अगर नीतियां सही दिशा में चल रही हैं तो भी उसका परिणाम काफी देर से सामने आएगा। उदाहरण के लिए ग़रीबों के लिए शिक्षा में सुधार के उपाय करने से यह माना गया कि भविष्य में इससे उनकी अर्जन क्षमता में सुधार आएगा। लेकिन अधिक आय अर्जन के रूप में इसका परिणाम काफी समय बाद दिखाई देगा।

सर्वसमावेशी विकास के बहुआयामी पक्ष

इसप्रकार के विकास के सबसे अच्छे उदाहरण हैं उन पक्षों को सूचीबद्ध करना जो सुसंगत हैं। आबादी का जितना हिस्सा ग़रीबी रेखा से ऊपर आएगा वही प्रगति का सबसे बढ़िया संसूचक है। लेकिन अनेक परिवार प्रतिव्यक्ति उपभोग के अर्थ में ग़रीबी रेखा से ऊपर हैं किंतु उन्हें शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छ पेयजल और सफ़ाई जैसी बुनियादी सेवाएं नहीं मिल पा रही हैं। सर्वसमावेशी विकास में इन ज़रूरी सेवाओं की प्राप्ति को भी शामिल किया जाना चाहिए। इनके अलावा सर्वसमावेशी विकास में असमानता से संबंधित सरोकार भी शामिल किए जाएं। अकसर यह तर्क दिया जाता है कि जब तक ग़रीबों को विकास के लाभ मिल रहे हैं तब तक असमानता का क्या मतलब? लेकिन यह सच भी हो सकता है कि ग़रीबों की आय में तेज़ी से वृद्धि के चलते कुछ लोग असमानता में वृद्धि की बात भी मान लेते हैं। परंतु अगर असमानता में काफी वृद्धि हो जाती है और ग़रीबों के रहन-सहन के स्तर में मामूली सुधार ही हो पाता है तो इसे मंजूर नहीं किया जाएगा। इस संदर्भ में असमानता सिर्फ़ आय के वितरण अथवा व्यक्तियों द्वारा उपलब्ध सामग्री के उपभोग तक ही सीमित नहीं है बल्कि एक राज्य से दूसरे राज्य और कुछ मामलों में तो एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र के बीच भी राज्यों के अंदर असमानता पाई जाती है। अगर भारतीय संदर्भ में सर्वसमावेशी विकास की बात करें तो इस बात पर खासतौर से ध्यान दिए जाने की ज़रूरत है कि समाज के कुछ समूह विशेष ध्यान देने के पात्र हैं। इनमें अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों तथा अल्पसंख्यकों के नाम लिए जा सकते हैं। यह समूह अधिकांशत: आय वितरण के निचले हिस्से में आते हैं अत: ये सोचा जा सकता है कि ग़रीबी हटाने अथवा असमानता दूर करने का यही रास्ता है। लेकिन अगर सर्व समावेशी विकास की परिभाषा पर ध्यान दें और इन समूहों को बाक़ी आबादी के बराबर लाने की बात करें, तो इस मुद्दे पर ध्यान दिए जाने की ज़रूरत है और कुल आय वितरण में इन समूहों का भी प्रतिनिधित्व होना चाहिए। अवधारणा के रूप में अगर कुल मिलाकर ग़रीबी या असमानता दूर करने की बात करें, तो ये लक्ष्य तभी प्राप्त किए जा सकते हैं जब ग़रीबी और असमानता का स्तर वही रहे। ग्यारहवीं योजना में इस बात को साफ़-साफ़ मान्यता दी गई है और 27 ऐसे लक्ष्य माने गए हैं जिन पर सघउ की समीक्षा करते समय ध्यान देने की ज़रूरत है। इसके अलावा अन्य जिन पक्षों पर ध्यान दिए जाने की ज़रूरत है उनमें कृषि विकास, ग़रीबी दूर करना, रोज़गार के अवसर बढ़ाना आदि शामिल हैं। इस बहुपक्षीयता का एक परिणाम यह है कि

तालिका-1

सूक्ष्म आर्थिक बचत

	2005-06	2006-07	2007-08	2008-09	2009-10	2010-11
1 सघउ की विकासदर	9.5	9.6	9.3	6.8	8.0	8.6
2 मुद्रास्फीति दर (पहले वाले साल के मुक़ाबले औसत) *डब्ल्यूपीआई	4.4	6.5	4.8	8.0	3.6	8.2
*सघउ डिफ्लेटर	4.2	6.4	'5.8	6.7	7.5	9.6
*सीपीआई (आईडब्ल्यू)	4.4	6.7	6.2	9.1	12.4	10.0
3 राजकोषीय घाटा (प्रतिशत सघउ)	3.97	3.32	2.55	6.04	6.039	5.1
*केंद्र						
*राज्य	2.33	1.82	1.49	2.40	3.00	2.60
*दोनों मिलाकर	6.30	5.14	4.04	8.44	9.39	7.72
4 चालू खाता घाटा (सघउ)	-1.2	-1.0	-1.3	-2.3	-2.8	-2.8
5 प्रत्यक्ष विदेशी निवेश आवक (अरब डॉलर)	8.96	22.83	34.84	35.18	37.18	24.0
6 विदेशी फोर्टफोलियो निवेश आवक (अरब डॉलर)	12.49	7.00	27.27	-13.86	32.38	35.0'

*अग्रिम अनुमान

विभिन्न पक्षों में जो प्रगति हो रही है वह अलग-अलग हो सकती है। उदाहरण के लिए यह भी संभव है कि ग़रीबी में कमी आए पर असमानता बढ़ जाए। इसी तरह से, देश के अनेक परिवारों में कुल मिलाकर असमानता घट सकती है अथवा अपरिवर्तित रह सकती है जबकि राज्यों के बीच असमानता बढ़ सकती है। सर्वसमावेशी प्रगति का अगर समग्र रूप से मूल्यांकन किया जाए तो इसका आधार इन सभी प्रकार की विकास गतिविधियों के मिले-जुले रूप को बनाना होगा।

ग़रीबी और ज़रूरी सेवाओं तक पहुंच की कमी, दोनों ही गंभीर समस्याएं बनी हुई हैं। लेकिन अगर सकारात्मक दृष्टि डालें, तो अनेक क्षेत्रों में सुधार भी दिखाई देता है और अगर उपलब्ध आंकड़ों वाली अवधि पर नज़र डालें तो पाएंगे कि वर्तमान स्थिति निश्चय ही उससे भी अच्छी है जिसके संकेत प्राप्त ताज़ा आंकड़े देते हैं। कुछ भी हो, इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि सर्वसमावेशी विकास की प्रगति कम रही है जबकि त्वरित विकास दिखाई दिया है। और, इसी विरोधाभास के चलते आम धारणा बनी है कि तेज़ी से हुए विकास के चलते आय और परिसंपत्तियां ऊंचे तबके के लोगों में केंद्रित हो गई हैं। धन केंद्रित होने की अवधारणा और बढ़ रही असमानता के कारण मीडिया में ऐसी प्रवृत्ति आ गई है और खासतौर से इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में ऐसा दिखाया जा रहा है कि ऊपर के तबके को तो सफलता मिली है और वस्तुओं के उपभोग में बढ़ोतरी हुई है जबकि दूसरी तरफ ग़रीबी बढ़ी है। ये अतिवादी स्थितियां हैं और पत्रकारिता के क्षेत्र में ऐसे समाचारों को दिखाने के ज्यादा योग्य माना जाता है। लेकिन अगर इन पर अनुपात से ज्यादा ज़ोर दिया गया तो तेज़ी से बढ़ रहे जनसंख्या के मध्यम वर्ग पर मीडिया का ध्यान कम हो जाएगा। इससे जनकल्याण के क्षेत्र में जो महत्वपूर्ण प्रगति हुई है उसका महत्व ही कम नहीं होगा बल्कि सामाजिक विकास धूमिल होगा और लोगों की बढ़ रही उम्मीदों तथा मांग और सरकार की जिम्मेदारी बढ़ेगी।

मुद्रास्फीति और सूक्ष्म जमा

हाल के आर्थिक निष्पादन का कमज़ोर पहलू यह है जो विकास और सर्वसमावेशी प्रगति दोनों पर लागू होता है वह यह कि पिछले तीन वर्षों में मुद्रास्फीति का दबाव बढ़ा है। मुद्रास्फीति की दर अगर सामान्य रहती है तो बर्दाश्त किया जा सकता है और इससे बचा नहीं जा सकता लेकिन अगर यह बर्दाश्त से बाहर तक बढ़ जाती है (बर्दाश्त की सीमा सरकार 5 से 6 प्रतिशत तक मानती है जबकि रिज़र्व बैंक इसे 4 से 5 प्रतिशत तक काबिले बर्दाश्त मानता है) तो इसे अस्थिरताकारी और प्रगति को धीमा करने वाला माना जाता है तथा इसे सर्वसमावेशी विकास और प्रगति के लिए हानिकारक समझा जाता है। पिछले दो वर्षों के दौरान मुद्रास्फीति दर इस स्तर से ऊपर रही है। हालांकि भारत अकेला ऐसा देश नहीं है जहां उभरते बाज़ार को ऐसी समस्या का सामना करना पड़ा है। लेकिन अधिकांश उभरते बाज़ारों में मुद्रास्फीति का ऊंचा उठना चिंताजनक माना जाता है और भारत में मुद्रास्फीति दर अन्य देशों के मुक़ाबले ऊंची रही है।

तालिका-1 में वर्ष 2005-06 के बाद से मुद्रास्फीति के वैकल्पिक उपाय दिखाए गए हैं। मुद्रास्फीति को काबू करने का संभवत: सबसे बढ़िया उपाय है सघउ डिफ्लेटर और अगर इस लिहाज़ से देखा जाए तो औसत मुद्रास्फीति दर ग्यारहवीं योजना के पहले चार वर्षों के लिए 7.4 प्रतिशत रही है जबकि दसवीं योजना अवधि में यह औसत 5.3 प्रतिशत था। खाद्य सामग्री की मुद्रास्फीति दर के ऊंचा होने को चिंता की बात समझा जाता है। विशेषकर सब्जियां, फल, दूध और अंडों की क़ीमत बढ़ती है और मुद्रास्फीति दर दो अंकों में जाती है तो इसे चिंताजनक माना जाता है। पिछले दो वर्षों में उपभोक्ता मूल्य सूचकांक के अनुसार मुद्रास्फीति दर दो अंकों में रही है। भारत में मुद्रास्फीति का दबाव बढ़ा है जिसके कारण निम्न हो सकते हैं:

- कच्चे तेल, अनाज और धातुओं के अंतरराष्ट्रीय मूल्यों में बढ़ोतरी,
- खाद्य अर्थव्यवस्था की घरेलू आपूर्ति में बाधाएं और
- अंतरराष्ट्रीय संकट से छुटकारा पाने के लिए राजकोषीय उपायों के चलते पैदा हुई तपन। भारत में संभवत: ये सभी कारक इकट्ठे सक्रिय हो गए हैं लेकिन कारक कोई भी रहे हों, इनके चलते मुद्रास्फीति दर बढ़ी है और यह सभी क्षेत्रों पर प्रभाव डाल रही है जिसके चलते यह निचले स्तर तक फैल गई है। हमें इससे निपटने के लिए राजकोषीय और मुद्रा संबंधी नीतियों में तालमेल करके उन बाधाओं को दूर करना पड़ेगा जिनकी आसानी से पहचान हो सकती है।

मौद्रिक नीति वह परंपरागत साधन है जिससे कुल मिलाकर मुद्रास्फीति का सामना किया जाता है और इसे पहले ही धीरे-धीरे करके सख़्त बनाया गया है। लेकिन इसका पूरा लाभ तभी मिल सकता है जब राजकोषीय नीति भी इसके माकूल रहे। जैसाकि तालिका-1 में दिखाया गया है, राजकोषीय उत्प्रेरक नीतियों से केंद्र का राजकोषीय घाटा बढ़ा है। राज्य भी इससे प्रभावित हुए जिसका परिणाम यह हुआ कि वर्ष 2007-08 के 4 प्रतिशत सघउ में वृद्धि की जगह वर्ष 2009-10 में यह 9.4 प्रतिशत हो गई। इस उत्प्रेरक को जहां मंदी का असर टालने में कामयाबी मिली, वहीं इसके चलते राजकोषीय घाटा ऐसे स्तर पर पहुंच गया जो निरंतर बना नहीं रह सकता था। 2010 में इसे ठीक करने के उपाय शुरू किए गए और कुल मिलाकर राजकोषीय घाटा 2009-10 में 9 प्रतिशत से घटाकर 2010-11 में 7.7 प्रतिशत तक किया जा सका। इन नीतियों को आगे भी जारी रखना होगा ताकि राजकोषीय घाटा पहले जैसे स्तर पर लाया जा सके।

बारहवीं योजनावधि में विकास संभावनाएं

इस खंड में भारत में त्वरित विकास की संभावनाओं का मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है। मूल्यांकन करते समय उन शिथिलता से बचना है जो विकास की गति में तेज़ी लाने में बाधक होती हैं और जिसकी संभावना आगे भी बनी रहेगी क्योंकि पुरानी नीतियां अब भी चल रही हैं। यह दृष्टिकोण भी अपेक्षाकृत कम प्रभावशाली है क्योंकि ऐसे देशों के उदाहरण सामने हैं जहां विकास तो जल्दी हुआ लेकिन बाद में उसकी रफ़्तार कम हो गई। इसके दो कारण हो सकते हैं, पहला तो यह कि अर्थव्यवस्था में नये आंतरिक व्यवधान पैदा हो जाएं जो ढांचागत परिवर्तनों के कारण पैदा होते हैं। इन बाधाओं पर ध्यान दिए बिना अगर पुरानी नीतियां चालू रखी जाती हैं, तो ऐसी परिस्थितियां बनती हैं। दूसरा, बाहरी परिवेश में परिवर्तन आने के कारण अगर इनके प्रति दृष्टिकोण बदलने की ज़रूरत हो तो भी ऐसा हो सकता है।

विकास में आने वाली मांग पक्ष की

बाधाएं

भावी विकास के रास्ते में मांग पक्ष की सबसे महत्वपूर्ण बाधा वह होती है जो अंतरराष्ट्रीय परिस्थितियों के चलते उत्पन्न हुए संकट के बाद पैदा होती है। ऐसी हालत में औद्योगिक देशों का विकास धीमा होने की आशंका रहती है। इसी के चलते अमरीका और यूरोप जैसे विकसित देशों को होने वाले निर्यात की गति मंद पड़ सकती है। अकसर कहा जाता है कि सुधार के बाद की अवधि में भारत अधिक खुली अर्थव्यवस्था वाला देश बन गया है लेकिन यह अब भी निर्यात मांग पर अधिक निर्भर है, उभरती अर्थव्यवस्थाओं पर कम। यही कारण है कि इसकी विकास संभावनाएं कम प्रभावित होती हैं। कुछ भी हो, यह सवाल सुसंगत बन जाता है कि अगर निर्यात मांग कमज़ोर होती है तो भारत से ऐसे माहौल में तेज़ी से विकास की उम्मीद कैसे की जा सकती है?

इसका एक जवाब यह है कि अगर औद्योगिक देशों से निर्यात मांग कम होती है तो उभरते बाज़ार वाले अनेक देश तेज़ी से प्रगति करते हैं और हमारे निर्यात का निष्पादन उभरती अर्थव्यवस्थाओं से तेज़ हो सकता है। कभी-कभी यह तर्क़ दिया जाता है कि भारत की अर्थव्यवस्था घरेलू मांग पर ज्यादा निर्भर है और ऐसी हालत में घरेलू खपत भारत में आर्थिक विकास की सबल प्रचालक बन सकती है। इस तर्क़ में इस तथ्य पर ध्यान नहीं दिया गया कि बचत अनुपात भी बढ़ने की कल्पना की जाती है और भारत के लिए यह एक आधारभूत तथ्य माना जाता है जिसके चलते सघउ में खपत बढ़ने की उम्मीद कम हो जाती है। मांग में कमी का सही समाधान यह है कि घरेलू निवेश का स्तर बढ़ाया जाए और खासतौर से बुनियादी सुविधाओं में निवेश अधिक हो। भारत में ढांचागत सुविधाओं की कमी को आर्थिक विकास के पिछड़ने के लिए जिम्मेदार माना जाता है और जब तक इस क्षेत्र में निवेश नहीं बढ़ेगा तब तक अल्प अवधि में मांग नहीं बढ़ पाएगी। ऐसा होने से प्रतिस्पर्धा भी बढ़ेगी और औसत अवधि में पूर्ति पक्ष में विकासदर बढ़ेगी।

उच्च स्तर का निवेश ऐसी परिस्थिति है जिसमें निर्यात में वृद्धि की गति कम हो जाती है और भुगतान संतुलन में घाटा आ जाता है। इसीलिए इस प्रकार की कार्यनीति उच्च घाटे का वित्तपोषण करने की क्षमता पर निर्भर करता है। परंपरागत तरीक़े से हम ऐसे देश हैं जिसमें सघउ में लगभग 2 प्रतिशत के वर्तमान घाटे की दर को ठीक माना जाता है। जैसाकि तालिका-1 में दिखाया गया है, वर्ष 2010-11 में समसामयिक घाटा सघउ के 2.5 प्रतिशत के बराबर था। अगर निवेश बढ़ाने के उपाय तेज़ किए जाए तो घाटा सघउ के लगभग 3 प्रतिशत के बराबर हो सकता है। इसीलिए महत्वपूर्ण मुद्दा यह हो जाता है कि क्या इस स्तर का घाटा दीर्घावधि तक पूंजी प्रवाह बनाए रखकर पूरा किया जा सकता है? इसमें प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के जरिये आने वाली पूंजी भी शामिल होगी। तर्क़ यह दिया जा सकता है कि भारत ने अभी कुछ ही समय पहले वैश्विक पूंजी आकर्षित करने के प्रयास शुरू किए हैं और अगर इसकी अर्थव्यवस्था के आकार पर ध्यान दें और संभावित विकास को ध्यान में रखें, तो पाएंगे कि काफी लंबे समय तक यह पूंजी प्रवाह के लिए आकर्षक गंतव्य बना रहेगा। जब तक इसकी नीति आमतौर पर पूंजी प्रवाह के और खासतौर से प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के लिए आकर्षक बनी रहती है तब तक इसे लघु स्तर पर अर्थव्यवस्था की दृष्टि से ठीक समझा जाएगा।

इस सकारात्मक मूल्यांकन को इस शर्त के साथ देखे जाने की ज़रूरत है कि बाहरी माहौल कमज़ोर है और इस बढ़ती हुई चिंता का विषय कुछ औद्योगिक देशों में राजकोषीय घाटे की स्थिति है। बढ़ती हुई राजकोषीय घाटे संबंधी चिंताएं खासतौर से अमरीका में लंबी अवधि के लिए ब्याज दरें बढ़ाने का कारण बन सकती हैं और इसके कारण उभरते बाज़ारों में पूंजी प्रवाह अस्थिर हो सकता है। लेकिन एक निवेश गंतव्य के रूप में भारत अपेक्षाकृत अधिक आकर्षक है जिसके चलते अगर नीतिगत माहौल पर ध्यान दें, तो भारत लघु स्तर पर ठीक और निवेशक-हितैषी देश ठहरेगा।

विकास की राह में पूर्ति पक्ष की बाधाएं

भारत के विकास परिदृश्य पर पूर्ति पक्ष के बाधाओं का प्रवाह परंपरागत विकास के तरीक़े से आंका जा सकता है और इसका मापदंड सघउ में वृद्धि, पूंजी और श्रम निवेश के लिहाज़ से आंका जा सकता है। इसके आधार पर उत्पादकता की वृद्धि का मूल्यांकन होगा। इन बिंदुओं के आधार पर आशावादी रवैया अपनाए जाने के अच्छे कारण मौजूद हैं।

पूंजी प्रवाह

पूंजी प्रवाह में विकास आमतौर पर निवेश दर पर निर्भर करता है जो निवेश परिस्थितियों पर निर्भर है। साथ ही यह भी देखा जाता है कि घरेलू बचत और विदेशी पूंजी प्रवाह की दर क्या है? हालांकि यह बात ठीक है कि ऐसे मामले में वित्तपोषण में आने वाली बाधाओं पर ध्यान दिया जाता है, लेकिन यह बात भी ध्यान में रखने वाली है कि निजी क्षेत्र की बहुलता वाली विकास प्रक्रिया में निवेशक-हितैषी माहौल भी बहुत ज़रूरी है और यही संभावित निवेशकों को क्षमता वृद्धि के लिए आकर्षित करती है। ऐसी स्थिति की भी कल्पना की जा सकती है जब वित्तीय निवेश के संसाधन तो उपलब्ध होते हैं, फिर भी निवेश नहीं किया जाता क्योंकि उद्यमी निवेश पर्यावरण को आकर्षक नहीं समझते और उनकी उपयुक्त भावना नहीं जगती।

संकट से पहले भारत में निजी निवेश का माहौल बहुत अच्छा था। जैसाकि तालिका-2 में दिखाया गया है। निजी निगमित संस्थाओं द्वारा अचल पूंजी निर्माण 2004-05 घरेलू उत्पाद के 9.1 प्रतिशत से बढ़कर वर्ष 2007-08 में 14.3 प्रतिशत हो गई। यह संकट से पहले की स्थिति थी। इसके बाद 2008-09 में यह घटकर 10.4 प्रतिशत पर आ गई जो वर्ष 2009-10 के 10.8 प्रतिशत के स्तर से थोड़ा ही ज्यादा थी। 2010-11 के आंकड़े अभी उपलब्ध नहीं हैं। लेकिन ऐसा जान पड़ता है कि इस प्रतिशत में वृद्धि हुई होगी। हालांकि यह इससे पहले वाले चरम बिंदु तक नहीं पहुंच पाएगी।

2008-09 के बाद निजी कॉरपोरेट निवेश में आंशिक रूप से गिरावट आई। इसका कारण घरेलू और सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा अधिक निवेश था। परिणाम यह हुआ कि घरेलू और निजी कॉरपोरेट तथा सार्वजनिक क्षेत्रों को मिलाकर सकल अचल पूंजी गठन सघउ के 28.7 प्रतिशत से बढ़कर 2007-08 में 33 प्रतिशत तक आ गया जो सबसे ज्यादा था। इसके बाद गिरावट आई और 2008-09 में यह घटकर 32 प्रतिशत पर आ गया। 2009-10 में इसमें और गिरावट आई तथा यह 30.8 प्रतिशत हो गया।

यह बता पाना मुश्किल है कि कम अवधि में निजी क्षेत्र द्वारा निवेश की क्या स्थिति होगी। लेकिन अचल निवेश क्षेत्र में अगर निरंतरता जारी रही तो ग्यारहवीं योजना में अचल पूंजी गठन की कमी दूर हो सकती है और यह सघउ के 33 प्रतिशत के बराबर हो सकती है। अगर बारहवीं योजनावधि में इसमें कुछ और बढ़ोतरी होने दी गई, जिसमें निजी कॉरपोरेट निवेश शामिल है, तो 2007-08 में चरमबिंदु स्तर मिलेगा और उसके बाद कुछ सुधार दिखाई देगा। इस तरह से बारहवीं योजनावधि में अचल पूंजी गठन की औसत दर लगभग 36 प्रतिशत हो सकती है जो सघउ की वृद्धिदर 9 प्रतिशत प्रतिवर्ष रखने के लिए काफी होगी। इस अनुमान के अनुसार सकल घरेलू पूंजी गठन दर लगभग वैसी ही बनी रहेगी और यह सघउ के 40 प्रतिशत के आस-पास हो सकती है।

इस स्तर के पूंजी गठन के वित्तपोषण की क्षमता बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करेगी कि घरेलू बचत और विदेशी पूंजी प्रवाह की स्थिति क्या रहती है। इन दोनों मोर्चों पर संभावनाएं सकारात्मक जान पड़ती हैं। जैसाकि तालिका-2 में दिखाया गया है, औसत सकल घरेलू बचत दर 2007-08 के चरम बिंदु 36.9 प्रतिशत तक बढ़ गई और उसके बाद 2008-09 के संकट वर्ष के दौरान इसमें गिरावट आई और 32.2 प्रतिशत पर पहुंच गई। सघउ में 4.7 प्रतिशत अंकों की गिरावट का प्रमुख कारण 3.8 प्रतिशत अंक की दर से सरकारी बचत में गिरावट है जो इस बात का संकेत है कि भारत में मुद्रा प्रसार का मुख्य कारण राजकीय सहायता में वृद्धि थी जो पेट्रोल और उर्वरकों की क़ीमतों में समायोजित नहीं हो पाई।

वर्ष 2009-10 में बचत दर फिर से 33.7 प्रतिशत के स्तर पर आ गई जो इस बात का सूचक थी कि सभी वर्गों में सुधार आया है। सभी वर्गों में सरकारी प्रशासन शामिल हैं। हालांकि सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों में बचत दर मंद बनी रही। 2010-11 के दौरान भी इसी प्रकार के सुधार की उम्मीद की जा रही है और आशा है 2011-12 में राजकोषीय समेकन आएगा और ग्यारहवीं योजना के अंत में सकल घरेलू बचत दर जो 35 प्रतिशत रही थी वैसी स्थिति नहीं रहेगी। अगर मान लें कि बारहवीं योजना के दौरान इस दिशा में और सुधार होगा और खासतौर से सरकारी क्षेत्र में बचत बढ़ेगी तो हम औसत बचत दर बारहवीं योजनावधि में 37 प्रतिशत के आस-पास मान सकते हैं। अगर इसे चालू खाता घाटे के सघउ के तीन प्रतिशत के साथ मिला दें, तो इसे सकल पूंजी गठन दर के 40 प्रतिशत के आस पास होना चाहिए।

ऊपर जो सूक्ष्म आर्थिक मापदंड प्रस्तुत किए गए वे इस चरण में अनंतिम हैं और इनकी क्षमता योजना आयोग द्वारा इस्तेमाल किए जाने वाले विभिन्न मॉडलों के जरिये परखी जाएगी। कुछ भी हो, इनसे संकेत मिलता है कि अगर कोशिशें जारी रहीं, तो घरेलू बचत और निवेश दोनों बढ़ सकते हैं और ये 9 प्रतिशत के आस-पास रह सकते हैं।

श्रम निवेश

भारतीय अर्थव्यवस्था में तेज़ विकास के लिए श्रम पूर्ति के भी बेहतर आसार हैं। ये जाना-माना तथ्य है कि भारतीय कार्यशील जनसंख्या अगले 20 वर्षों में बढ़ेगी जबकि औद्योगिक देशों में, चीन में भी, यह कम हो रही है। इसे कभी-कभी जनसंख्या वृद्धि का लाभप्रद पहलू माना जाता है लेकिन ध्यान देने की बात है कि बढ़ता हुआ कार्यबल तभी लाभप्रद हो सकता है जब (क) सघउ विकास में तेज़ी लाने के लिए पर्याप्त निवेश किया जाए ताकि श्रम शक्ति की उत्पादकता से लाभ उठाया जा सके, और (ख) अगर नये युवाओं को शिक्षा और दक्षता का प्रशिक्षण दिया जाता रहा और वह परिस्थितियों के अनुकूल रहा। अगर ये दोनों बातें न हुईं, तो श्रम शक्ति में नये युवा वर्ग के प्रवेश से बेरोज़गारी बढ़ सकती है जिसके परिणामस्वरूप अशांति फैल सकती है। भारत में उच्च स्तर के निवेश की संभावनाएं अच्छी हैं जिनके कारण ऊपर बताए जा चुके हैं। लेकिन युवा शक्ति को नयी ज़रूरतों के अनुकूल प्रशिक्षण देना और उनकी दक्षता बढ़ाना ज्यादा चुनौतीपूर्ण है।

तालिका-3 में औसत वर्षों में 15 साल तक की आयु वाली आबादी की स्कूल जाने की स्थिति दिखाई गई है और भारत की अन्य चुनिंदा देशों के साथ तुलना की गई है।

भारत में स्कूल में पढ़ने की औसत वर्षों की संख्या 1990 में जहां 3.45 थी वहीं यह 2000 में 4.20 हो गई और 2010 में 5.12 पर पहुंच गई। यह चीन की 1990 में 5.62 और 2000 में 7.11 तथा 2010 में 8.17 के साथ तुलनीय है। इस मामले में भारत महत्वपूर्ण ढंग से चीन से पिछड़ा हुआ है और श्रमशक्ति की शिक्षा के मामले में भारत की स्थिति 1985 में चीन के साथ इस मामले में तुलनीय थी। उस समय चीन ने पिछले 30 वर्षों में सघउ के वार्षिक विकास की 10 प्रतिशत प्रतिवर्ष से अधिक की दर प्राप्त की थी। ऐसा

तालिका-2

बचत और निवेश

	2004-05	2005-06	2006-07	2007-08	2008-09	2009-10
1. सकल घरेलू बचत (सघउ का प्रतिशत) जिसमें से -	32.4	33.5	34.6	36.9	32.2	33.7
आवासीय क्षेत्र	10.1	11.9	11.3	11.7	10.8	11.8
निजी कॉरपोरेट क्षेत्र	6.6	7.5	7.9	9.4	7.9	8.1
सरकारी प्रशासन	-2.3	-2.1	-1.0	0.5	-3.3	-1.2
सार्वजनिक उद्यम	4.6	4.5	4.6	4.5	4.0	3.4
2. सकल घरेलू पूंजी गठन (सघउ) प्रतिशत	32.5	34.3	35.9	38	35.4	35.8
3. सकल अचल पूंजी गठन (सघउ का प्रतिशत) जिसमें से -	28.7	30.3	31.3	32.9	32.0	30.8
घरेलू क्षेत्र	12.7	11.2	10.9	10.6	13.1	11.5
निजी कॉरपोरेट क्षेत्र	9.1	11.8	12.5	14.3	10.4	10.8
सार्वजनिक क्षेत्र	6.9	7.4	7.9	8.1	8.6	8.4

स्रोत: केंद्रीय आंकड़ा संगठन, सांख्यिकीय एवं कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय, भारत सरकार

कोई कारण नहीं है कि भारत ऐसा न कर सके। खासतौर से पिछले वर्षों में स्कूलों में अधिक बच्चों को लाने और अंतिम परीक्षा से पहले ही उनके पढ़ाई छोड़ जाने की दर में कमी आई है। इससे सुनिश्चित होता है कि भारतीय श्रम की दक्षता और गुणवत्ता में जो बढ़ोतरी होगी वह वर्तमान औसत से कहीं ज्यादा होगी ।

ग्यारहवीं योजनावधि में कई प्रकार के महत्वपूर्ण उपाय किए गए जिनमें सबके लिए प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाना शामिल है। शिक्षा का अधिकार अधिनियम पास किया गया और माध्यमिक शिक्षण संस्थानों का विस्तार बड़े पैमाने पर हुआ। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में अनेक अन्य उपाय भी किए गए। ग्यारहवीं योजना अवधि में सबको शिक्षा की पहुंच में लाने के उद्देश्य से मात्रात्मक विस्तार पर बल दिया गया। इसे बारहवीं योजना में भी जारी रखना होगा। साथ ही, गुणवत्ता पर भी खास ज़ोर देना होगा। इन क्षेत्रों में भी केंद्र और राज्य सरकारों द्वारा विशेष उपाय किए जाने की ज़रूरत है और साथ ही निजी क्षेत्र को भी सहयोग देना होगा।

गत वर्षों में दक्षता विकास की अनदेखी की गई है और इस क्षेत्र में गतिविधियां बढ़ाने की ज़रूरत है। हमारी वर्तमान 90 प्रतिशत श्रमशक्ति को काम पर लगाए जाने से पहले कोई औपचारिक प्रशिक्षण नहीं मिला था। उनमें जो कुछ दक्षता है वह सिर्फ़ काम करने की वजह से आई है। यह किसी आधुनिक अर्थव्यवस्था की सघउ में 9 प्रतिशत प्रतिवर्ष की वृद्धि के अनुरूप नहीं है। ग्यारहवीं योजना में लक्ष्य रखा गया था कि क़रीब 50 करोड़ व्यक्तियों को 2020 तक कोई न कोई औपचारिक प्रशिक्षण दिया जाएगा। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए कई उपाय किए गए हैं जिनमें राष्ट्रीय दक्षता विकास परिषद की स्थापना शामिल है। प्रधानमंत्री इसके अध्यक्ष हैं और राज्य स्तर के परिषदों की अध्यक्षता वहां के मुख्यमंत्री करते हैं। सरकारी ख़र्च पर एक दक्षता विकास निगम की स्थापना भी की गई है जो निजी क्षेत्र की अगुवाई में दक्षता विकास के उपाय करता है। दक्षता विकास के काम में निजी क्षेत्र को शामिल करना बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि ऐसा करने से उत्पन्न की गई दक्षता को काम मिलने की संभावना बढ़ जाती है।

उत्पादकता वृद्धि के कारक

यह जानी-मानी बात है कि सघउ की अधिक विकासदर को कुछ प्रारंभिक निवेश की चीज़ों के त्वरित विकास की ज़रूरत होती है। इनमें पूंजी और श्रम शामिल हैं। लेकिन इससे भी ज्यादा ज़रूरी है कुल कारक उत्पादकता वृद्धि (टीएफपीजी)। टीएफपीजी में तकनीकी प्रगति और कारकों का सदुपयोग करने की क्षमता शामिल है। ऐसा तभी संभव होता है जब ऐसे आर्थिक और संस्थागत सुधार किए जाएं जो उत्पादकता को बढ़ा सकें। 1991 से जिस सुधार कार्यक्रम पर अमल किया जा रहा है वह टीएफपीजी के तेज़ी से विकास के लक्ष्य में सहायक है।

निर्माता क्षेत्र पर ध्यान देकर अगर टीएफपीजी का अध्ययन करें तो पाएंगे कि इस क्षेत्र में मिले-जुले परिणाम दिखाई दिए हैं। 1990 के दशक में जो अध्ययन किए गए उनमें पाया गया कि पहले वाले दशक के मुक़ाबले टीएफपीजी में गिरावट आई अथवा बाद वाले दशक में (2000) यह ज्यों का त्यों बना रहा। वर्ष 2004 में इसकी सूचना गोल्डर से मिली। हाशिम और विरमानी (2011) द्वारा तैयार एक शोधपत्र में कहा गया कि ये जे कर्व की स्थिति है जब टीएफपीजी में पहले गिरावट आती है फिर उसमें वृद्धि होती है और उसकी संभावना ऊंची टीएफपीजी वृद्धि बनती है। शर्त यह होती है कि अतिरिक्त सुधार लागू किए जाएं। समग्र स्तर पर टीएफपीजी के बारे में किए गए अध्ययनों में पता चला है कि कुल मिलाकर ये सकारात्मक रहे हैं। विरमानी ने (2006) अनुमान लगाया है कि जहां टीएफपीजी का योगदान 1965-66 से 1979-80 तक की अवधि में 0.1 प्रतिशत रहा वहीं यह 1979-80 से 1991-92 की अवधि में बढ़कर 2.9 और आखिरकार 1992-93 से 2003-04 के बीच 3.6 प्रतिशत हो गया। भल्ला ने (2011) अनुमान लगाया है कि 1985 से 2003 तक टीएफपी वृद्धिदर 3 प्रतिशत थी जो 2003 से 10 तक की अवधि में बढ़कर 3.7 प्रतिशत हो गई।

ये परिणाम उन अनुमानों से संबद्ध हैं जो टीएफपीजी वृद्धि के बारे में प्रतिपादित किए गए हैं। अनेक अन्य सरोकार भी हैं जो आंकड़ों और मॉडल विनिर्देशों से संबद्ध हैं। लेकिन कुल मिलाकर अर्थव्यवस्था स्तर पर किए गए अध्ययनों से ऐसे संकेत मिलते हैं कि 1991 से जो अर्थव्यवस्था में सुधार किए गए, उनके चलते अर्थव्यवस्था की वृद्धि संभावनाएं बढ़ गई है और टीएफपीजी स्तर भी बढ़ा है। भविष्य को देखते हुए महत्वपूर्ण मुद्दा यह बनता है कि क्या हम टीएफपीजी की जारी ऊंची वृद्धिदर पर निर्भर रह सकते हैं। इस संदर्भ में ध्यान देने की बात यह है कि आर्थिक सुधारों के शुरुआती चरण में टीएफपीजी दर सिर्फ़ उत्पादकता वृद्धि के संकेत ही नहीं देती बल्कि इस तथ्य की ओर भी इशारा करती है कि अर्थव्यवस्था ऐसी स्थिति की ओर जा रही है जो सीमांत को छूती है। लेकिन अभी भारतीय अर्थव्यवस्था संक्रमण की स्थिति में है और इसमें उत्पादकता के कुल कारकों की संभावित शक्ति से फायदे उठाए जाने की संभावना मौजूद है। शर्त यह होगी कि आर्थिक सुधार लगातार चलते रहें और इन्हें सशक्त बनाया जाए।

कुछ महत्वपूर्ण नीतिगत चुनौतियां

अनुकूल सूक्ष्म कारक महत्वपूर्ण हैं लेकिन वे ऐसा माहौल ही तैयार कर सकते हैं जो अनुकूल नीतिगत उपायों से चल सकते हैं। अगर इन मुद्दों का व्यापक विश्लेषण किया जाए, तो यह इस अध्ययन का एक अंग होगा। इस खंड में यह जानने की कोशिश की गई है कि ऐसे कौन से महत्वपूर्ण और नीतिगत मुद्दे हैं जिन पर वृद्धिदर 9 प्रतिशत रखने की दृष्टि से ध्यान देना होगा। ऐसा करके ही बारहवीं योजना को अधिक समावेशी और सतत विकासशील बनाया जा सकेगा। इन्हें चालू रखने के लिए नये उपाय किए जाने की ज़रूरत है।

सूक्ष्म आर्थिक जमा से योजना का वित्तपोषण

जैसाकि पहले कहा जा चुका है उत्प्रेरक उपायों के चलते केंद्र और राज्यों के राजकोषीय घाटे में वृद्धि हुई है और इसे घटा कर उपयुक्त स्तर पर लाना है। यह प्रक्रिया शुरू हो गई है और केंद्र के राजकोषीय घाटे में 2010-11 में जहां 5.1 प्रतिशत घाटा था, वहीं इसमें हर साल 0.5 प्रतिशत की कमी लाकर इसे अगले तीन वर्षों में सघउ के 3 प्रतिशत के स्तर पर लाना है। अगर मान लें कि राज्यों का राजकोषीय घाटा लगभग 2.5 प्रतिशत के आस-पास रहता है तो केंद्र का मिलाजुला घाटा 2014-15 तक

5.5 प्रतिशत के आस-पास आ सकता है।

इस प्रस्ताव के अनुसार 2010-11 में जहां केंद्र और राज्यों का मिला-जुला घाटा 7.7 प्रतिशत था वहीं इसे घटा कर 2014-15 में 5.5 प्रतिशत के आस-पास लाना है। यह लक्ष्य आसान नहीं है। असल में 2014-15 तक घाटे में कमी लाने का जो लक्ष्य तय किया गया है वह 2007-08 में पूरा किए गए 4.8 प्रतिशत कमी लाने के लक्ष्य से भी ज्यादा है। लेकिन असली चुनौती यह है कि राजकोषीय घाटे में कमी की जाए, साथ ही जितना घाटा हो रहा है वह केंद्र और राज्यों द्वारा किए जा रहे सघउ के 1.5 प्रतिशत से नीचे हो। यह न्यूनतम आवश्यकता है और ऐसा करके हम शिक्षा, स्वास्थ्य और बुनियादी सुविधाओं के वित्तपोषण का लक्ष्य पूरा कर पाएंगे जिसमें ग्रामीण और अन्य पिछड़े इलाक़ों में मूल सुविधाएं जुटाना शामिल है।

अगर शिक्षा और स्वास्थ्य पर होने वाले व्यय को इकट्ठा करें तो भी यह योजनागत ख़र्च से सघउ के लगभग 2 प्रतिशत से ज्यादा होगा। महत्वपूर्ण सुविधाओं पर भी सघउ के 0.5 प्रतिशत के बराबर ख़र्च करना होगा। इस प्रकार से कुल ख़र्च 2.5 प्रतिशत अंक से अधिक हो जाएगा। अगर कुल योजना ख़र्च से 1.5 प्रतिशत अंक घटा दें, तो इसका निहितार्थ यह होगा कि योजनागत स्क़ीमों में थोड़ा-सा ख़र्च बढ़ जाएगा।

अगर राजकोषीय घाटे में 2.2 प्रतिशत अंकों की कमी की जाए और योजना व्यय को सघउ के 1.5 प्रतिशत के बराबर बढ़ा दिया जाए तो भी इसमें सघउ के 3.7 प्रतिशत अंकों के बराबर सुधार की ज़रूरत होगी जोकि राजस्व बढ़ाकर और गैर-योजना व्यय घटाकर ही किया जा सकता है। वाजिब उम्मीद तब होगी जब राजस्व में सघउ के 2 प्रतिशत से अधिक वृद्धि की जाए और गैर-योजना व्यय में सघउ के 1.5 प्रतिशत की कमी लाई जाए।

जहां तक राजस्व का सवाल है, हमारा लक्ष्य यह होना चाहिए कि हम दर बढ़ाकर कर अनुपात बढ़ाएं। अर्थव्यवस्था की जीवंतता के कारण हम कुछ हद तक कर अनुपात में वृद्धि कर सकते हैं लेकिन लक्षित सुधारों का काफी बड़ा भाग कर सुधारों के रूप में होना चाहिए। इस संदर्भ में सबसे महत्वपूर्ण उपाय हैं- माल एवं सेवा कर (जीएसटी)। जिसके लिए संसद में संविधान संशोधन विधेयक पेश किया जा चुका है। जैसे ही जीएसटी लागू हो जाएगा, मौजूदा कर व्यवस्था को बदल देगा। वर्तमान व्यवस्था के अनुसार केंद्र और राज्य सरकारें अलग-अलग अनेक प्रकार के कर लगाती हैं। नयी व्यवस्था लागू होने के बाद अधिक युक्तियुक्त व्यवस्था लागू की जाएगी और केंद्र और राज्य अलग-अलग कर लगा सकेंगे। लेकिन उनकी व्यवस्था एक ही रहेगी और संभवत: दरें भी एक जैसी होंगी। केंद्र और राज्य सरकारों द्वारा लागू की जाने वाली इस व्यवस्था में जीएसटी एक मूल्यवर्धित कर के रूप में लागू किया जाएगा जिससे आर्थिक कुशलता बढ़ेगी और राजस्व संग्रह में वृद्धि होगी। जीएसटी लागू करने के लिए संविधान संशोधन करना होगा। इसीलिए इसे कार्यान्वित करने में कुछ समय लग सकता है लेकिन जैसे ही यह लागू होगा, यह एक बड़ी उपलब्धि बन जाएगी। संसद में इस विधेयक की प्रगति पर ध्यान रखा जाएगा और उम्मीद की जा रही है कि निवेशक इसके परिणामों का व्यापक स्वागत करेंगे।

गैर-योजनागत ख़र्चों में कुछ कमी भी आएगी। शर्त यह है कि वृद्धिदर ऊंची रहे क्योंकि सरकार की रोज़गार नीति में महत्वपूर्ण वृद्धि होने की उम्मीद नहीं है और बारहवीं योजनावधि में कोई नया वेतन आयोग नहीं बैठाया जाएगा। लेकिन इस क्षेत्र में भी प्रगति इस बात पर निर्भर होगी कि केंद्र और राज्य क्षेत्रों में जो सब्सिडी दी जा रही है उसमें कमी लाई जाए। केंद्रीय क्षेत्र में मुख्यत: खाद्यान्नों, उर्वरक और पेट्रोलियम पदार्थों पर सब्सिडी दी जा रही है जो कुल मिलाकर सघउ के क़रीब 2 प्रतिशत के बराबर बैठती है। राज्यों के बजट में भी सब्सिडी के अंश मौजूद हैं। लेकिन सबसे ज्यादा सब्सिडी राज्य विद्युत संगठनों को होने वाली क्षति की भरपाई के रूप में दी जा रही है। यह इस समय सघउ के एक प्रतिशत के बराबर है।

खाद्यान्नों पर दी जा रही सब्सिडी जो इस समय सघउ के 0.7 प्रतिशत के आस-पास है, में कटौती करना मुश्किल होगा। राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा संबंधी वचनबद्धताओं के चलते ऐसा संभव नहीं है। केंद्र द्वारा दी जा रही सब्सिडी पर नियंत्रण ईंधन और उर्वरकों में कटौती करके किया जा सकता है। जहां तक राज्यों का सवाल है उन्हें विद्युत क्षेत्र में होने वाली बड़े पैमाने पर क्षति पर ध्यान देना होगा। इनमें काफी हद तक लागत से कम दर पर बिजली की आपूर्ति, खासतौर से किसानों को, और कुछ वर्गों को नि:शुल्क आपूर्ति शामिल है। कुछ क्षति अकुशलता और बिल भेजने और राजस्व संग्रह में शिथिलता के चलते भी होती है।

सब्सिडी में कटौती करना आसान नहीं होगा। इसके लिए सार्वजनिक और राजनीतिक सहयोग जुटाना होगा और बड़े पैमाने पर दी जा रही कटौती करनी होगी। ऐसा करके ही हम स्वास्थ्य, शिक्षा और कृषि संबंधी मूल सुविधाएं जुटा सकेंगे।

कृषि में बेहतर निष्पादन के लिए नीतियां

कृषि में 4 प्रतिशत विकास का लक्ष्य ग्यारहवीं योजना में तो प्राप्त नहीं किया जा सका लेकिन इसे बारहवीं योजना के दौरान प्राप्त करना बहुत ज़रूरी है क्योंकि ऐसा करना समावेशी विकास के लिए महत्वपूर्ण होगा। सौभाग्य की बात है कि तकनीकी रूप से यह लक्ष्य व्यवहार्य है और ज़मीन की उत्पादकता 80 से 100 प्रतिशत तक बढ़ाई जा सकती है। इसके लिए आधुनिक कृषि तकनीकों का इस्तेमाल करना होगा लेकिन इसके लिए कई मोर्चों पर काम करना होगा।

कृषि के लिए महत्वपूर्ण है सिंचाई के लिए पानी। इसके प्रबंधन में पानी के इस्तेमाल के समय और गुणवत्ता में सुधार लाना होगा। साथ ही, उन्नत किस्म के बीजों का इस्तेमाल करना होगा। इसके अलावा मिट्टी के परीक्षण और मिट्टी में पोषक तत्व बढ़ाने के उपायों पर भी ध्यान देना होगा। मिट्टी में कार्बन तत्व बढ़ाने के उपाय करने होंगे। पानी के बेहतर इस्तेमाल के लिए नयी तकनीकें अपनानी होंगी। टपक सिंचाई जैसे तरीक़ों का इस्तेमाल करना होगा और चावल की खेती में नये तरीक़े अपनाने पड़ेंगे।

राज्य सरकारों को भी इस मामले में कई मोर्चों पर काम करने की आवश्यकता होगी। उन्हें किसानों की ज़रूरतों पर ध्यान देना होगा ताकि वे अपने निवेश का अधिकाधिक फल प्राप्त कर सकें। किसानों को समझाना होगा कि वे उन्नत किस्म की खेती के लिए पूरा पैकेज़ अपनाएं और इसके लिए ज़रूरी सुविधाएं उपलब्ध करनी होगी। भविष्य में

खेती के काम में अधिकांश वृद्धि अनाज उत्पादन में करनी होगी लेकिन बागवानी, डेयरी उद्योग और मछली पालन भी महत्वपूर्ण क्षेत्र हैं। इन क्षेत्रों में पैदा होने वाली चीज़ें जल्दी ख़राब हो जाती हैं अत: इनके विपणन के लिए सुविधाएं जुटानी होगी, परिवहन के इंतजाम करने होंगे और ऐसे उपाय करने होंगे कि बर्बादी कम से कम हो। इस काम में निजी क्षेत्र की सहायता लेनी पड़ सकती है। इसे सुकर बनाने के लिए उन कानूनों को बदलना होगा जो वर्तमान में निजी क्षेत्र को हतोत्साहित करते हैं। बागवानी की पैदावार को कृषि उपज विपणन समिति कानून से बिल्कुल मुक्त करना होगा। इसमें उन लोगों द्वारा बाधा डाली जा सकती है जिनके निहित स्वार्थ हैं और जो आजकल मंडियों का नियंत्रण करते हैं। सड़कों की बेहतर व्यवस्था करनी होगी। इसके लिए प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना चलाई गई है जो बहुत महत्वपूर्ण है।

एक और क्षेत्र जिसमें सरकार योगदान कर सकती है वह है- ज़मीन पट्टे पर देने संबंधी कानूनों में सुधार। भारत में जोतों के टुकड़े हो जाते हैं और बहुत छोटे खेतों पर आधुनिक ढंग से खेती व्यवहार्य नहीं होती। इसके लिए छोटे किसानों को अपने खेत बड़े किसानों को पट्टे पर दे देना चाहिए और खुद उनमें रोज़गार ग्रहण कर लेना चाहिए। किसान ऐसा करना भी चाहेंगे बशर्ते कि वे अपने खेत पट्टे पर दे पाएं। अभी तक कई राज्यों में खेत पट्टे पर देना कानूनन संभव नहीं है। जहां इसकी इज़ाज़त है, वहां के कानून भी बटाईदारों के पक्ष में हैं। समय की ज़रूरत यह है कि किसानों के हितों की रक्षा की जाए ताकि वे अपनी ज़मीन पट्टे पर दे सकें।

कृषि ग्रामीण समृद्धि के लिए बहुत ज़रूरी है लेकिन दुर्भाग्य की बात है कि कुछ ही राज्य सरकारें ऐसी हैं, जिन्होंने इस पर ध्यान दिया है। फिलहाल बिजली, बीज और ऋण की सुविधाएं दी जा रही हैं और उन पर कई तरह की सब्सिडी भी दी जाती है लेकिन यह खेती में बदलाव लाने के लिए और खेती की नयी तकनीकी अपनाने के लिए काफी नहीं है। हमें इसके लिए किसानों को लंबी अवधि में सब्सिडी से स्वतंत्र करना होगा ताकि वे भूमि की उत्पादकता बढ़ा सकें।

रोज़गार सृजन

बारहवीं योजना की एक प्रमुख चुनौती यह है कि दिनोंदिन बढ़ती जनसंख्या के लिए गैर कृषि क्षेत्र में रोज़गार के अवसर कैसे बढ़ाए जाएं। ऐसा करके ही बढ़ रही जनशक्ति को काम पर लगाया जा सकेगा। अगर खेती को 4 प्रतिशत की विकासदर प्राप्त करनी है तो इसका तरीक़ा यही होगा कि खेती में श्रम उत्पादकता को 4 प्रतिशत से ऊंची दर पर लाया जाए और ऐसा करने के लिए खेती में रोज़गार पाने वाली जनशक्ति में कमी लाना होगा। फिलहाल खेती में रोज़गार के अवसर कम हैं और खेतिहर मज़दूरों को सभी सातों दिनों काम नहीं मिल पाता। इसके लिए उन्हें कृषि क्षेत्र से हटा कर और ज्यादा मज़दूरी वाले गैर-कृषि कार्यों में लगाना होगा। इनमें से कुछ कार्य ग्रामीण क्षेत्रों में ही हो सकते हैं। खेती के विकास से गैर-कृषि सेवाओं की मांग बढ़ेगी और इससे भी रोज़गार के नये अवसर पैदा होंगे। ये अवसर आधुनिकीकृत विपणन और कृषि आधारित प्रसंस्करण उद्योगों में हो सकते हैं।

हमें जितने रोज़गार के अवसरों की ज़रूरत हैं उनमें से अधिकांशत: विनिर्माता उद्योगों के प्रसार से प्राप्त होते हैं। ग्यारहवीं योजना में औद्योगिक क्षेत्र के दस से ग्यारह प्रतिशत विस्तार की औसत दर निर्धारित की गई थी। लेकिन इस क्षेत्र में वास्तविक विकासदर 8 प्रतिशत से ज्यादा होने की संभावना नहीं है। अधिकांश आर्थिक प्रोत्साहनों से संकेत मिलते हैं कि अगर बारहवीं योजनावधि में 9 प्रतिशत गति प्राप्त करनी है और खेती का सघउ में योगदान 15 प्रतिशत है तो खेती की सिर्फ़ 4 प्रतिशत वृद्धि काफी नहीं होगी और सेवाओं का विकास 10 प्रतिशत और उद्योगों का विकास भी लगभग 11 प्रतिशत होना चाहिए। उद्योगों का विकास सिर्फ़ तेज़ करने की ही ज़रूरत नहीं है, बल्कि इसका ऐसा विकास होना चाहिए कि इसमें अधिक श्रमशक्ति लगाई जा सके और जो श्रमशक्ति इसमें लगाई जाए, वह कम दक्षता वाली और ग्रामीण क्षेत्रों से आई हुई हो।

लघु और औसत दर्ज़े के उद्योगों में अधिकांशत: मज़दूरों को काम मिलता है। इन्हीं उद्योगों में नवाचार और उद्यमशीलता विकसित होती है। हमें ऐसा माहौल पैदा करना होगा जिससे उद्योगों का विकास तेज़ हो लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि उन्हें रियायतें और सब्सिडी देकर विकसित किया जाए। ऐसा करने के बजाय खास प्रयास इस बात का होना चाहिए कि लघु उद्योगों को बढ़िया बुनियादी सुविधाएं उपलब्ध कराई जाएं जिनमें भरोसेमंद और वाजिब दरों पर बिजली आपूर्ति, परिवहन की बेहतर सुविधाएं और दक्ष श्रम की उपलब्धता प्रमुख हैं। बैंकों से इन्हें संसाधन दिलाने की व्यवस्था होनी चाहिए ताकि सफल उद्यमी उनसे लाभ उठा सकें।

औद्योगिक गतिविधियों का प्रसार सभी क्षेत्रों में होना चाहिए ताकि पूरी जनसंख्या इनसे लाभ उठा सकें। गांवों से शहरों की ओर भागने की प्रवृत्ति तभी पैदा होती है जब कुछ क्षेत्रों में विकास अधिक होता है जबकि कुछ क्षेत्र पिछड़े रह जाते हैं। हमारा प्रयास यह होना चाहिए कि राज्यों में रोज़गार के अवसर सुनिश्चित किए जाएं और ऐसे उद्योगों को बढ़ावा दिया जाए जिनमें अधिकांश श्रमशक्ति को काम मिल सके। इस लक्ष्य को प्राप्त करने का बेहतर तरीक़ा यह होगा कि राज्य सरकारें बुनियादी सुविधाओं के विकास और श्रमशक्ति की दक्षता बढ़ाने की कोशिशें तेज़ करें और पिछड़े क्षेत्रों में उद्योग-धंधे शुरू किए जाएं।

राज्य सरकारों को व्यापार क्षेत्र में लागत घटाने के लिए भी ज्यादा प्रयत्नशील होने की ज़रूरत है। इसके लिए उन्हें विनियामक संस्थाएं खोलनी होगी और कर व्यवस्था तथा संगठनों को व्यापार हितैषी बनाना होगा। इसके अलावा उन मुद्दों पर भी ध्यान देना होगा जो बहुत समय से उपेक्षित रहे हैं।

बुनियादी सुविधा विकास

ग्यारहवीं योजना में बिजली, सड़क, बंदरगाह, हवाईअड्डे, रेलवे जैसी ढांचागत सुविधाओं पर ज्यादा पूंजी निवेश का महत्व स्वीकार किया गया था। इसीलिए योजना के पहले वर्ष यानी 2006-07 के सघउ के 5.6 प्रतिशत की जगह पूंजी निवेश को बढ़ाकर योजनावधि के अंतिम वर्ष अर्थात 2011-12 में लगभग 9 प्रतिशत करने की बात कही गई थी। इस क्षेत्र में वास्तविक उपलब्धि क़रीब 8.5 प्रतिशत रहने की उम्मीद है। दूरसंचार जैसे कुछ क्षेत्रों में इससे ज्यादा पूंजी निवेश का लक्ष्य प्राप्त किया गया जबकि कुछ क्षेत्रों में यह उपलब्धि काफी कम है। ग्यारहवीं

योजना के समय जो महत्वपूर्ण काम शुरू किए गए थे, उन्हें बारहवीं योजना में जारी रखना है। इसीलिए बुनियादी सुविधाओं में पूंजी निवेश की दर 2017-18 तक लगभग 10.5 प्रतिशत करनी होगी। इसका मतलब यह है कि बुनियादी सुविधाओं में जहां 50 अरब डॉलर निवेश का लक्ष्य ग्यारहवीं योजनावधि में रखा गया था उसे बारहवीं योजनावधि में बढ़ाकर एक खरब डॉलर करना है। इसमें दो बड़ी चुनौतियां सामने आएंगी। पहली तो यह कि इतना निवेश कैसे जुटाया जाए और दूसरी यह कि कार्यान्वयन संबंधी बाधाओं से कैसे निपटा जाए?

जहां तक वित्तपोषण का सवाल है, यह स्पष्ट है कि सार्वजनिक क्षेत्र के संसाधन दुर्लभ होंगे और जैसाकि ऊपर कहा गया है इन संसाधनों के निवेश के लिए पहली प्राथमिकता होगी शिक्षा और स्वास्थ्य, जो सर्वसमावेशी विकास के लिए बहुत महत्वपूर्ण हैं, फिलहाल इनके वित्तपोषण की कोई व्यवस्था नहीं है। ग्रामीण क्षेत्रों में ज़रूरी बुनियादी सुविधाएं कैसे जुटाई जाएं, यह भी एक समस्या है। इसीलिए केंद्र और राज्य सरकारों दोनों को बुनियादी सुविधाओं के बारे में ऐसी नीति अपनानी होगी जिसमें सार्वजनिक निवेश और सार्वजनिक-निजी साझेदारी का मिला-जुला रूप हो। सार्वजनिक निवेश ऐसे क्षेत्रों में होना चाहिए जहां निजी क्षेत्र नहीं जाना चाहते। बुनियादी सुविधाओं के बाक़ी हिस्से को जहां तक हो सके, सार्वजनिक-निजी साझेदारी के माध्यम से विकसित किया जाए। इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण अनुभव प्राप्त किया जा चुका है और अनेक शुरुआती समस्याएं दूर की जा चुकी हैं। हमें इस अनुभव से लाभ उठाना है और मूल सुविधाओं में सार्वजनिक-निजी साझेदारी के जरिये निवेश बढ़ाकर इसे ग्यारहवीं योजना के 30 प्रतिशत से बारहवीं योजना में 50 प्रतिशत करना है।

दूसरी प्रमुख चुनौती है- मूल सुविधाओं की विकास योजनाओं को लागू करना। अकसर देखा गया है कि मूल सुविधा विकास योजनाएं ज़मीन प्राप्त करने की मुश्किलों के कारण पिछड़ जाती हैं। जहां ज़मीन प्राप्त कर ली जाती है, वहां अतिक्रमण और अन्य संगठनों के साथ तालमेल में कमी जैसी समस्याएं सामने आती हैं। कई बार परियोजनाएं इसलिए रुक जाती हैं, क्योंकि उनके लिए ज़रूरी वन और पर्यावरण संबंधी अनुमति नहीं मिल पाती। वन और पर्यावरण की रक्षा करना भी ज़रूरी है लेकिन इनके लिए जो तरीक़े अपनाए जाते हैं, वे पारदर्शी नहीं हैं।

कुछ भी हो, इस मामले में परियोजना विकासकर्ताओं को निर्दोष नहीं ठहराया जा सकता। पर्यावरण संबंधी नियमों और अन्य कारणों से वे शिथिल हो गए हैं। पर्यावरण नियमों की अनदेखी करने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। कई बार यह सोचकर लापरवाही की जाती है कि अनुमति तो मिल ही जाएगी अथवा अनियमितताओं को बाद में नियमित करा लिया जाएगा। हमें ऐसी व्यवस्था अपनानी है जिसमें अधिक पारदर्शिता हो।

वित्तीय सुधार

त्वरित विकास के लिए ज़रूरी है कि हमारी वित्तीय व्यवस्था कुशल हो और बचत का आर्थिक रूप से कुशल इस्तेमाल किया जा सके। इस संदर्भ में वित्तीय व्यवस्था का मतलब है कि बैंक और गैर-बैंकिंग कंपनियां तथा संस्थान कार्यकुशल हों, और पूंजी बाज़ार पूर्णरूपेण विनियमित हों जिसमें म्युचुअल फंड, इंश्योरेंस कंपनियां और पेंशन फंड आदि अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकें।

कुछ अर्थों में कहा जा सकता है कि भारत का वित्तीय क्षेत्र सुदृढ़ स्थिति में है और उसे सावधानीपूर्वक किए गए उदारीकरण से लाभ पहुंचा है। विनियामक व्यवस्था सुदृढ़ बनाई जा चुकी है। अंतरराष्ट्रीय वित्तीय संकट के समय हमारी वित्त व्यवस्था निश्चय ही लचीली साबित हुई जो विकासदर बनाए रखने का एक मज़बूत साधन सिद्ध हुई। लेकिन जहां वित्तीय व्यवस्था स्थिर रही, वहीं हमें वित्तीय बिचौलियों की कुशलता बढ़ाने और उनमें नवाचार लाने की ज़रूरत है। ये दोनों ही काम ज़रूरी हैं। इसके लिए हमें सोच-समझकर वित्तीय सुधारों की प्रक्रिया जारी रखनी है। उदारीकरण की प्रक्रिया रोक देने से स्थिति को गलत समझा जा सकता है। वित्तीय सुधारों से संबंधित अनेक महत्वपूर्ण उपाय किए जा रहे हैं। इनमें नये निजी क्षेत्र बैंकों और बैंकों में विदेशी निवेश के एलान की रूपरेखा, बचत दरों का विनियमन, बीमा क्षेत्र में एफडीआई की वर्तमान सीमा 26 से बढ़ाकर 49 प्रतिशत तक करना, पेंशन विनियामक और विकास विधेयक पास करना, बैंकों में अपने इक्विटी शेयरों के लिए शेयरधारकों द्वारा मतदान करने संबंधी कानून पास करना और कंपनी कानून संशोधन विधेयक पास करना ज़रूरी है। अंतिम उपाय के जरिये दिवालियेपन की कार्यवाही का आधुनिकीकरण किया जा सकेगा।

एक प्रफुल्ल और तरल कॉरपोरेट बांड बाजार पैदा करना भी बहुत ज़रूरी है। खासतौर से बुनियादी सुविधाओं में निजी निवेश की ज़रूरत पूरी करने के लिए यह आवश्यक है। अनेक विशेषज्ञ समितियों ने इसके लिए कई विनियामक परिवर्तनों की सिफ़ारिश की है। इनमें से कुछ पर अमल भी किया गया है लेकिन इनके बारे में हमारी प्रतिक्रिया सीमित है। इसका एक कारण है कि राजकोषीय घाटा बहुत ज्यादा है, जिसके चलते कॉरपोरेट स्तर पर ऋण लेने की प्रक्रिया बहुत भीड़भाड़ वाली हो जाती है। इसके लिए राजकोषीय समेकन कार्यक्रम मददगार हो सकता है। संस्थानों के निर्माण के लिए सरकारी प्रतिभूति बाज़ार में सुधार और प्रौद्योगिकी की शुरुआत जैसे उपायों के जरिये भी नयापन लाया जा सकता है। रिज़र्व बैंक ऑफ इंडिया के बाहर सार्वजनिक ऋण प्रबंधन कार्यालय की स्थापना होनी चाहिए जो लागू की जा रही है। यह भी रिज़र्व बैंक को ऋण प्रबंधन की जिम्मेदारियों से मुक्त करने की दिशा में महत्वपूर्ण क़दम होगा। इस दिशा में एक और महत्वपूर्ण उपाय यह होगा कि बांड बाज़ार में प्रारंभिक व्यापारियों को तरलता की सुविधा प्रदान की जाए। इसके अलावा एलआईसी, ईपीएफओ आदि की पुरानी परिपाटियों में सुधार लाया जाए ताकि ये संस्थान अधिक लाभ देने वाले कॉरपोरेट ऋणों में अपना पैसा लगाने के बजाय कम लाभ वाले सरकारी ऋणों में लगाएं। इसका एक कारण यह हो सकता है कि ऋण वापसी में चूक की हालत में ऋण वसूली का कुशल तंत्र मौजूद नहीं है। बैंक की तरह बांडधारकों को भी दिवालियेपन की कार्यवाही का इंतजार करना पड़ता है जिनमें बहुत समय लग जाता है। कंपनी कानून संशोधन विधेयक पास हो जाने के बाद इस दिशा में मुश्किलें कम होंगी। बुनियादी सुविधा ऋण कोष स्थापित करने के प्रस्तावों पर विचार किया जा रहा है। ऐसे कोषों की स्थापना से मूल सुविधा क्षेत्र में काम करने वाली कंपनियों को लाभ होगा और बैंकों

को इनके वित्तपोषण से मुक्ति मिल जाएगी। यह एक सकारात्मक निर्णय होगा और इसके चलते निवेशकों को महत्वपूर्ण संकेत मिलेंगे।

भारतीय बैंकों का आकार भी एक महत्वपूर्ण मुद्दा है। भारत का सबसे बड़ा बैंक यानी स्टेट बैंक ऑफ इंडिया के आकार को अंतरराष्ट्रीय दृष्टि से देखा जाए अथवा एशिया के मानकों के आधार से देखा जाए तो यह काफी छोटा है। बैंक आगे भी औसत अवधि के ऋणों के लिए मुख्य स्रोत तब तक बने रहेंगे तब तक भारत का पूंजी बाज़ार कॉरपोरेट जगत के लिए भरोसेमंद स्रोत नहीं बन जाता। सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों को अपने पूंजी आधार में वृद्धि करनी चाहिए। ऐसा वे तभी कर सकेंगे जब बाज़ार में अतिरिक्त पूंजी उतारेंगे और सरकारी अंशपूंजी 51 प्रतिशत से नीचे आ जाएगी। हालांकि इससे भी सरकार के नियंत्रण में कमी नहीं आएगी। फिलहाल ये राजनीतिक रूप से व्यवहार्य नहीं है लेकिन सरकार भी अपनी पूंजी बढ़ाने के लिए तैयार है ताकि उनका पूंजी आधार 51 प्रतिशत पर बरकरार रहे।

वर्तमान निजी क्षेत्र के बैंकों के तेज़ विकास की भी तुरंत ज़रूरत है। इसके लिए लचीली नीति अपनानी होगी। आजकल जहां बैंकों की शाखाओं के विस्तार की अनुमति मुक्त रूप से मिल जाती है, वहीं ग्रामीण क्षेत्रों में शाखाएं खोलने की शर्त लगा दी जाती है। ग्रामीण बैंकिंग सुविधाएं जुटाने के लिए संभावनाएं बढ़ रही हैं और इसके लिए बैंकिंग पत्राचार और ग्रामीण क्षेत्रों में शाखाएं खोलना ज़रूरी नहीं है।

ऊर्जा चुनौतियों का प्रबंधन

भविष्य में खनिज ईंधनों की अंतरराष्ट्रीय आपूर्ति और कठिन होने वाली है। इसीलिए इन ईंधनों की क़ीमतें भी बढ़ेंगी। ऐसे हालत में सघउ में ऊर्जा घनत्व में कमी लाना ज़रूरी हो गया है। लेकिन इसके साथ ही ऐसे क़दम भी उठाने पड़ेंगे कि आयात पर हमारी निर्भरता कम हो और परंपरागत और गैर-परंपरागत दोनों क्षेत्रों में ऊर्जा की खपत घटाई जाए।

ऊर्जा घनत्व में कटौती

सघउ में ऊर्जा घनत्व में कटौती लाना, ऊर्जा कुशलता में सुधार के लिए ज़रूरी है। इसके लिए हमें दो मोर्चों पर काम करना होगा और इसका कार्यफलक काफी विस्तृत है।

जहां तक ऊर्जा मूल्यों को युक्तिसंगत बनाने का सवाल है, हमारी ऊर्जा क़ीमतें फिलहाल दुनिया के अन्य देशों के मुक़ाबले कम हैं और जब तक इस स्थिति में सुधार नहीं लाया जाएगा, ऊर्जा कुशलता लाना मुश्किल होगा। सरकार ने 2009 में समन्वित ऊर्जा नीति अपनाई थी। उस समय इस सिद्धांत का प्रतिपादन किया गया था कि आयात की गई ऊर्जा की क़ीमतें दुनिया में प्रचलित ऊर्जा क़ीमतों के अनुरूप रखी जाएंगी। इस नीति पर पूरी तरह से अमल करना होगा। मोटर गाड़ियों में काम आने वाले ईंधन की क़ीमतों को नियंत्रणरहित किया जा चुका है। लेकिन डीजल की खपत, जो मोटर स्पिरिट की क़ीमत का चार गुना है, सिर्फ़ सिद्धांत रूप में नियंत्रण मुक्त की गई है। इस फ़ैसले पर अमल करना अभी बाक़ी है। एलपीजी और मिट्टी के तेल की क़ीमतें अब भी प्रशासनिक नियंत्रण में हैं और वे अभी अंतरराष्ट्रीय स्तर से नीचे बनी हुई हैं। बहुत ज़रूरी है कि डीजल को नियंत्रण मुक्त किया जाए और मिट्टी के तेल तथा एलपीजी की क़ीमतों को अंतरराष्ट्रीय मूल्यों के अनुरूप बनाया जाए। लेकिन ऐसा करते हुए ग़रीबों के हितों का ध्यान रखना ज़रूरी होगा।

मिट्टी के तेल और एलपीजी की क़ीमतें बढ़ाने की सरकार की हिचकिचाहट उचित ही है क्योंकि इसकी क़ीमतें बढ़ने से समाज के कमज़ोर वर्ग प्रभावित होते हैं। इसलिए मिट्टी के तेल और घरेलू गैस की वर्तमान क़ीमतें नीची रखने के लिए सब्सिडी देनी पड़ती है। जहां तक मिट्टी के तेल का सवाल है, इसकी काला बाजारी भी बहुत होती है, मिलावट होती है और इसके व्यापार के चलते भ्रष्टाचार बढ़ता है। ग़रीबों की मदद का सबसे बढ़िया तरीक़ा यह होगा कि लक्षित वर्गों को सब्सिडी की अदायगी सीधे कर दी जाए ताकि वह सही लोगों तक पहुंचे। इसके लिए यूनीक आईडेंटिफिकेशन नंबर ज़रूरी होगा।

तकनीकी रूप से कोयला नियंत्रित मूल्य व्यवस्था के अंतर्गत नहीं है लेकिन राष्ट्रीयकृत कोयला कंपनियों ने कोयले की घरेलू क़ीमत अंतरराष्ट्रीय क़ीमतों से काफी कम रखी है। इस अंतर के चलते जब काफी ऊंची क़ीमत पर कोयले का आयात किया जाता है तो बिजली उत्पादक ऐसे कोयले की क़ीमत कम

तालिका-3

स्कूल जाने के औसत वर्ष (जनसंख्या 15 और इससे ऊपर)

	स्कूल जाने के औसत वर्ष
भारत	
1990	3.45
2000	4.20
2010	5.12
चीन	
1990	5.62
2000	7.11
2010	8.17
इंडोनेशिया	
1990	4.25
2000	5.23
2010	6.24
थाईलैंड	
1990	5.41
2000	6.11
2010	7.50

स्रोत: बैरो एंड ली (2010), *ए न्यू डाटा सेट ऑफ एजूकेशन एंड अटेनमेंट इन द वर्ल्ड, 1950-2010, एनबीईआर वर्किंग पेपर नंबर 15902*

रखने का अनुरोध करते हैं और घरेलू क़ीमतों का हवाला देते हैं। अगर कोयले की घरेलू क़ीमत आयातित कोयले की क़ीमत के बराबर हो, तो यह समस्या नहीं उठेगी। फिलहाल ऐसा करना संभव नहीं है इसीलिए दूसरा विकल्प है कि कोल इंडिया विद्युत क्षेत्र की मांग पूरी करने के लिए कोयले का आयात करे और साथ ही एक मिली-जुली मूल्य नीति शुरू की जाए ताकि कोयले के आयात पर हुए ख़र्च को घरेलू क़ीमतों के साथ समायोजित किया जा सके। समय के साथ कोयले की घरेलू क़ीमतों को अंतरराष्ट्रीय क़ीमतों के साथ समायोजित किया जाना चाहिए।

बिजली की क़ीमत स्वतंत्र राज्य विद्युत विनियामकों द्वारा तय की जाती है। लेकिन विनियामकों पर जबरदस्त राजनीतिक दबाव होता है जिसके चलते अनेक राज्यों में क़ीमत तब भी नहीं बढ़ाई जाती जब वह आर्थिक आधार पर पूरी तरह न्यायोचित नहीं रह जाती है। इसके चलते वितरण व्यवस्था गड़बड़ाती है जो पहले ही दबाव में होती है। वितरण व्यवस्था को ठीक से काम करने का अवसर प्रदान किया जाना चाहिए ताकि बिजली की

क़ीमतें कृत्रिम रूप से दबी न रहें, खासतौर से जब कोयले की क़ीमतें बढ़ रही हों।

ऊर्जा मूल्यों को युक्तिसंगत बनाने के साथ ऊर्जा कुशलता भी बढ़ानी होगी। जो उद्योग ऊर्जा का ज्यादा इस्तेमाल करते हैं उन्हें ऊर्जा कुशलता के अंतरराष्ट्रीय मानक अपनाने के लिए समझाया जाना चाहिए। हमें उन मानकों को भी ध्यान में रखना चाहिए जो बिजली के विभिन्न उपकरणों, वाहनों और भवनों के लिए विकसित किए गए हैं। भवनों के लिए विकसित किए गए मानक बहुत महत्वपूर्ण हैं क्योंकि भारत इस क्षेत्र में कार्यवाही कर सकता है और यहां अनेक वाणिज्य भवनों का निर्माण अभी होना बाकी है।

कुल अर्थव्यवस्था के लिए ऊर्जा कुशलता के उपाय अपना लिए जाएं तो इससे काफी किफायत होगी। इस दिशा में सबसे महत्वपूर्ण होगा सड़क और रेल मार्गों पर ध्यान देना, शहरी इलाक़ों में सार्वजनिक परिवहन को निजी क्षेत्र को सौंपना। इसके लिए समुचित कर नीतियां बनाई जानी चाहिए।

जहां तक रेलों का संबंध है, इनके किराये की व्यवस्था में परिवर्तन किए जाने की ज़रूरत है। वर्तमान में किराये में सब्सिडी का अंश होता है। ऐसा ज्यादा किराया न वसूल करने की दृष्टि से किया जाता है। भारत में माल भाड़े और यात्री किराये की दरों में 20 प्रतिशत का अंतर है। चीन में यह कम है। इसका तरीक़ा यह है कि माल भाड़े की दरें कम की जाएं और किराये की दरें बढ़ाई जाएं। इन परिवर्तनों के लिए रेलवे की माल वहन क्षमता में वृद्धि करनी होगी। इस क्षमता में बढ़ोतरी जल्दी से जल्दी किए जाने की ज़रूरत है। रेलवे में भी सार्वजनिक-निजी साझेदारी व्यवस्था लागू की जानी चाहिए। इसकी शुरुआत कंटेनर यातायात से की जा सकती है।

घरेलू ऊर्जा आपूर्ति में बढ़ोतरी

ऊर्जा मांग घटाने के उपायों के साथ ही पूर्ति पक्ष पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए और पेट्रोल, प्राकृतिक गैस और कोयले का घरेलू उत्पादन बढ़ाना चाहिए ताकि अधिक आयात से बचा जा सके।

नीतियों में भी कई प्रकार की कमियां हैं जिन पर ध्यान देने की ज़रूरत है। पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस के क्षेत्र निजी क्षेत्र द्वारा निवेश के लिए खुले हुए हैं। इनमें विदेशी निवेश भी संभव है। उधर, निजी क्षेत्र के निवेशकों का नये स्रोत तलाशने में बेहतर रिकार्ड हैं। लेकिन सार्वजनिक क्षेत्र की तेल कंपनियां इस समय घरेलू पेट्रोल की क़ीमतें कम होने के चलते भारी दबाव में हैं क्योंकि उन्हें ऊंची क़ीमतों से लाभ उठाने के अवसर नहीं दिए जाते। ऊपर जिन ऊर्जा क़ीमतों को युक्तिसंगत बनाने के उपायों की चर्चा की गई है, उनसे ऊर्जा आपूर्ति में वृद्धि हो सकेगी।

कोयले के उत्पादन में इसलिए भी रुकावट पड़ती है क्योंकि यह उद्योग राष्ट्रीयकृत है। कैप्टिव कोयला खानों में निजी क्षेत्र द्वारा निवेश की इज़ाज़त है जिससे इस क्षेत्र में भी कुछ महत्वपूर्ण निवेशक आ रहे हैं। लेकिन भविष्य की ओर देखते हुए इस नीति को और उदार बनाए जाने की ज़रूरत है। गैर कैप्टिव खानों में निजी निवेश की इज़ाज़त होनी चाहिए, लेकिन साथ ही, सुरक्षा और पर्यावरण मानकों के बारे में समुचित नियमों का पालन किया जाए। कुछ मामले राजनीतिक तौर पर बहुत संवेदनशील हैं। लेकिन ध्यान में रखने की बात है कि जो कुछ प्रस्ताव किए गए हैं, उनका मतलब यह नहीं कि कोल इंडिया का निजीकरण कर दिया जाए। उनका मतलब सिर्फ़ यह है कि खनन क्षेत्र में भी निजी क्षेत्र को प्रवेश करने दिया जाए। अगर हम घरेलू उत्पादन के अनुमानों पर ध्यान दें, तो ज़ाहिर होगा कि हमें 2016-17 तक 25 करोड़ टन कोयला आयात करने की ज़रूरत होगी। अगर यह मान लें कि फिलहाल लगभग एक अरब टन कोयले का विश्व व्यापार होता है तो हमें उत्पादन में आने वाली घरेलू बाधाएं दूर करने के हर संभव उपाय करने चाहिए। पेट्रोल और प्राकृतिक गैस में निजी निवेश की इज़ाज़त न देने का कोई तुक नहीं है। लेकिन कोयले में ऐसा करना ठीक नहीं।

हमें अन्य ऊर्जा स्रोतों जैसे परमाणु, सौर और पवन ऊर्जा से भी पूरा लाभ उठाने की ज़रूरत है। फिलहाल इनका योगदान अर्थव्यवस्था में ज्यादा नहीं है और लंबी अवधि तक स्थिति ऐसी ही रहेगी। लेकिन आगे चल कर इनका योगदान बढ़ सकता है। भारत की दीर्घावधि ऊर्जा नीति में परमाणु ऊर्जा का महत्वपूर्ण स्थान है। हाल ही में परमाणु आपूर्तिकर्ता दल के साथ समझौते के चलते यह काम आसान हो गया है। भारत को विदेशों के यूरेनियम आयातकों तक पहुंच मिल गई है और अन्य देशों के साथ इस क्षेत्र में भी सहयोग करने का मार्ग प्रशस्त हो गया है। दुनियाभर में परमाणु ऊर्जा योजनाओं की फुकुशिमा में जापान के अनुभव के बाद समीक्षा की जा रही है। हमें इनसे भी सबक लेना होगा और इन अनुभवों को अपनी कार्यनीति में जगह देनी होगी। लेकिन हमें ऐसा भी कुछ नहीं करना है जिसके चलते हमारा परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम पटरी से उतर जाए। हमें इस बात पर भी ध्यान देना है कि हमारे सुरक्षा मानक ठीक-ठाक रहें और हम इस क्षेत्र में सर्वोत्तम परिपाटियों का अनुसरण करें।

भारत में भी सौर ऊर्जा से बिजली पैदा करने के प्रयास हो रहे हैं। इसके लिए सौर ऊर्जा से 20 हज़ार मेगावाट बिजली 2020 तक तैयार करने का कार्यक्रम बनाया गया है। हमें इस कार्यक्रम को सही ढंग से चलाना है और इसके समर्थन के लिए हमें सुदृढ़ घरेलू उद्योग आधार तैयार करना है। भारत में अन्य देशों को इस उद्योग में काम आने वाले उपकरण आपूर्ति करने की क्षमता है।

परमाणु और सौर ऊर्जा परंपरागत बिजली से महंगी पड़ती है। इसका मतलब यह है कि अगर हम इन ऊर्जा स्रोतों को विकसित करते हैं तो हमारी ऊर्जा सुरक्षा बढ़ेगी और जलवायु परिवर्तन से सुरक्षा के उपाय भी हो सकेंगे, भले ही ऊर्जा की लागत अधिक आए। जैसे जैसे प्रौद्योगिकी और विकसित होगी, लागत में कमी आने की उम्मीद है। लेकिन जैसेकि संकेत मिल रहे हैं, कम से कम अगले दशक के दौरान प्रतियूनिट बिजली की क़ीमत बढ़ती जाएगी।

बारहवीं योजना के दौरान ऊर्जा चुनौतियां बढ़ेंगी। ऊर्जा की अंतरराष्ट्रीय क़ीमतें भी बढ़ेंगी और वैकल्पिक ऊर्जा स्रोतों की लागत बढ़ जाएगी। ऐसे माहौल में हमारा तेज़ विकास इस बात पर निर्भर करेगा कि हम उच्च ऊर्जा मूल्यों से निपटने में अपनी अर्थव्यवस्था को सक्षम बनाए। ऊर्जा क़ीमत कृत्रिम ढंग से कम रखना इसका समाधान नहीं है। हमें ऊर्जा घनत्व घटाना है। लेकिन काम उतना आसान नहीं होगा। तर्क़ दिया जा सकता है कि बढ़ती मुद्रास्फीति के माहौल में ऊर्जा क़ीमतों में बढ़ोतरी करना ठीक नहीं होगा। लेकिन सही कारणों से बढ़ रही मुद्रास्फीति पर क़ीमतों में परिवर्तन लाकर काबू पाना है।

ऐसा करने से कुशलता बढ़ेगी। हक़ीक़त यह है कि ऊर्जा क़ीमतें बढ़ा देने से मांग का दबाव कम हो जाएगा और इसके चलते अन्य क्षेत्रों पर क़ीमतों का दबाव कम होगा। ग़रीबों को निश्चय ही बढ़ती ऊर्जा क़ीमतों से राहत दिए जाने की ज़रूरत है। लेकिन ऐसा आय अंतरण का सहारा लेकर भी किया जा सकता है। क़ीमतों को कृत्रिम तरीक़ों से कम रखना ठीक नहीं होगा।

जल संसाधनों का प्रबंधन

बारहवीं योजनावधि में जल संसाधनों का प्रबंधन एक बड़ी चुनौती होगी। भारत में लगभग उतना ही ताज़ा पानी उपलब्ध है जितना पांच हज़ार वर्ष पहले था। लेकिन तब से आबादी बढ़ गई है और सघउ में भी बढ़ोतरी हुई है। साथ ही, पानी की मांग भी लगातार बढ़ी है। हाल तक सरकारी अनुमानों के अनुसार पानी की उपलब्धता मांग से ज्यादा थी। कुछ क्षेत्रों में पानी की कमी हो सकती है। ताज़ा अध्ययनों से पता चला है कि इस समय मोटे तौर पर कुल मिलाकर पानी की आपूर्ति और उपलब्धता बराबर है। क्षेत्र विशेष में अंतर हो सकता है और कुछ क्षेत्रों में पानी की काफी कमी हो सकती है। इस बात के पहले ही संकेत मिल रहे हैं कि भूजल का ज्यादा दोहन किया जा रहा है जिससे भूजल स्तर घटता जा रहा है और मिट्टी में नमक की मात्रा बढ़ती जा रही है जिसके चलते पानी खेती और स्वास्थ्य के लिए हानिकारक बन जाता है। बारहवीं योजना के दौरान हमें इस क्षेत्र में भी नया रवैया अपनाना होगा। पानी राज्यों का विषय है इसलिए इस क्षेत्र में किए गए उपायों में सफलता महत्वपूर्ण ढंग से राज्य सरकारों पर निर्भर होगी। राज्यों को मांग और पूर्ति दोनों पक्षों पर काम करने की ज़रूरत है।

आपूर्ति-पूर्ति पक्ष

अगर पूर्तिपक्ष की ओर ध्यान दें, तो ज़ाहिर होगा कि हमें कई मोर्चों पर कार्यवाही करने की ज़रूरत है। इनमें भंडारण बांधों का निर्माण, भूजल की भरपाई के लिए उपाय करना और उद्योगों को बर्बाद हो रहे पानी को साफ़ करके फिर से इस्तेमाल लायक बनाने के लिए समझाना शामिल है। ये सभी उपाय ख़र्चीले हैं और हमें इनको प्राथमिकता देने की ज़रूरत है। परंपरागत रूप से हमारे अधिकांश संसाधन सिंचाई परियोजनाओं पर लगे हैं। यह महत्वपूर्ण है लेकिन साथ ही हमें पानी के भंडारण वाले जलाशयों पर भी ध्यान देना है।

मांगपक्ष

मांग बढ़ाने के प्रयास भी बहुत महत्वपूर्ण हैं लेकिन वे तब तक काफी नहीं होंगे जब तक उनके साथ ही हम मांग पक्ष में सुधार लाने की कोशिश न करें। भारत में उपलब्ध 80 प्रतिशत पानी खेती में इस्तेमाल किया जाता है और तकनीकी रूप से यह बात व्यावहारिक जान पड़ती है कि हम बेहतर कृषि परिपाटियों का इस्तेमाल करके सिंचाई में पानी का उपयोग कम कर सकते हैं। उदाहरण के लिए चावल की खेती में अगर सिस्टम ऑफ राइस इंटेसिफिकेशन का प्रयोग किया जाए तो पानी की बचत होगी। लेकिन जहां इस विधि से खेती में पानी की खपत कम होगी, वहीं सही समय पर सिंचाई करना और निवेश की अन्य चीज़ें भी ज़रूरी होगी। ज़रूरी होगा कि हम अतिरिक्त लागत की वसूली संभव बनाएं। आगे चल कर कृषि अनुसंधान को जल कुशलता पर ज्यादा ध्यान देना होगा और फ़सलों के ऐसे प्रकार विकसित करने होंगे जिनमें पानी की ज़रूरत कम हो। जलवायु परिवर्तन के उपायों में भी यह शामिल होगा।

जल प्रबंधन का एक और कारण है कि हमारे सामने ऊर्जा संकट पैदा हो रहा है और लोग महसूस कर रहे हैं कि उनका बिजली के लिए पैसे देना उचित है। इसी तरह से हमें पानी की क़ीमत भी समझनी होगी। अक़सर ऐसी नीतियां बनाई जाती हैं कि हमें पानी की एक-एक बूंद बचानी है। लेकिन अगर पानी की क़ीमतें कम होंगी, तो जल कुशलता प्राप्त करना बेमतलब हो जाएगा। नहर के पानी से सिंचाई की दरें इस बात पर आधारित होती हैं कि नहर के संचालन और अनुरक्षण पर कितनी लागत आती है। अधिकांश जगहों पर संचालन और अनुरक्षण लागत का सिर्फ़ 15 प्रतिशत ही वसूल हो पाता है। इससे नहरों का रखरखाव प्रभावित होता है। अगर पानी की क़ीमतें कम रखी गईं, तो किसानों को इस बात का भरोसा नहीं कि ज़रूरत के समय उन्हें पानी मिल पाएगा। इसके लिए पहला क़दम यह होगा कि एक युक्तिसंगत जल नीति बनाई जाए। इसके लिए जल संसाधनों का लेखा-जोखा तैयार करना होगा। मानचित्रण की इस प्रक्रिया को बारहवीं योजना के दौरान पूरा करना होगा, पानी की क़ीमतों को युक्तिसंगत बनाना होगा। इसके बगैर यह समस्या हल नहीं हो पाएगी। कुछ राज्यों ने इस दिशा में काम शुरू भी कर दिया है। उदाहरण के लिए महाराष्ट्र और आंध्र प्रदेश इस दिशा में भिन्न दृष्टिकोण अपना रहे हैं। लेकिन इस क्षेत्र में काफी काम बाक़ी है और बहुत कुछ किया जाना है। यह विवादास्पद मुद्दा है। देश के जल संसाधनों के युक्तिसंगत प्रबंधन के लिए हमें ऐसे कानून बनाने होंगे जो केंद्र सरकार के हाथ मज़बूत करें। संविधान में व्यवस्था है कि केंद्र सरकार पानी के युक्तिसंगत प्रयोग की व्यवस्था कर सकती है। इसके लिए संसद को कानून बनाना होगा।

भूजल का विनियमन

भूजल के विनियमन के लिए वर्तमान अनेक कानूनों पर फिर से नज़र डालने की ज़रूरत है। वर्तमान कानून ऐसे हैं जो उन क्षेत्रों में नलकूप बनाने पर रोक की सलाह देते हैं जहां भूजल स्तर काफी नीचे चला गया है। इससे उन किसानों का एकाधिकार बन जाएगा जो अभी नलकूपों के मालिक हैं। किसानों को बिजली या तो मुफ़्त दी जा रही है या बहुत रियायती दरों पर आपूर्ति हो रही है जो ठीक नहीं है। इस दिशा में राज्य सरकारें कम से कम इतना कर सकती हैं कि वे खेती के काम आने वाली बिजली पर सभी क्षेत्रों में उपकर लगाएं।

शहरों की जनसंख्या का प्रबंधन

गांवों से शहर की ओर पलायन की प्रवृत्ति हाल के वर्षों में बढ़ गई है। भारत का शहरीकरण बढ़ रहा है और इसके चलते तेज़ विकास की गति बदल रही है। अनुमान है कि फिलहाल शहरों में 30 प्रतिशत आबादी रहती है जो सन् 2030 तक बढ़कर 40 प्रतिशत हो जाएगी। इसका मतलब यह है कि आज कल जहां 35 करोड़ की आबादी बसती है वह बढ़कर 60 करोड़ हो जाएगी। इसके चलते शहर दबाव में आएंगे और उन्हें अपनी बुनियादी सुविधाओं में विस्तार करना पड़ेगा। पहले ही शहरों की बुनियादी सुविधाएं ज़रूरत से आधी है। इस विस्तार के लिए भी संसाधनों की ज़रूरत होगी जोकि स्थानीय शहर खुद नहीं जुटा पाएंगे। देश की अधिकांश आर्थिक गतिविधियां शहरों में चलाई जाती हैं। लेकिन इससे मिलने वाले राजस्व से केंद्र

और राज्य सरकारें लाभ उठाती हैं। शहरों पर पूरे अनुपात में निवेश नहीं किया जा रहा है। भारत के शहरों और स्थानीय निकायों की संसाधन जुटाने की क्षमता बहुत सीमित है। यह संभव है कि कुछ सेवाओं के लिए हम प्रभार वसूलें, इनमें पानी, जलमल निकासी और शहरी परिवहन शामिल हैं। लेकिन वर्तमान दरें काफी कम हैं। शहरों में ज़मीन की ऊंची क़ीमतों का इस्तेमाल शहरी बुनियादी सुविधाएं जुटाने में किया जा सकता है और इसके लिए निजी-सार्वजनिक साझेदारी परियोजनाएं चलाई जा सकती हैं। लेकिन इस प्रकार के अवसर से पूरा फायदा नहीं उठाया जा सका है। इस दिशा में आंध्र प्रदेश सरकार द्वारा उठाया गया क़दम एक उदाहरण बन सकता है जहां हैदराबाद में मेट्रो का निर्माण निजी-सार्वजनिक साझेदारी के जरिये किया जा रहा है।

औद्योगिक दुनिया में भी शहरों की सुविधाओं का वित्तपोषण केंद्र सरकार करती है। भारत में भी जवाहरलाल नेहरू राष्ट्रीय शहरी पुनर्निर्माण मिशन ग्यारहवीं योजना के दौरान शुरू किया गया था जिसमें केंद्र राज्यों को विशिष्ट सुधारों के लिए संसाधन उपलब्ध कराता है। अभी तक इस योजना के मिले-जुले नतीजे दिखाई दिए हैं। इसका कारण है कि नगर स्तर पर कार्यान्वयन क्षमता का पर्याप्त न होना। जवाहरलाल नेहरू शहरी पुनर्निर्माण मिशन के उपायों को बारहवीं योजना के दौरान भी और विस्तृत करना होगा। साथ ही, शहरों को और ज्यादा बोझ उठाने के लिए तैयार रहना होगा जिसके लिए वे उपभोक्ता प्रभार लगाकर संसाधन जुटा सकते हैं।

शहरी बुनियादी सुविधाओं के वित्तपोषण के लिए नगर स्तर पर सुशासन का ढांचा सुधारना पड़ेगा। वर्तमान में शहरों में प्रशासन ऐसा है जो प्रभावशाली नहीं है और जो बुनियादी सुविधाओं का विकास नहीं कर पाता। बुनियादी सुविधाओं के बारे में महानगरों में महत्वपूर्ण फ़ैसले किए जाने होते हैं। ऐसे फ़ैसले आमतौर पर राज्य सरकारें करती हैं। यह व्यवस्था बदलनी होगी।

पर्यावरण संरक्षण

बारहवीं योजना के दौरान एक मुश्किल मुद्दे पर ध्यान देना होगा। यह मुद्दा है पर्यावरण को नुक़सान पहुंचाए बिना उच्च विकासदर कैसे प्राप्त की जाए? कुछ हितधारक इस संबंध में ऐसा रवैया अपना रहे हैं कि इसके चलते कोई नुक़सान नहीं होना चाहिए। इससे अनेक गतिविधियां रुक सकती हैं। क्योंकि हर गतिविधि का पर्यावरण पर कोई न कोई असर ज़रूर पड़ता है। कुछ मामलों में इस प्रकार का दृष्टिकोण अपनाना सही भी है। उदाहरण के लिए बाघ अभयारण्य अथवा चुनिंदा जीव वनस्पति पार्कों की स्थापना। लेकिन सामान्य दृष्टिकोण ऐसा होना चाहिए जिसके जरिये विपरीत उद्देश्यों में संतुलन बनाया जा सके। अर्थात यह सुनिश्चित करने की कोशिश की जाए कि पहले तो नुक़सान कम से कम हो और सुधार के लिए ऐसे उपाय किए जाएं, जिनसे उन लोगों के हित सुरक्षित हों जो इन गतिविधियों के चलते प्रभावित हो रहे हैं।

पर्यावरण को अनेक प्रकार के स्रोतों से ख़तरा पैदा होता है। इनमें शामिल हैं विकास और ऊर्जा की ज़रूरतें पूरा करने की आवश्यकता और इसके लिए कोयले और पनबिजली का ज़रूरी होना। इन दोनों की प्राप्ति के लिए वन विभाग की इज़ाजत लेनी होती है और अगर हम दीर्घावधि के कार्बन उत्सर्जन की अनदेखी करें, तो समस्याएं पैदा होती हैं। दूसरे, औद्योगीकरण से औद्योगिक अपशिष्ट निकलते हैं जिससे पानी प्रदूषित होता है और गैसें निकलती हैं जिससे हवा में प्रदूषण फैलता है। इसके अलावा शहरीकरण के विस्तार से जल मल के परिशोधन की ज़रूरत बढ़ती है जो वर्तमान समय में 30 प्रतिशत ही संभव हो पा रहा है। नदियों और जलाशयों को बचाने के लिए यह ज़रूरी है।

ऊर्जा और जल की क़ीमतों को युक्तिसंगत बनाने के उपाय और इन क्षेत्रों में अन्य कई मूल्यों से असंबंधित उपायों का उद्देश्य ऊर्जा कुशलता और जल के प्रयोग की कुशलता में वृद्धि करना है। यह आर्थिक कुशलता के लिए भी बहुत महत्वपूर्ण है। इनके सफल होने पर पर्यावरण पर दबाव कम हो जाएगा। लेकिन इनके साथ ही पर्यावरण पर पारदर्शी और वैज्ञानिक तरीक़े से विनियमन भी होना चाहिए तथा उन्हें सख़्ती से लागू किया जाना चाहिए।

यह भी ध्यान देने की बात है कि पर्यावरण संरक्षण एक ख़र्चीला काम है। समस्या तभी पैदा होती है जब हम इस बात का ध्यान नहीं रखते कि जो भी कार्यवाही की जाती है उस पर पैसा ख़र्च होता है। इनका कुछ हिस्सा आगामी पीढ़ियों को भी चुकाना पड़ता है। ऐसी कार्यवाहियों को हतोत्साहित किया जाना चाहिए और फिर भी कोई नुक़सान होता है, तो उसकी भरपाई होनी चाहिए।

हमें इस सिद्धांत का पालन करना है कि प्रदूषणकर्ता को ख़र्च करना पड़ेगा। अकसर हम इस सिद्धांत की बात तो करते हैं, लेकिन व्यवहार में इसकी अनदेखी कर देते हैं। कर नीतियों में इस सिद्धांत का प्रभाव अकसर दिखाई नहीं देता। उदाहरण के लिए व्यापारिक वाहनों पर कर लगाया जाता है जो निजी वाहनों की अपेक्षा ज्यादा होता है। जिन राज्यों में इनके लिए विनियामक तंत्र मौजूद है, वहां भी यह तंत्र काफी कमज़ोर है। हमें अपनी कर नीतियों की व्यापक समीक्षा करने की ज़रूरत है और इसके साथ प्रदूषण नियंत्रण तंत्र की भी समीक्षा होनी चाहिए ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि पर्यावरण पर इनका अच्छा असर पड़े।

पिछले वर्ष के बजट में एक नया उपाय शुरू किया गया था। वह था घरेलू और आयातित दोनों प्रकार के कोयले पर 5 प्रतिशत का उपकर लगाना। इससे जो आमदनी होगी उसे अलग से एक कोष में डाला जाएगा जिसका इस्तेमाल स्वच्छ ऊर्जा को प्रोत्साहित करने में होगा। इस तरह के तंत्र का इस्तेमाल पर्यावरण संरक्षण पर होने वाले व्यय की भरपाई पर किया जा सकता है। अगर उस सिद्धांत की बात करें, जिसके अनुसार प्रदूषण करने वाले को पैसा देना पड़ेगा, तो यह सिद्धांत न्यायोचित भी है। पर्यावरण संरक्षण का एक और उपाय है कि खेती में इस्तेमाल होने वाली बिजली पर उपकर लगा दिया जाए, खासतौर से उन क्षेत्रों में जहां भूजल का स्तर काफी नीचे चला गया है। यह कर लगाने से जो पैसा इकठ्ठा होगा, उसे उसी क्षेत्र में भूजल की भरपाई करने के उपायों पर ख़र्च कर दिया जाए। इसके लाभ उसी क्षेत्र तक सीमित रहेंगे, इसीलिए ऐसा करने में नेताओं को भी किसी तरह की समस्या नहीं होनी चाहिए।

बाज़ार की कार्यविधियां, पूंजीवाद और भ्रष्टाचार

आर्थिक सुधारों का एक प्रमुख तत्व है बाज़ार की ताक़तों पर अधिक निर्भरता। इसके स्पष्ट लाभ भी मिले हैं। विकास गति तेज़ हुई है और कुशलता बढ़ी है। लेकिन यह भी देखा जाता

है कि इसके चलते पूंजीवाद की बुराई सामने आई है और उसके कारण भ्रष्टाचार पैदा हुआ है। कॉरपोरेट क्षेत्र में भ्रष्टाचार है। इसके कारण भारत में अनेक प्रकार की समस्याएं पैदा हुई हैं। हाल के वर्षों में अंतरराष्ट्रीय जगत में कॉरपोरेट स्तर के भ्रष्टाचार और गैरकानूनी कार्यों की चर्चा हुई है। एनरॉन, वर्ल्डकॉम, परमालात और बर्नी मैडहाफ जैसी अनेक अंतरराष्ट्रीय कंपनियों के नाम गैरकानूनी हरक़तों के साथ जुड़ें हैं। वित्तीय संकट के चलते भी परस्पर विरोधी हितों की तरफ लोगों का ध्यान गया है।

राजन (2010) ने भारत में दो क्षेत्रों की तरफ ध्यान आकर्षित किया है जो पूंजीवाद की बुराइयों और भ्रष्टाचार के नजदीक है। ये हैं भूमि से संबंधित विकास गतिविधियां और वे क्षेत्र जहां संसाधनों की कमी है। जैसे खनिज या स्पेक्ट्रम जिन्हें सरकार लाइसेंस देकर आवंटित करती है। भूमि से जुड़े मुद्दों में पारदर्शिता की कमी है और ये बड़ी समस्या बन गईं हैं जिन पर तुरंत ध्यान देना ज़रूरी है।

इस समय यह समस्या दो प्रकार की स्थितियों में दिखाई दे रही है। पहला यह कि बड़े शहरों में ज़मीन की क़ीमतें आसमान छू रही हैं जिसका प्रमुख कारण यह है कि भूमि पर नियंत्रण अपारदर्शी है और जो लोग ज़मीन विकसित करने की अनुमति प्राप्त कर लेते हैं, वे काफी मुनाफ़ा कमा रहे हैं। इस तरह की अनुमति देने के लिए अगर तंत्र अपारदर्शी होता है तो निश्चय ही भ्रष्टाचार और हेराफेरी का शक पैदा होता है। नीति के ये विवेकाधिकार वाले पहलू हैं और इनकी व्यापक समीक्षा किए जाने तथा इनके लिए अधिक पारदर्शी तंत्र बनाने की ज़रूरत है। दूसरे, औद्योगिक विकास के लिए कृषि भूमि के अधिग्रहण से भी तरह-तरह की समस्याएं पैदा होती हैं। दुर्लभ संसाधनों के आवंटन तरीक़ों में गैरपारदर्शिता से भी अनेक लोगों को आलोचना करने का मौका मिल गया है। इन दोनों क्षेत्रों में भ्रष्टचार और हेराफेरी के आरोप लग रहे हैं और इन्हें देखते हुए वर्तमान क्रियाविधियों की गहराई से समीक्षा किए जाने की ज़रूरत है। एक सामान्य नियम यह है कि अगर प्रतिस्पर्धात्मक बोलियों के जरिये योग्यता प्राप्त बोलीदाताओं से प्रस्ताव प्राप्त किए जाएं, तो यह दुर्लभ संसाधनों के आवंटन का सबसे अधिक पारदर्शी तरीक़ा होगा। 2जी लाइसेंसों के आवंटन के लिए प्रतिस्पर्धी बोलियां आमंत्रित नहीं की गईं जिसकी ज़ोरदार आलोचना की गई। इसके विपरीत 2010 में 3जी की नीलामी की गई तो उसकी कोई आलोचना नहीं हुई। अगर देखा जाए, तो यह एक मॉडल है जिसका सावधानी से अध्ययन किया जाना चाहिए। ऐसी भी परिस्थितियां पैदा होती हैं, जब बोलियां आमंत्रित करना सर्वश्रेष्ठ तरीक़ा न हो। लेकिन इसके विकल्प ढूंढना बहुत जटिल काम होगा और उनके मूल्यांकन में पसंद-नापसंद की भूमिका होगी जिससे विवेकाधिकार इस्तेमाल करने का मौका मिलेगा और इस तरह से निर्णय करना विवादास्पद हो जाएगा। इसी तरह की समस्याएं खनन अधिकार आवंटित करने में भी आती हैं। खान और खनिज विकास विधेयक इस समय सरकार के विचाराधीन है जिस पर सभी को संतोषजनक ढंग से ध्यान देना होगा।

सरकारी खरीद की कार्यविधि पर भी आधुनिक तरीक़े से और पारदर्शी ढंग से नज़र डालने की ज़रूरत है ताकि इसे भ्रष्टाचार मुक्त बनाया जा सके। ओईसीडी की रिपोर्टों से मालूम पड़ता है कि अगर इस तरह के परिवर्तन लाए जाएं तो इनके कारण औद्योगिक देशों में लागत में 25 प्रतिशत तक की कटौती हो सकती है। अनेक देशों ने सार्वजनिक खरीद कानून बना दिए हैं जबकि भारत में सरकारी ख़रीद कुछ नियमों के आधार पर की जाती है। सरकार ने इस क्षेत्र में सिफ़ारिशें करने के लिए एक समिति गठित की है। सरकारी खरीद को आधुनिक बनाने के लिए जितनी जल्दी कार्यवाही की जाएगी और प्रक्रियाओं को जितना अधिक पारदर्शी बना दिया जाएगा, उतना ही यह एक अग्रगामी क़दम समझा जाएगा। यह ध्यान में रखने की बात है कि सूचना-अधिकार के तहत इन सभी की जानकारी बाद में आम जनता को देना ज़रूरी है। अतः इस बात का कोई कारण नहीं होना चाहिए कि इन क्षेत्रों में पारदर्शिता क्यों न शुरू की जाए?

सरकारी कार्यक्रमों का कार्यान्वयन

विकास की गति और तरीके को प्रभावित करने के अलावा सर्वसमावेशी विकास कार्यनीति उन कार्यक्रमों पर भी निर्भर करती है जो सर्वकल्याण को आगे बढ़ाने के लिए बनाए जाते हैं। इस संदर्भ में शिक्षा और स्वास्थ्य के कार्यक्रम बहुत महत्वपूर्ण हैं। इनके बारे में पहले भी चर्चा की गई है। अनेक ऐसे कार्यक्रम हैं जो ग़रीबों को सामाजिक सुरक्षा और प्रत्यक्ष लाभ पहुंचाने के लिए बनाए गए हैं।

अन्य जो बहुत महत्वपूर्ण कार्यक्रम हैं, उनमें (1) सब्सिडी वाले अनाजों की सार्वजनिक वितरण व्यवस्था के जरिये आपूर्ति, (2) स्कूली बच्चों के लिए मध्याह्न भोजन परियोजना, (3) समन्वित बाल विकास सेवाएं जिनके जरिये बच्चों को पोषक आधार दिया जाता है, (4) राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम जिसके अंतर्गत वृद्धावस्था पेंशन और विधवाओं और विकलांगों को पेंशन देने की योजना है, (5) महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गांरटी योजना जिसके अंतर्गत अधिसूचित न्यूनतम मज़दूरी पर साल में 100 दिनों के लिए सभी को रोज़गार पाने की गारंटी है, (6) राष्ट्रीय ग्रामीण पेयजल कार्यक्रम जिसके अंतर्गत वे गांव आते हैं, जहां पेयजल की सुविधा नहीं है, (7) राजीव गांधी ग्रामीण विद्युतीकरण योजना जिसके अंतर्गत सभी गांवों को बिजली पहुंचाने और गरीबी रेखा से नीचे वाले आवासों में बिजली की निःशुल्क लाइन दिए जाते हैं, और (8) इंदिरा आवास योजना जिसके अंतर्गत ग्रामीण ग़रीबों को पक्का घर बनाने के लिए सहायता दी जाती है। इन कार्यक्रमों के लिए 2010-11 में ₹ 1,55,000 करोड़ की राशि रखी गई थी जो सघउ के 1.9 प्रतिशत के बराबर है।

इस बात पर मोटे तौर पर सहमति है कि इन कार्यक्रमों के जरिये वांछित उद्देश्य प्राप्त किए जा सकते हैं। लेकिन इस बात को लेकर काफी संदेह भी है कि क्या इन कार्यक्रमों को ठीक उसी प्रकार से लागू किया जा रहा है जिससे वे वांछित उद्देश्य पूरे कर पाएं? अकुशलता, पैसे की हेराफेरी और भ्रष्टाचार की शिकायतें आमतौर पर मिलती रहती हैं, और कभी-कभी तो ये ऐसे लोगों द्वारा की जाती हैं जो कार्यक्रमों के कल्याणकारी उद्देश्यों के प्रति सहानुभूति नहीं रखते। लेकिन, इस बात में भी कोई संदेह नहीं कि इन्हें लागू करने में सचमुच समस्याएं आ रही हैं।

ध्यान देने की बात यह है कि केंद्र सरकार इन कार्यक्रमों का सिर्फ़ वित्तपोषण करती है। इनका वास्तविक कार्यान्वयन राज्य सरकार की एजेंसियों द्वारा किया जाता है। इनके लागू करने की प्रभावशीलता हर राज्य में अलग-अलग है। अच्छे कार्यान्वयन के भी बहुत से उदाहरण हैं

लेकिन ऐसे भी उदाहरण मिल जाएंगे जहां ये कार्यक्रम बिल्कुल विफल हो गए हैं। विफलता के कारण तीन समस्याएं मानी जा सकती हैं। ये हैं ख़राब डिजाइन, कम पैसा भेजा जाना और कार्यान्वयन में खामियां। व्यवहार रूप में ये तीनों कमियां लगभग हर जगह मौजूद हैं, कहीं पर कम और कहीं पर ज्यादा।

कार्यक्रम की ख़राब डिज़ाइन और अपर्याप्त वित्तपोषण का कारण केंद्र सरकार को बताया जाता है। केंद्र सरकार ने जो दिशानिर्देश बनाए हैं वे अकसर कठोर और ज़रूरत के मुताबिक नहीं होते। इसके अलावा अनेक स्थानों पर सरकार के विभिन्न विभागों में सहयोग की ज़रूरत पड़ती है। अनेक कार्यक्रम कृषि, सिंचाई, ग्रामीण विकास या स्वास्थ्य, शिक्षा और महिला तथा बाल विभाग के सहयोग से पूरे किए जाते हैं। दुर्भाग्य की बात है कि सरकारी विभाग शिथिलता से काम करते हैं जिससे परस्पर सहयोग मुश्किल हो जाता है। जहां तक वित्तपोषण की पर्याप्तता का सवाल है, संसाधनों की दुर्लभता सचमुच ही एक समस्या है और इसका समाधान प्राथमिकता निर्धारित करके किया जाना चाहिए। बेहतर होगा कि उन योजनाओं के लिए पूरा पैसा दिया जाए जिनमें अच्छा काम हो रहा है। लेकिन ऐसा कहना आसान है और करना मुश्किल। प्राथमिकता का परिपालन करना बारहवीं योजना में एक बड़ी चुनौती हो सकती है। हक़ीकत में किसी कार्यक्रम को लागू करना बारहवीं योजना का एक बड़ा उद्देश्य होगा। इस बात पर अलग-अलग राय हो सकती हैं कि यह कैसे किया जाए? अगर हमारा राजनीतिक नेतृत्व राज्य स्तर पर वचनबद्ध हो और प्रशासन प्रभावी तरीक़े से काम करे तो स्थिति में बहुत अंतर आ सकता है। निर्णय करने और पंचायतीराज निकायों द्वारा जवाबदेही तय करना भी उत्तरदायित्व में सुधार लाने का एक संभावित तरीक़ा हो सकता है। ऐसा करना चौहत्तरवें संविधान संशोधन के अनुरूप होगा जिसमें अधिकारों के विकेंद्रीकरण और वित्तीय अधिकारियों को अधिकार देने की बात कही गई है। इस क्षेत्र में कुछ प्रगति हो चुकी है लेकिन अधिकांश राज्य सरकारें कोष और काम करने वाले अधिकारियों के अधिकारों के विकेंद्रीकरण करने में ज्यादा कुछ नहीं कर पाएंगी। इस क्षेत्र में शायद केंद्र सरकार कुछ सहायता कर सकती है। वह अपनी स्कीमों के ढांचे को ऐसा बना सकती है कि उसमें पंचायती राज निकायों की भूमिका ज्यादा रहे। इसके लिए उनके क्षमता निर्माण हेतु भी कुछ पैसा दिया जा सकता है।

सिविल सोसाइटी के संगठनों को ज्यादा शामिल करके समुदाय की हिस्सेदारी बढ़ाई जा सकती है जो इस काम में सहायक हो सकती है। इस दिशा में सूचना अधिकार अधिनियम बहुत महत्वपूर्ण है जो सिविल सोसाइटी और व्यक्तिगत हितधारकों को सभी स्तरों पर जिम्मेदार ठहराने का अधिकार देता है।

उपसंहार

जैसाकि शुरू में ही कहा गया है, इस लेख का उद्देश्य कुछ निश्चित निष्कर्ष प्रस्तुत करना नहीं, बल्कि ऐसे मुद्दों की तरफ ध्यान आकर्षित करना था जिन पर बारहवीं योजना के दौरान ध्यान देने की ज़रूरत होगी। इस व्यापक विचार-विमर्श के जरिये कुछ निष्कर्ष भी निकल सकते हैं।

बारहवीं योजना अवधि में अर्थव्यवस्था ऐसे माहौल में पहुंच जाएगी जहां ज्यादा उम्मीदें होंगी लेकिन बड़ी चुनौतियां भी होंगी।

हमने विकास के मोर्चे पर अच्छी प्रगति की है लेकिन सर्वसमावेशी विकास के अर्थों में हमारा निष्पादन उतना बढ़िया नहीं रहा। जब पूरी अवधि के लिए आंकड़े मिल जाएंगे तब निष्कर्ष निकालना संभव हो पाएगा लेकिन हम अभी स्थिति का अंदाजा ही लगा सकते हैं।

सघउ विकास की गति तेज़ करने के लिए और इसकी रफ़्तार 9 प्रतिशत तक लाने के लिए निजी क्षेत्र को काम करना पड़ेगा लेकिन केंद्र और राज्य सरकारों की भी नीतिगत परिस्थितियां बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका होगी। नीतिगत परिस्थितियां निवेशक हितैषी और सर्वसमावेशी विकास को बढ़ावा देना होनी चाहिए। समयबद्ध तरीक़े से राजकोषीय घाटे को नियंत्रण में लाना जरूरी है और इसे उच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए। इसके साथ ही, सुधारों के मोर्चे पर भी निरंतर प्रगति होती रहनी चाहिए। खासतौर से उन सुधारों के मामले में जो निवेशकों को जल्दी आकर्षित करने में सफल हों। अगर किसी क्षेत्र में संसाधन जुटाने और उन्हें सही जगह लगाने की कुशलता है तो यह महत्वपूर्ण है और ऐसा केंद्र सरकार के कार्यक्षेत्र में होना चाहिए।

सरकार के अपने संसाधन लगाने के लिए स्पष्ट प्राथमिकताएं होनी चाहिए। इस संदर्भ में स्वास्थ्य और शिक्षा बुनियादी सुविधा विकास के लिए महत्वपूर्ण हैं। इसी तरह से जल प्रबंधन और ग्रामीण बुनियादी सुविधाओं तथा पिछड़े क्षेत्रों में बुनियादी सेवाओं का विकास भी प्राथमिकता के साथ करना होगा। अन्य मूल सुविधा क्षेत्रों के लिए सार्वजनिक-निजी साझेदारी के जरिये काम होना चाहिए और इसे केंद्र और राज्य दोनों सरकारों को करना होगा। बड़ी परियोजनाओं को लागू करने में जो भी बाधाएं आती हैं उन्हें दूर करना होगा।

बारहवीं योजना में अर्थव्यवस्था के सामने चार महत्वपूर्ण चुनौतियां आ सकती हैं, जिनका हमें अधिक गंभीरता के साथ मुक़ाबला करना है। ये हैं: (क) ऊर्जा स्थिति का प्रबंधन, (ख) जल अर्थव्यवस्था का प्रबंधन, (ग) शहरीकरण के चलते सामने आने वाली समस्यायों पर ध्यान देना, और (घ) पर्यावरण का संरक्षण इस तरह से करना कि तेज़ विकास संभव हो सके। हर क्षेत्र में कठोर फ़ैसले करने होंगे और इसके लिए केंद्र और राज्य - दोनों प्रशासनों को महत्वपूर्ण भूमिका निभानी होगी। अगर हम सफल होते हैं तो इसका पुरस्कार यह मिलेगा कि हम भारत को उन गिने-चुने देशों की कतार में शामिल करा सकेंगे जो सफलतापूर्वक तेज़ विकास और ग़रीबी मिटाने का लक्ष्य प्राप्त कर चुके हैं।

अंत में यह कहना समीचीन होगा कि परियोजनाओं को जमीनी स्तर पर लागू करने में कुशलता में सुधार लाना बहुत ज़रूरी है। जो कुछ करना है, उसका अधिकांश राज्य सरकारों को करना है। लेकिन साथ ही, केंद्र सरकार को भी ऐसे तौर-तरीक़े निकालने हैं जो परियोजनाओं के डिज़ाइन करने और वित्तपोषण के लिए संसाधनों की प्राथमिकता निर्धारण तथा निचले स्तरों पर अधिकारों का विकेंद्रीकरण करके क्षमता निर्माण में सहायक हों।

हमें इन क्षेत्रों में क्षमताओं को सुदृढ़ बनाना होगा और प्रस्तावित स्वतंत्र मूल्यांकन कार्यालय इस दिशा में एक महत्वपूर्ण क़दम होगा। इसकी स्थापना 2011-12 में किए जाने की संभावना है। ❑

(लेखक योजना आयोग के उपाध्यक्ष हैं।
प्रस्तुत आलेख *इकोनोमिक एंड पोलिटिकल वीकली* **के मई 2011 अंक में प्रकाशित निबंध का संक्षिप्त रूप है)**

DO NOT OPEN THIS TEST BOOKLET UNTIL YOU ARE ASKED TO DO SO

UPSC Mock-Test

UPSC(PT)-2012

BSC is launching a **Pathbreaking Test Series**
(Hindi & English Medium) From Jan, 2012 to Apr, 2012
for

CSAT Paper I and Paper II

Join the knowledge race!!!

Features

- A series of at least 16 tests with most relevant and up-to-date content.
- All the test series designed by the most acclaimed academicians of India.
- Thorough discussion of each question with multi-dimensional approach as required to familiarise students with the possible nature of the civil services questions.
- Extensive coverage of all the segments of Paper I & II.

Judge your preparation and make it 100% perfect through

A New Learning Experience at BSC!!!

Get FREE Sample Mock-Test paper from BSC counters for evaluating the standard of our prospective tests after 15 December.

Contact

BSC Academy Pvt. Ltd.

Delhi: 09312368452, 09717540852, 011-42133195; Lucknow: 07376170187, 0522-4044042; Ranchi: 09430700734, 09304020205; Patna: 0612-3210588, 09334832722; Bhubneswar: 0674-6511520, 09658079645; Kolkata: 08013705090; Bhopal: 07489731897; Chandigarh: 09216545844, 0172-3046001/2/3

Visit our website: **www.bscacademy.com**

Note: Also available through Correspondence (with detail solution) and Online Test.

BANKING SERVICES CHRONICLE

ध्यान दें : अनुदेशों का हिंदी रूपांतर इस पुस्तिका के पिछले पृष्ठ पर छपा है।

YH-241/2011

12वीं पंचवर्षीय योजना की दृष्टि

कृषि का सतत विकास

● एम.एस. स्वामीनाथन

महात्मा गांधी अक्सर कहा करते थे कि पूर्ण स्वराज का रास्ता ग्राम स्वराज होकर जाता है। उन्होंने ग्रामीण भारत की सेवा करने के लिए उत्सुक कुछ छात्रों को संबोधित करते हुए 80 वर्ष पहले कहा था, ''हक़ीक़त यह है कि ग्रामवासियों को कोई उम्मीद ही नहीं है। वे हर अजनबी पर संदेह करते हैं कि उसका हाथ उनके गले तक पहुंचेगा और जो कोई भी आता है, वह उनका शोषण करने ही आता है। बुद्धिवादियों और श्रमिकों के बीच अलगाव हो गया है जिससे खेती लुंजपुंज हो चुकी है। किसी कार्यकर्ता को गांवों में प्यार और उम्मीद के साथ जाना चाहिए, यह सोचकर कि वहां खेतिहर मज़दूर स्त्री-पुरुष पूरे साल रोज़गार में नहीं रहते। वहां पूरे साल काम करने और श्रमशक्ति तथा बुद्धि को इकट्ठा करके काम करने से ही उनका विश्वास जीता जा सकता है।''

गांधीजी ने बुद्धि और श्रम को इकट्ठा करने पर ज़ोर दिया था ताकि गांवों का फिर से विकास किया जा सके। उदाहरण के लिए हम महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी अधिनियम (एमजीएनआरजीए) को निम्नलिखित के अनुसार फिर से संयोजित करके इससे अधिकतम लाभ पा सकते हैं और इसे दुनिया का सबसे बड़ा सामाजिक सहायता कार्यक्रम बना सकते हैं:

- हर जिले में एक तक़नीकी सहायता संघ की स्थापना की जाए ताकि बुद्धि और श्रम को इकट्ठा लाया जा सके।
- श्रम की अवधारणा का विस्तार किया जाए, ताकि उसमें महिलाओं के संदर्भ में कृषि, बालवाड़ी और स्कूलों में मध्याह्न भोजन का संचालन शामिल किया जा सके।
- मज़दूरों से संबंधित विभिन्न कार्यक्रमों को मिलाकर संचालित किया जाए।
- 100 दिनों से ज्यादा वाला एक कार्यक्रम शुरू किया जाए, जिसके अंतर्गत जल संभरणों को जैव औद्योगिक संभरणों में बदल दिया जाए ताकि सूक्ष्म उद्यमों को चलाने के अवसर मिलें और छोटे ऋण देकर उनकी मदद की जाए। इस तरह से कृषि और गैर-कृषि श्रम अवसरों का समन्वय किया जाए। इससे दक्ष और अकुशल श्रमिकों को सहायता मिल पाएगी।
- श्रम को सम्मान दिया जाए और श्रमिकों की सहायता की जाए, ताकि पर्यावरण मित्र जैसे पुरस्कारों को प्राप्त करने में लोग गर्व महसूस करें साथ ही महात्मा गांधी नरेगा टीमों के बढ़िया कामों को मान्यता दी जाए और इनके जरिये जल संभरण विकास, वर्षा जल संचयन, मिट्टी संरक्षण और पादप उर्वरकों के जरिये मृदा-कॉर्बन बैंकों का निर्माण किया जा सके।

अगर उक्त पांच-सूत्री कार्यक्रम शुरू कर

दिया जाए तो महात्मा गांधी नरेगा कार्यक्रम सचमुच ही मेहनत और बुद्धि को इकट्ठा लाने का एक शक्तिशाली साधन बन सकता है।

2011 की जनगणना में अनुमान लगाया गया है कि इस समय ग्रामीण भारत में 83.3 करोड़ लोग रह रहे हैं। अपनी जीविका के लिए वे ज्यादातर फ़सलों और पशुपालन, मछलीपालन, वानिकी और कृषि प्रसंस्करण उद्योगों पर निर्भर करते हैं। क्षेत्र में चल रहे अनेक प्रकार के सरकारी कार्यक्रमों के बावजूद हम देखेंगे कि कुल मिलाकर भारतीय लोगों पर पिछले 25 वर्षों के दौरान कुछ ख़ास असर नहीं पड़ा है। 21.5 प्रतिशत बच्चे कम वज़न के पैदा होते हैं, जो कुपोषण के कारण होता है (भारतीय-मानव विकास रिपोर्ट-2011)। इस रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि कई क्षेत्रों में सफलता सुनिश्चित करने के लिए हमें ग्रामीण जीवन के अनेक क्षेत्रों में तालमेल लाने की ज़रूरत पड़ेगी। ये क्षेत्र हैं, सुरक्षित पेयजल, साफ़-सफ़ाई, सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाएं और संतुलित पोषाहार। अभी तक ये सबको उपलब्ध नहीं हैं। यह सुशासन का एक विषय है, छानबीन का मुद्दा नहीं।

वर्तमान में भारत सरकार एक राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा विधेयक संसद में पेश करने वाली है, जिसका उद्देश्य है भोजन को सबके लिए कानूनी अधिकार बनाना। पिछले पांच वर्षों के दौरान महत्वपूर्ण मानवीय आवश्यकताओं के मामले में ठीक रवैया अपनाया जाता रहा है। उदाहरण के लिए इस समय शिक्षा, रोज़गार, सूचना और भूमि के (अनुसूचित जनजातियों और अन्य पारंपरिक वनवासियों के लिए) अधिकार प्राप्त हैं। जब कानूनी पात्रता हो जाएगी, तब भोजन का अधिकार भारतीय लोकतंत्र में सबसे महत्वपूर्ण कानून बन जाएगा। जब इसे लागू कर दिया जाएगा तो निम्नलिखित तीन क्षेत्रों में समवर्ती कार्रवाई की ज़रूरत पड़ेगी:

- **भोजन की उपलब्धता**- यह उत्पादन का काम है या फिर जब ज़रूरत हो, तो आयात का (जैसे दालों के मामले में किया गया)।
- **भोजन तक पहुंच**- यह क्रय शक्ति का मामला है (यह वही क्षेत्र है जिस पर राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा विधेयक, 2011 के जरिये ध्यान दिया जा रहा है)।
- **भोजन हज़म करना**- यह शरीर का काम है और इसके लिए ज़रूरी है पेयजल, साफ़-सफ़ाई, बुनियादी स्वास्थ्यचर्या और पोषक तत्वों के बारे में ज्ञान।

महत्वपूर्ण बात यह है कि 12वीं पंचवर्षीय योजनावधि में मानव जीवन की पेयजल, साफ़-सफ़ाई, स्वास्थ्यचर्या और पर्यावरण की स्वच्छता जैसी अनेक ज़रूरतों के संबंध में हमें यह सीखना है कि ये सेवाएं किस तरह उपलब्ध कराई जाएं। अगर हमने यह नहीं सीखा तो हमारे देश की वर्तमान बदनामी ज्यों-की-त्यों बनी रहेगी। इसीलिए सुशासन और पात्रता दोनों मुद्दों पर साथ-साथ काम करना होगा।

जलवायु ख़तरों का प्रबंधन

ग्रामीण अर्थव्यवस्था का एक और विचलित करने वाला पक्ष है किसान परिवारों पर बढ़ता कर्ज़ राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन (एनएसएसओ) के आंकड़ों के अनुसार मई 2005 में देश के 48.6 प्रतिशत किसान परिवारों पर कर्ज़ था और उनमें से अधिकांशत: साहूकारों के चंगुल में थे। कर्ज़दार परिवारों का अधिकांश भाग (82 प्रतिशत) आंध्र प्रदेश में रहता है। इस लिहाज़ से दूसरा नंबर तमिलनाडु का है, जहां 74.5 प्रतिशत किसान परिवार कर्ज़दार बताए गए हैं। ज्यादातर सिंचित भूमि वाले प्रदेश पंजाब में भी कर्ज़दार किसानों का प्रतिशत 65.4 है। महाराष्ट्र में, जहां से अक्सर कर्ज़ के चलते किसानों द्वारा आत्महत्या की ख़बरें आती हैं, 54.8 प्रतिशत किसान कर्ज़ में डूबे हुए हैं और विदर्भ क्षेत्र में इनकी संख्या सबसे ज्यादा है। किसानों की कामयाबी अधिकांशत: मानसून और बाज़ार पर निर्भर करती है। जलवायु परिवर्तन का नतीजा धरती गर्म होने के रूप में सामने आ रहा है। ऐसी हालत में ज़रूरी है कि हम जलवायु के प्रति लचीली कृषि व्यवस्था का जल्दी से जल्दी प्रचार करें। इस काम में पंचायती राज संस्थानों की मदद ली जा सकती है। इसके लिए समुदाय प्रबंधकों को जलवायु ख़तरे के बारे में प्रशिक्षित किया जा सकता है, जो ज़रूरत पड़ने पर स्थानीय समाज की मदद कर सकें। इसके ख़तरे तापमान अथवा समुद्र जल स्तर में बढ़ोतरी के रूप में प्रकट हो सकते हैं। केरल के समुद्री तट के अलावा अन्य स्थानों पर भी बड़ी संख्या में समुद्र के किनारे लोग रहते हैं। ज़रूरत पड़ने पर हमें उनके पुनर्वास के लिए तैयार रहना चाहिए। इन्हें जलवायु शरणार्थी कहा जाएगा, क्योंकि ये वे लोग हैं जिन्हें अपना घर छोड़ने के बाद मुख्य भूमि पर ही बसाना होगा।

मूल्यों की अस्थिरता

घरेलू खाद्य असुरक्षा बढ़ाने में क़ीमतों की अस्थिरता की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यह दुर्भाग्य की बात है कि काफी लंबे अरसे से खाद्य मुद्रास्फीति की दर ऊंची बनी हुई है। इसलिए हमें 12वीं योजनावधि में खाद्य

मुद्रास्फीति नियंत्रण का राष्ट्रीय मिशन बनाना होगा। ऐसे मिशन के लिए निम्नलिखित घटक हो सकते हैं:

- **खाद्य मुद्रास्फीति के चालकों की पहचान**- उदाहरण के लिए सब्ज़ियों, दालों, दूध, अंडे, मांस आदि पर होने वाला ख़र्च। इस मामले में सामान्य रवैया मददगार नहीं होगा। इसीलिए हमें मूल्य वृद्धि के घटकों को अलग-अलग करके देखने की ज़रूरत पड़ेगी। साथ ही, यह भी ज़रूरी है कि हम उन जिन्सों की पहचान करें, जिनकी पूर्ति और मांग में असंतुलन बना हुआ है, जिसके चलते किसी खास मौसम में मूल्यों में बढ़ोतरी हो जाती है। इस प्रकार की रूपरेखा बना लेने से मुद्रास्फीति की प्रवृत्तियों की पहचान और उन पर नियंत्रण आसान हो जाएगा। बढ़ती क़ीमतों पर नियंत्रण पाना राष्ट्रीय बागवानी मिशन, राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन, राष्ट्रीय कृषि विकास योजना और 60 हज़ार पल्सेज विलेजेज प्रोग्राम के खास घटक हैं।
- सार्वजनिक नीतियों और मूल्यवृद्धि के बीच संबंध को समझा पाना भी बहुत महत्वपूर्ण है। उदाहरण के लिए एक लीटर दूध की जो लागत आती है, उसका 80 प्रतिशत भाग पशु आहार और चारे के रूप में होता है। दुर्भाग्य की बात है कि चरागाह के लिए छोड़ी जाने वाली ज़मीन घटती जा रही है और किसान चारा उत्पादन पर काफी ध्यान नहीं दे पाते। इसके अलावा सोयाबीन जैसे पोषकतत्वों का निर्यात किया जा रहा है। उधर क़रीब 10 लाख मवेशियों को पर्याप्त पोषक आहार देना मुश्किल हो गया है। पशुआहार और खासतौर से पोषकतत्वों के निर्यात की समीक्षा करने की ज़रूरत है।
- भंडारण सुविधाओं का एक राष्ट्रीय ग्रिड स्थापित किए जाने की ज़रूरत है जिसमें अनाज और जल्दी ख़राब होने वाली जिन्सों की व्यवस्था हो। 1979 में मैंने ग्रामीण क्षेत्रों मे गोदाम बनाने का एक कार्यक्रम शुरू किया था। ये गोदाम ऐसे डिज़ाइन किए गए थे, ताकि हड़बड़ी में किसानों को अपनी उपज न बेचना पड़े। दुर्भाग्य की बात है कि फ़सल कटाई के बाद की प्रौद्योगिकी पर भारत में पूरा ध्यान नहीं दिया जा रहा है। इसी का नतीज़ा है कि पैदावार और फ़सल कट जाने के बाद काम आने वाली बुनियादी सुविधाओं का विकास नहीं हो पा रहा है, जिसके चलते अनाजों, फलों और सब्ज़ियों की मात्रा और गुणवत्ता, दोनों को नुक़सान हो रहा है। खाद्य सुरक्षा के लिए मानकों पर कोई ध्यान नहीं दिया जा रहा है।
- वर्तमान कृषि विज्ञान केंद्रों की संख्या बढ़ाई जानी चाहिए ताकि किसानों को खाद्य प्रसंस्करण, मूल्यवर्धन और कृषि व्यापार के विभिन्न क्षेत्रों में प्रशिक्षित किया जा सके। ऐसा करने पर ही कृषि विज्ञान केंद्र, कृषि उद्योग विज्ञान केंद्रों में परिवर्तित किए जा सकेंगे।

कृषि में प्रगति

प्रौद्योगिकी परिवर्तन का प्रमुख चालक है। इस पर हम गेहूं और चावल के जीन छोटे करने के संदर्भ में ध्यान दे चुके हैं। छोटे पैमाने पर खेती करने और मछलीपालन के संदर्भ में भी हम मोबाइल टेलीफोनी के लाभ देख चुके हैं। हम ऐसे युग में प्रवेश कर रहे हैं, जहां अनिश्चितता और मौसम की अति का सामना करना पड़ता है। वैज्ञानिक जानकारी और किसानों के काम आने वाली जानकारी में अंतर हमें पाटना है। अभी तक किसान अनेक प्रकार की चुनौतियों का सामना करते रहे है और उन्हें जो जानकारी मिल पाती है, वह काफी नहीं है। अब ग्रामीण प्रौद्योगिकी का माहौल बदल चुका है और इस क्षेत्र में अनेक निजी व्यापारी भी आ गए हैं। बीज, कीटनाशक और उर्वरक कंपनियां भी किसानों को सलाह और सूचना देती हैं। कई बार तो साहूकार भी जो उन्हें अन्य ज़रूरी चीज़ों की आपूर्ति करता है, वह प्रसार विशेषज्ञ के रूप में काम करने लगता है। इसीलिए आजकल रसायनों का अवैज्ञानिक और अत्यधिक प्रयोग हो रहा है, जिससे लागत भी बढ़ती है और पर्यावरण को नुक़सान भी पहुंचता है। बिजली की निःशुल्क आपूर्ति जैसी सरकारी नीतियों के चलते भूजल का अत्यधिक दोहन हो रहा है जिसके चलते पंजाब और अन्य क्षेत्रों में भूजल स्तर नीचे जा रहा है। इसी की बदौलत 60 के दशक में मुख्य हरित क्रांति सफल हो पाई थी।

इसी खास ग्रामीण परिवेश की ज़रूरतें पूरी करने के लिए प्रौद्योगिकी का विकास किया जाना अभी बाक़ी है। फिलहाल वैज्ञानिक किसी खास क्षेत्र के लिए विनिर्दिष्ट प्रौद्योगिकी विकसित करने में लगे हुए हैं। सतत और स्थान विनिर्दिष्ट प्रौद्योगिकी विकसित करने के लिए अनुसंधान के काम में किसानों को भी शामिल करना होगा। अभी ऐसा नहीं हो रहा है। एम.एस. स्वामीनाथन अनुसंधान प्रतिष्ठान के वैज्ञानिक ओडिशा के कोरापुट क्षेत्र में आदिवासियों के साथ मिलकर काम कर रहे हैं। केरल में केलपेटा में भी वे आदिवासी महिलाओं और पुरुषों के साथ मिलकर ऐसे धान की उन्नत किस्मों के विकास में लगे हुए हैं जो बदलती जलवायु के हिसाब से अपने को ढाल सकें और स्थानीय रूप से इस्तेमाल की जा सकें। इस तरह से मिलजुलकर अनुसंधान करने से कलिंग कालाजीरा जैसी धान की उत्तम किस्में तैयार की जा सकी हैं। कृषि उद्योगों के लिए प्रौद्योगिकी विकास के असली फायदे अभी आने हैं। 1992 में मैंने लघु किसान कृषि व्यापार संघ बनाने का प्रस्ताव किया था। इसके जरिये छोटे पैमाने पर उत्पादकों की शक्ति को अर्थव्यवस्था में लगाना था। तब के प्रधानमंत्री स्व. नरसिंहराव और डॉ. मनमोहन सिंह (तब वित्तमंत्री) ने इसकी सराहना की थी। असलियत यह है कि 1992 में डॉ. मनमोहन सिंह ने ऐसे संघ के गठन का एलान भी किया था ताकि कृषि उद्योगों के लाभ छोटे किसानों तक पहुंच सकें। ऐसे संघ मौजूद तो अब भी हैं, लेकिन इनके जरिये ग़रीब किसानों तक कोई संसाधन नहीं पहुंच रहे हैं। जहां कहीं बड़े पैमाने पर सरकार द्वारा सब्सिडी दी जाती है वहीं कंपनियां अपने उत्पाद बेच पाती हैं। इस संदर्भ में ड्रिप सिंचाई का उदाहरण दिया जा सकता है। कृषि में प्रसार सेवाओं के लाभ इस रूप में सामने आने चाहिए कि लोग देखकर वैसा ही आचरण करें और इस तरह से नयी प्रौद्योगिकी का प्रसार हो सके। किसान से किसान सीखें, इस बात के संगठित प्रयास होने चाहिए। यह काम कृषि विद्यालयों की स्थापना द्वारा किया जा सकता है।

मौसम और विपणन के क्षेत्र में मोबाइल फोन के लाभ दिखाई देने लगे हैं। इनके चलते छोटे किसान भी ज़रूरी सूचनाएं पा जाते हैं। इसी तरह से तमिलनाडु में समुद्र में जाने वाले

मछुआरों को भी समुद्र में ही रहते हुए सूचना मिल जाती है। ऐसी प्रौद्योगिकी का प्रचार आंध्र प्रदेश, ओडिशा और पश्चिम बंगाल में भी किया जा रहा है।

पिछले साढ़े तीन दशकों के दौरान दुग्ध उत्पादन क्षेत्र में विशेष सफलता मिली है, जिसके चलते हम दुनिया में सबसे बड़े दुग्ध उत्पादक देश बन गए हैं। साथ ही, गेहूं और चावल पैदा करने, कपास में जीएम प्रौद्योगिकी की शुरुआत करने के हमारे प्रयास भी जारी हैं। लेकिन, सार्वजनिक नीति और कटाई के बाद की प्रौद्योगिकी में निवेश करने में हम सफल नहीं हो पाए हैं और खासतौर से अनाज भंडारण और जल्दी ख़राब हो जाने वाली जिन्सों को संभाल पाने के लिए आधारभूत सुविधाएं जुटाने के क्षेत्र में हम विफल रहे हैं। इसके अलावा, ग्रामीण क्षेत्रों में ऋण और विशेष सुविधाओं की उपलब्धता भी घटी है, जिसे अब सुधारा जा रहा है।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की मानव संसाधन विकास क्षेत्र में एक बात की तुरंत ज़रूरत है। वह है, वहां चल रही बड़ी संख्या में वैज्ञानिकों की रिक्तियों को भरना। कृषि अनुसंधान विकास में एक विशेष पूर्वोत्तर संवर्ग बनाए जाने की ज़रूरत है। हैदराबाद की राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान अकादमी को सर्वोच्च प्रशिक्षण संस्थान की तर्ज़ पर विकसित किया जाना चाहिए, जैसे राष्ट्रीय रक्षा अकादमी नयी दिल्ली के बारे में किया गया है। इससे कृषि विश्वविद्यालयों और कृषि अनुसंधान संस्थानों के प्रबंधन में सुधार आएगा। हैदराबाद की कृषि अनुसंधान अकादमी को मात्र डिग्रियां बांटने वाले विश्वविद्यालय के रूप में नहीं छोड़ देना चाहिए।

अगले पांच वर्षों में अधिकांशत: पर्यावरण विज्ञान, अर्थशास्त्र और प्रौद्योगिकी क्षेत्रों में चुनौतियों का सामना करना होगा। पर्यावरण की दृष्टि से हमें बुरे परिवर्तनों से निपटने की तैयारी करनी है। अर्थशास्त्र में हमें कृषि के लागत-जोखिम-प्रतिफल ढांचे में ख़राबी का सामना करने के लिए तैयार रहना चाहिए क्योंकि गांवों की युवा पीढ़ी वहां रहने और खेती व्यवसाय में शामिल होने की इच्छुक नहीं है। हमारी जनसंख्या के 50 प्रतिशत से ज्यादा लोग 35 वर्ष से कम आयु के हैं। अत: युवकों को खेती में लगाए रखना सबसे बड़ी चुनौती हो सकती है। हम इस समस्या को तभी सुलझा सकते हैं जब खेती को बुद्धिवादी, प्रेरक और आर्थिक रूप से लाभप्रद व्यवसाय बना सकें। इसके लिए हमें पैदावार और फ़सल कटाई के बाद के कामों को तकनीकी रूप से उच्चीकृत करना होगा।

जलवायु परिवर्तन के कारण अंतरराष्ट्रीय अनाज बाज़ार में अनिश्चितता शुरू हो गई है। यही कारण है कि अगर अनाज आयात करना पड़ता है, तो हम अनाजों तक सबकी पहुंच को कानूनी अधिकार नहीं बना पाएंगे। हमारी खाद्य सुरक्षा का आधार स्वदेशी अन्न उत्पादन होना चाहिए। यह इसलिए ज़रूरी है कि खेती को अनाज उत्पादन करने वाली मशीन नहीं समझा जा सकता । यह तो देश की 60 प्रतिशत से ज्यादा लोगों की जीविका की सुरक्षा व्यवस्था है। यही कारण है कि अगर खेती गड़बड़ा जाती है तो अर्थव्यवस्था में कुछ भी ठीक रहने के आसार नहीं बचते। छोटे किसानों की आमदनी के अनेक स्रोत उपलब्ध रहें, इसके लिए ज़रूरी है कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था में अनुसंधान कार्यक्रम चलाए जाए, जिसमें खेती और गैर-खेती के कामों में उसी समय मिलने वाले रोज़गार को शामिल किया जाना चाहिए। हमारे किसानों की जोतें छोटी हैं अत: उनका आमदनी के एक ही स्रोत पर निर्भर रहना काफी नहीं होगा। ऐसा इसलिए भी, क्योंकि हमारी क़रीब 60 प्रतिशत कृषि भूमि की वर्षा से सिंचाई की जाती है। इसी तरह से तटीय क्षेत्रों में हमें एक तटीय व्यवस्था अनुसंधान कार्यक्रम चलाने की ज़रूरत है जिसके अंतर्गत हमें तटीय इलाक़ों की ज़मीन और समुद्र दोनों ओर ध्यान देने की ज़रूरत पड़ेगी। हमें तटीय क्षेत्रों में समुद्री पानी से सिंचाई करके खेती का आंदोलन शुरू करना होगा और ऐसी किस्में विकसित करनी होंगी जो नमकीन पानी को बर्दाश्त कर सकें। तटीय इलाक़ों में इस तरह के फार्म पर्यावरण और आर्थिक आधार पर विकसित किए जा सकते हैं जिससे स्थानीय निवासियों की जीविका की सुरक्षा हो सकेगी और साथ ही, तटीय इलाक़ों के पर्यावरण में भी सुधार होगा।

महिला किसानों का सशक्तीकरण

भारतीय किसानों की 50 प्रतिशत आबादी महिलाओं की है और खेती में काम करने वाले श्रमिकों में 60 प्रतिशत महिलाएं हैं। खेती में महिलाओं का योगदान बढ़ रहा है जिसके चलते पुरुष आबादी का शहरों की तरफ पलायन कम हो रहा है और महिला किसानों की ज़रूरतों पर ध्यान दिया जा रहा है। भविष्य मे उनके स्वास्थ्य और विकास को ध्यान में रखते हुए ऐसे इलाक़ों में उनकी खाद्य सुरक्षा पर ध्यान देना ज़रूरी है जहां जलवायु परिवर्तन हो रहा है। 2010-11 के दौरान महिला किसान सशक्तीकरण योजना शुरू की गई है जिसका विस्तार होना चाहिए ताकि महिला किसानों की ज़रूरतों पर ध्यान दिया जा सके और उनकी ज़मीन, पानी, प्रौद्योगिकी, ऋण सुविधाएं, बीमा तथा विपणन की ज़रूरतें पूरी की जा सकें। 12वीं योजना में उपयोगी होगा कि महिला किसानों के लिए एक केंद्रीय कृषि कोष की स्थापना की जाए जो महिला किसानों के उपयुक्त प्रौद्योगिकी प्रशिक्षण, क्षमता निर्माण और विपणन सुविधाएं जुटाने तथा वृद्धावस्था पेंशन आदि पर ध्यान दे।

छठी पंचवर्षीय योजना (1980-85) के दौरान हमनें महिलाओं के विकास का पहला अध्याय शुरू किया था। अब समय आ गया है जब हमें महिला किसानों की ज़रूरतों पर ध्यान देना है क्योंकि खेती वह सबसे बड़ा व्यवसाय है जिसमें हमारे देश की महिलाएं लगी हुई हैं।

हमारे सामने बहुत से अवसर मौजूद हैं जिनके जरिये हम खेती को समुचित तकनीकों, सेवाओं और सार्वजनिक नीतियों के मार्फ़त आर्थिक विकास का एक प्रमुख साधन बना सकते हैं। '60 के दशक में हरित क्रांति सफल हुई थी और उसमें कई तरह की वैज्ञानिक दक्षता, राजनीतिक इच्छाशक्ति और किसानों के उत्साह का मिला-जुला योगदान था। दुर्भाग्य की बात है कि आज अधिकांश किसान अपना व्यवसाय छोड़ने को तैयार बैठे हैं बशर्ते उन्हें कोई वैकल्पिक जीविका मिल जाए। इसी तरह से किसानों के बच्चे खेती में काम करने की इच्छा नहीं रखते। अब समय आ गया है जब हम गांधीजी की प्रौद्योगिकी और श्रमशक्ति को ग्रामीण क्षेत्रों में इकट्ठा करने की सलाह अपनाकर खेती को अधिक सार्थक बना सकते हैं। ❑

(लेखक राज्यसभा सदस्य और चेन्नई स्थित एम.एस. स्वामीनाथन अनुसंधान प्रतिष्ठान के अध्यक्ष हैं। ई-मेल: swami.ms@sansad.nic.in, chairman@mssrf.res.in)

दृष्टिपत्र में कृषि : कुछ और विचार

● योगिन्दर के अलघ

इससे पूर्व भी मैं *योजना* के एक विशेषांक के लिए भारतीय कृषि के भविष्य के बारे में लिख चुका हूं। कृषि के बारे में मेरा लिखा एक विस्तृत तक़नीकी आलेख *इंडियन सोसायटी ऑफ एग्रीकल्चरल इकनामिक्स* पत्रिका के अप्रैल-जून 2011 अंक में प्रकाशित हो चुका है। इन आलेखों में उभरती समस्याओं और बढ़ते अवसरों के बारे में चर्चा की गई थी। इनमें से कुछ विचारों को दृष्टिपत्र में शामिल किया गया है जबकि कुछ को नहीं। दृष्टिपत्र के आलोक में मैंने उन अनुमानों और नीतियों पर पुनर्विचार करने के बार में सोचा है ताकि नीति-निर्धारकों के काम को कुछ सरल बनाया जा सके। विकास को लेकर ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच जो अभिन्न संबंध है, उसको देखते हुए कृषि का महत्व और अधिक बढ़ गया है।

दृष्टिपत्र कृषि के बारे में अच्छा कहा जा सकता है। इसमें नये विचार तो अधिक नहीं दिए गए हैं, परंतु यह व्यावहारिक है। इसमें दसवीं और ग्यारहवीं योजनाओं की मध्यावधि समीक्षा सरीखी प्रखरता तो नहीं है परंतु कृषि से संबंधित अधिकांश मुद्दों पर विवेकपूर्वक ढंग से चर्चा की गई है। दृष्टिपत्र में जो मुद्दे उठाए गए हैं, उन पर आगे चर्चा की जा रही है।

जल

यह एक ऐसा विषय है जो कृषि से परे रखा गया है, परंतु इसके लिए निर्णायक तत्व है। दरअसल, अनेक विषय ऐसे हैं, जो हैं तो कृषि क्षेत्र से परे, परंतु अर्थव्यवस्था के विकास की नयी किरण के लिए अति महत्वपूर्ण हैं। दृष्टिपत्र कहता है :

''हमें जलीय संभावना वाले क्षेत्रों का खाका तैयार करने की कवायद के आधार पर प्रत्येक जलीय क्षेत्र के लिए धारणीय भूजल प्रबंधन योजना तैयार करने की आवश्यकता है। इसके लिए हमें ज़मीनी स्तर पर ग्रामीण हितग्राहियों के साथ भू-ग्रामीय जल वैज्ञानिकों और सामाजिक प्रेरकों के बीच भागीदारियां तैयार करनी होंगी। इस कार्य में सामाजिक प्रेरकों की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण होगी क्योंकि वे ही विभिन्न प्रकार के जलीय क्षेत्रों की भंडारण और संचारण विशेषताओं का भलीभांति अध्ययन कर भूजल के साझा और क्रमिक उपयोग के बारे में स्थानीय लोगों का मार्गदर्शन करेंगे। आंध्र प्रदेश में इस दिशा में अच्छी प्रगति हुई है। आंध्र प्रदेश कृषक प्रबंधित भूजल प्रणालियां (एपीएफएएमजीएस) परियोजना खाद्य एवं कृषि संगठन (एफएओ) के सहयोग से प्रदेश के सात सूखा संभावित ज़िलों में स्वैच्छिक संगठनों द्वारा चलाई जा रही हैं। इस परियोजना में भूगर्भीय जल की निगरानी सहभागिता के आधार पर की जाती है। किसान ही स्थानीय जलीय क्षेत्र के भूजल की स्थिति के आधार पर अपनी आवश्यकता का निर्धारण करते हैं। वे ही सही-सही ज़रूरी आंकड़े एकत्रित कर उनका विश्लेषण करते हैं, जिसके आधार पर फ़सलों के लिए पानी का बजट तैयार किया जाता है। जलीय क्षेत्र में उपलब्ध पानी की क्षमता के आधार पर ही फ़सलों के लिए आवश्यक पानी की मात्रा का निर्धारण और उपयोग किया जाता है ताकि भूजल का उपयोग लंबे समय तक कृषि हेतु किया जा सके। भूजल की उपलब्धता के अनुसार यह तय होता है कि कौन-सी फ़सल ली जानी चाहिए। अनुमान है कि इस कार्यक्रम का लाभ 10 लाख किसानों को मिल रहा है। बारहवीं योजना में अन्य स्थानों में भी इसी तरह के प्रयासों की आवश्यकता है।

खाद्य मांग और खाद्य सुरक्षा

दृष्टिपत्र कहता है कि मांग पक्ष में अर्थव्यवस्था में कुल मिलाकर व प्रतिशत की वृद्धि से, कृषि में 4 प्रतिशत की वृद्धि की मांग पैदा होने की आशा है, जिसमें खाद्यान्न की मांग में प्रतिवर्ष दो प्रतिशत की वृद्धि होगी और गैर-खाद्यान्न (मुख्यत: उद्यानिकी, पशुधन, दुग्धोत्पादन, कुक्कुटपालन एवं मत्स्यपालन) में 5 से 6 प्रतिशत की वृद्धि होगी। दृष्टिपत्र के अनुसार हमारे सामने चुनौती यह है कि बढ़ती आय के साथ बढ़ रही भारत की जनसंख्या का पेट कैसे भरा जाए, जबकि भूमि और जल संसाधन सीमित हैं। बारहवीं योजना में अर्थव्यवस्था में अच्छी बढ़त होने की संभावना है और भोजन की मांग में भी पर्याप्त वृद्धि होगी। परंतु उपभोग में काफी विविधता रहने की संभावना है, क्योंकि वर्तमान में खाद्य पदार्थों के उपभोग पर जो राशि व्यय की जाती है, उसका केवल 15 प्रतिशत ही खाद्यान्नों पर ख़र्च होता है।

खाद्य पदार्थों के उपभोग की सामग्रियों में लगातार विविधता आ रही है। यद्यपि अभी भी खाद्यान्नों की प्रधानता बनी हुई है। परंतु अब

इसमें कुछ अन्य भोज्य पदार्थों ने सेंध लगानी शुरू कर दी है। फलों, सब्जियों, दूध, मांस और मछलियों पर कुल मिलाकर होने वाले व्यय में पर्याप्त वृद्धि हुई है। इसे प्राय: उच्च मूल्य वाले खाद्य पदार्थ कहकर पुकारा जाता है। भारतीय खाद्य उपभोग में आया यह परिवर्तन आशा के अनुरूप ही है। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन (एनएसएसओ) के आंकड़े भी बताते हैं कि 1993-94 और 2004-05 के बीच प्रतिव्यक्ति अनाज की खपत 5 प्रतिशत अति निर्धनों में बढ़ गई है, जबकि शेष 95 प्रतिशत में कम हो गई है। यह गिरावट शहरी क्षेत्रों की अपेक्षा ग्रामीण क्षेत्रों में पाई गई है। परंतु पशु आहार के रूप में अनाज की मांग बढ़ रही है।

मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि योजनाओं ने सही रास्ता पकड़ लिया है। मेरा हमेशा से ही यही कहना है ग्रामीण और शहरी संबंधों की निरंतरता के संदर्भ में भी यह बात लागू होती है। संयुक्त राष्ट्र के लिए मेरे पूर्वानुमानों में भी यह विविधता दर्शाई गई है। उसमें भी अनाज का उपभोग गैर-खाद्यान्न पदार्थों की तुलना में कम ही दर्शाया गया है।

पहले यह बताया जा चुका है कि नब्बे के दशक में निर्धनों के लिए अनाज पर व्यय की क्षमता कम थी। निर्धनों के लिए सत्तर के दशक में भी व्यय की क्षमता कम थी और नब्बे के दशक में 0.5 प्रतिशत की और कमी आई। दुग्ध और दुग्ध उत्पादों, अंडों, मांस, खाद्य तेल और शक्कर जैसी जिन्सों के मामले में व्यय की क्षमता का अनुमान निर्धन परिवारों में भी ऊंचा ही लगाया गया था। कुछ मामलों में तो यह दो प्रतिशत से भी अधिक थी, जबकि गैर-निर्धनों के लिए एक प्रतिशत से भी कम। भारत में निर्धन परिवारों में अनाज के उपभोग में आ रही कमी और निर्धनता के अनुमानों पर उसके प्रभाव के बारे में बहुत कुछ लिखा जा चुका है। यह कहना कि निर्धनों को लक्षित करने से विविधीकरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा, गलत है। हमने सदा ही यह कहा है कि वास्तविक निर्धनों को लक्ष्य करके ही योजना तैयार की जानी चाहिए। इनमें महिला मुखिया वाले परिवार, दरिद्र, निराश्रित, बालिकाएं और इसी प्रकार के अन्य वंचित वर्ग हो सकते हैं। यहां पर यह ध्यान देने की बात है कि राष्ट्रीय सलाहकार परिषद (एनएसी) ने अधिकार प्राप्त मंत्री-समूह (ईजीओएम) की उस सलाह का विरोध किया था जिसमें लाभार्थियों के इस वर्ग को राज्यों पर छोड़ने की बात कही गई थी। वास्तव में मैं भारत में भूख का भूगोल कहे जाने वाले क्षेत्रों की कुपोषित बालिकाओं को लेकर चिंतित हूं। तत्कालीन प्रधानमंत्री स्व. राजीव गांधी मुझे प्राय: उन क्षेत्रों में भेजा करते थे। आज भी स्थिति में कोई खास बदलाव नहीं आया है। आज हमारे पास संसाधन हैं, राष्ट्रीय सलाहकार परिषद और संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन की अध्यक्ष श्रीमती सोनिया गांधी की इच्छा भी यही है। अब समय इस पर काम करने का है।

स्वाभाविक है कि हमसे कुछ गलतियां होंगी। शुरुआत के तौर पर देखा जाए तो इस तरह के सभी आकलन और अनुमानों की प्रकृति संभावित आंकड़ों की होती है और केवल कुछ नीम-हकीम और नेता लोग ही इसके बारे में आश्वस्त हो सकते हैं। परंतु बाज़ार के संकेतों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि भारत का जीवंत लोकतंत्र हमें बताएगा कि हम कहां गलत हैं।

सभी लोग मुफ़्त भोजन चाहते हैं। कौन नहीं चाहता? परंतु एक बार यदि पता भी चल जाए तो भी यह नहीं कहा जा सकता कि हमारे देश के लोग इतने समझदार हैं कि वे इस बात को स्वीकार कर सकें कि सब्सिडी आवश्यकता के अनुसार ही दी जानी चाहिए, जैसाकि योजना आयोग कहता रहा है। गंभीर कुपोषण वाले क्षेत्रों और जनसंख्या पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। जो वास्तव में ज़रूरतमंद हैं, उन्हें निश्चित ही मुफ़्त भोजन मिलना चाहिए। योजना आयोग यहां कुछ बाज़ार तत्वों के बारे में सुझाव देता हुआ प्रतीत होता है, जिस पर गंभीरतापूर्वक पुनर्विचार करने की आवश्यकता है। इससे वास्तविक ज़रूरतमंद डर कर दूर चले जाएंगे और बाज़ार का तर्क़ कुछ ज्यादा ही खिंच सकता है। आयोग आवश्यकता की बात करता है। उसे इसे अमल में लाना चाहिए। उससे आगे वे सही हैं। दरअसल, यह विचार कि ग़रीबीरेखा से ऊपर की जनसंख्या को न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) से कुछ अधिक मूल्य पर सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पीडीएस) से खाद्यान्न ख़रीदने का अधिकार है, काफी भ्रामक है। खाते-पीते परिवार की औसत गृहिणी इतनी चतुर होती है कि वह न्यूनतम समर्थन मूल्य से अधिक की दर पर राशन लेने सरकारी राशन की दुकान पर नहीं जाएगी।

प्रमुख नीतियों पर कार्रवाई

कृषि में व्यापक वृद्धि ही इसका उचित उत्तर होगा। केवल बाज़ार की बात करना ही पर्याप्त नहीं है, उन पर कुछ काम भी करना होगा। वे पहले से ही कमज़ोर बताए जा रहे हैं। पानी, तकनीक और आर्थिक समर्थन पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है।

दृष्टिपत्र में कहा गया है कि कृषि के लिए जल-प्रबंधन की भूमिका निर्णायक होती है। पानी पंचायत और इसी प्रकार की पंचायती राज संस्थाओं पर आधारित अन्य संस्थाओं, जैसे– जल उपयोगकर्ता संघों के माध्यम से जल प्रबंधन में सुधार लाया जा सकता है। कमान क्षेत्र विकास और मौजूदा बड़ी सिंचाई प्रणालियों के पुनर्गठन और भौतिक आधुनिकीकरण पर ध्यान दिया जाना चाहिए। वर्षा जल संचय की योजनाओं को व्यापक स्वरूप प्रदान किया जाना चाहिए। जलग्राही क्षेत्रों का व्यापक मानचित्रीकरण और भूजल को बड़े पैमाने पर रिचार्ज किया जाना चाहिए। स्प्रिंकलर (फव्वारा) और टपक सिंचाई प्रणालियों को अधिक से अधिक अपनाया जाना चाहिए। खेतों में पानी भरकर सिंचाई का तरीक़ा पुराना पड़ चुका है, उससे बचना चाहिए। वर्तमान में सिंचित भूमि का रक़बा 42 प्रतिशत है, उससे बड़े क्षेत्र में भरोसेमंद सिंचाई की व्यवस्था की जानी चाहिए। पेयजल संसाधनों को सुदृढ़ बनाना होगा। इन सभी गतिविधियों का मौजूदा सतही जलाशय-आधारित नहर सिंचाई प्रणाली से एकीकरण करना होगा।

हालांकि इस बारे में बहुत अधिक अनुसंधान हो चुका है और वह उपलब्ध भी है, परंतु वास्तविक मुद्दे हैं मौजूदा ज्ञान और सफलता की कथाओं को त्वरित रूप से दोहराया जाना। इस प्रक्रिया में सामुदायिक संस्थाओं की भूमिका मुख्य होगी। जिन सफल परियोजनाओं का अध्ययन किया गया है उनमें पर्याप्त विविधता है। वाटर शेड (जल संभरण क्षेत्र) विकास, वैकल्पिक वृक्ष पायी फ़सलें, लवणयुक्त भूमि का सुधार, कृषक संचालित निम्नस्तरीय सिंचाई प्रणालियां, तटीय जलग्राही क्षेत्रों जैसी कठिन

परिस्थितियों में जलग्राही क्षेत्र का प्रबंधन, जनजातीय सिंचाई सहकारिताएं और तालाब सिंचाई, इन सबको सफल कथाएं कहा जाता रहा है और इनका अध्ययन किया जा चुका है। प्रश्न है कि इनको बड़े पैमाने पर कैसे दोहराया जाए। हमने कुछ नीतिगत नियम बनाने की बात कही है जिनपर यदि अमल किया जाए तो बात बन सकती है। योजना आयोग ने हाल ही में इनकी प्रगति की समीक्षा की है।

ग्रामीण-शहरी शृंखला का अनुमान है कि सफल सिंचाई परियोजनाओं के फलस्वरूप फ़सलोत्पादन में जो वृद्धि हुई है, उसको यदि अन्यत्र अपनाया जा सके तो कृषि मज़दूरी में 7 प्रतिशत की वास्तविक वृद्धि संभव हो सकती है। यह काफी बड़ी वृद्धि है और हमें इसे लक्षित कर हासिल करने का प्रयास करना चाहिए।

दृष्टिपत्र का कहना है कि ऐसे स्थानों में जहां प्राकृतिक संसाधन सीमित हैं, कृषि की उत्पादकता में तकनीक की भूमिका अहम होती है। अध्ययनों से पता चला है कि उत्पादकता में भावी वृद्धि का कम से कम एक तिहाई फ़सल तकनीक में नये-नये शोध और नवाचार से आना चाहिए।

सार्वजनिक क्षेत्र में विकसित होने वाली प्रौद्योगिकी में प्राय: किसानों की वास्तविक आवश्यकताओं को ध्यान में नहीं रखा जाता। अलग-अलग क्षेत्रों में एक ही फ़सल की मांग अलग-अलग होती है। अत: सार्वजनिक क्षेत्र की संस्थाओं द्वारा जारी बीजों की प्रजातियों और किसानों द्वारा वास्तविक रूप से इस्तेमाल की जाने वाली बीजों में काफी अंतर होता है। निजी क्षेत्र का अनुसंधान और बीज उद्योग केवल उन्हीं फ़सलों और प्रजातियों पर ध्यान देता है जिनकी बाज़ार में मांग और संभावनाएं होती हैं। फलस्वरूप, कुछ फ़सलों पर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता और उन पर अनुसंधान भी कम ही होता है। दालों और तिलहन जैसी वर्षासिंचित फ़सलों में यह बात बहुधा देखने में आती है।

प्रौद्योगिकी की यह मान्यता एक उत्साहवर्धक लक्षण है। मेरा यह दृढ़ विचार है कि ग्रामीण-शहरी शृंखला की सुदृढ़ता में एक तिहाई योगदान प्रौद्योगिकी का ही रहेगा।

प्रौद्योगिकी ही समस्या के समाधान में केंद्रीय भूमिका निभाएगी। हम पहले देख चुके हैं कि भारत में कृषि के सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में 21 प्रतिशत की उच्चदर से पूंजी के निवेश के बावजूद उसी अनुपात में कृषि में वृद्धि नहीं हो रही है। चूंकि कृषि योग्य भूमि घटती जा रही है अत: उत्पादकता वृद्धि पर ज़ोर देना ज़रूरी होगा। भारतीय सांख्यिकी संस्थान ने एक अध्ययन में बताया है कि 1981-90 के दशक में कृषि की उत्पादकता में 1.62 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि हो रही थी, जबकि 1991-2000 के दशक में यह वृद्धि केवल 1.55 प्रतिशत ही रही। यदि 2001-20 की अवधि में कृषि का विकास प्रतिवर्ष 3.5 से 4 प्रतिशत की दर से होता है तो कृषि उत्पादकता में 1.72 से 2.08 प्रतिशत की वृद्धि करनी होगी और यदि कृषि उत्पादन में 3.8 से 4.8 प्रतिशत की वृद्धि होती है तो उत्पादकता में 1.9 से 2.5 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि होनी चाहिए। इस प्रकार कृषि में उच्च विकासदर प्राप्त करने के लिए उत्पादकता में कम से कम एक तिहाई की बढ़ोतरी ज़रूरी है जोकि कृषि में थोड़ा मुश्किल है।

दृष्टिपत्र में सार्वजनिक क्षेत्र के अनुसंधान की जो कड़ी आलोचना की गई है, तथ्यों के अनुसार सही होने के बावजूद उसकी सावधानीपूर्वक समीक्षा की आवश्यकता है। यह विश्वास कि अकेला निजी क्षेत्र ही शुष्क क्षेत्रों और कृषि में तेज़ी से आ रही विविधता के लिए आवश्यक अनुसंधान की मांग पूरा कर सकेगा, अनुभव के आधार पर मिथ्या साबित हो सकता है। ग्रामीण-शहरी शृंखला का एक और नज़रिया है। इसको पीपीपी (सार्वजनिक और निजी क्षेत्र की भागीदारी) की आवश्यकता है। यहां पर संकर धान के उस विफल अनुभव का स्मरण होना स्वाभाविक है जो हुई तो थी सार्वजनिक और निजी क्षेत्र की भागीदारी में परंतु उसका नेतृत्व आईसीएआर (भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद) ने किया था। इस विफलता का परिणाम यह हुआ कि परिषद को अब नेतृत्व की महत्वपूर्ण भूमिका नहीं सौंपी जाती। मुझे यह जानकर बहुत दुख हुआ कि हमारे पास औसतन 20 क्विंटल प्रति हेक्टेयर दालों की उपज लेने वाले कनाडा और ऑस्ट्रेलिया के उत्पादन स्तर तक पहुंचने का कोई मार्गचित्र (योजना) नहीं है। मोटा-मोटा अनुमान यह है कि आईसीएआर जब कभी यह मार्गचित्र तैयार करेगा, उसे पांच वर्षों की अवधि में लागू करने के लिए 3,000 करोड़ रुपये की आवश्यकता होगी जिसके लिए पीपीपी की ज़रूरत पड़ेगी। परंतु यह उस तरह से नहीं होगा जैसा दृष्टिपत्र चाहता है। यदि इसे केवल निजी क्षेत्र पर छोड़ दिया जाएगा तो वह यह नहीं करेगा।

परंतु सुखद समाचार यह है कि योजना आयोग ने घोषित किया है कि यह आवश्यक है कि जैव प्रौद्योगिकी में हो रही अधुनातन प्रगति से हमें अवगत रहना होगा। मुझे आशा है कि बैगन (बीटी) विवाद को दोबारा नहीं उठाया जाएगा। अब उससे आगे जाने की आवश्यकता है, जो नहीं रहा है। समस्या की दीर्घकालिक प्रकृति और इस तथ्य को देखते हुए कि नये अणुओं के विकास के लिए भारी निवेश की आवश्यकता है, कुछ नियमन की आवश्यकता होगी। निवेशकों को जब यह भरोसा होगा कि उन्हें समुचित लाभ होगा, तभी वे अपना पैसा लगाएंगे, वर्ना नहीं। और इस प्रकार, धन के अतिरिक्त अनुभवी प्रबंधकीय और तकनीकी संसाधन भी नहीं उपलब्ध हो सकेंगे। उदाहरण के लिए दालों की अनुसंधान परियोजना के लिए करोड़ों रुपये की आवश्यकता होगी। संकर धान के अनुभव को देखते हुए तो ऐसा ही लगता है। इस प्रकार की पीपीपी परियोजनाओं की संभावनाओं की खाई को पाटने के लिए सार्वजनिक संसाधनों की प्रतिबद्धता आवश्यक है। परियोजना की धारणीयता और पर्यावरणीय सुरक्षा के नज़रिये से सरकारी और निजी क्षेत्रों की भागीदारी अनिवार्य है। उदाहरणार्थ नाममात्र की लागत पर लंबे समय तक काम करने वाले केंद्रीय संगठन, जैसा विद्युत परियोजनाओं के लिए प्रस्तावित है, उचित मूल्य के समाधान निकाल सकते हैं। औसत लागत के अनुमानों से जो बेहतर कार्य करेगा और उचित लाभ देगा, वही मुनाफ़ा कमाएगा। यह बात बार-बार साबित की जा चुकी है कि इस प्रकार की रणनीतियों से राष्ट्र को लाभ ही होता है। उदाहरण के लिए वे मूल्य निर्धारण रणनीतियां जो समूह दक्षता की लागत के सिद्धांतों पर निर्भर होती हैं, नाइट्रोजन उर्वरक उद्योग में ऊर्जा की बचत के मामले में अच्छा लाभ दे रही हैं। यह जानकारी

मिली है कि योजना आयोग के अधीन एक समिति ने आठ वर्षों के विचार-विमर्श के बाद इसी नज़रिये को अपनाने की सलाह दी है। कई वर्षों पूर्व मेरी अध्यक्षता वाली समिति ने भी ऐसा ही सुझाव दिया था।

योजनाकारों का कहना है कि अच्छी पैदावार के वर्षों में भी किसानों को नुक़सान होता है, क्योंकि उन्हें अपनी उपज का उचित क़ीमत नहीं मिल पाती। इन किसानों की समस्या का एक मात्र समाधान यह है कि उन्हें अपनी उपज इकट्ठा करके बड़े बाज़ारों में जाना चाहिए। इसके विकल्प के रूप में उत्पादक कंपनियों और सामग्री हित समूहों के विचार पर आधारित नये प्रादर्शों की शुरुआत हाल के दिनों में हुई है। परंतु इसकी कोई सर्वव्यापी रणनीति नहीं है।

उभरते हुए बाज़ारों में आधारभूत संरचना के अभाव को दृष्टिगत रखते हुए दृष्टिपत्र में इसपर और ज़ोर दिए जाने की आवश्यकता है। सड़क संपर्क, उद्यानिकी विकास, दुग्धोत्पादन, पशुपालन और नकदी फ़सलों का विस्तार, कृषि क्षेत्र को बाज़ारोमुखी बनाने के लिए आवश्यक साधन प्रदान करते हैं। उच्च मूल्य वाले कृषि क्षेत्र के लिए तो यह और भी महत्वपूर्ण हो जाता है। आने वाले समय में इसकी मांग बढ़ेगी और बर्बादी रोकने तथा बीच वाले तमाम ख़र्चों की बचत के लिए कुशल मूल्य शृंखलाओं की आवश्यकता होगी। निश्चित रूप से यह निजी क्षेत्र का कार्य क्षेत्र है।

ग्रामीण-शहरी शृंखला में लुप्त कड़ी

दृष्टिपत्र में ग्रामीण रूपांतरण के अध्याय के प्रारंभ में कहा गया है कि जनगणना 2011 के अनुमानों के अनुसार 83 करोड़ 30 लाख ग्रामीण भारत में निवास करते रहेंगे। परंतु योजना आयोग हाल तक यह अनुमान लगा रहा था कि 2011 में भारत के ग्रामीण क्षेत्रों की जनसंख्या 87 करोड़ रहेगी। योजना आयोग इस बात का ठीक से अनुमान नहीं लगा सका कि ग्रामीण क्षेत्रों के क़रीब 3 करोड़ 70 लाख लोग गांवों से निकलकर छोटे-छोटे शहरों की ओर जा चुके होंगे। यह काफी बड़ी संख्या है और समावेशी विकास जैसे दृष्टिकोण के लिहाज़ से इतने लोगों का गायब होना एक समस्या है। इसके अतिरिक्त योजना आयोग ने भविष्य के पूर्वानुमानों में कोई बदलाव नहीं किया है और इसके कारण बारहवीं योजना तैयार करते समय कई समस्याएं खड़ी हो सकती हैं। इन अनुमानों के अनुसार 2030 में ग्रामीण जनसंख्या कुल जनसंख्या का 60 प्रतिशत रह जाएगी।

हमारा कहना है कि ग्रामीण-शहरी शृंखला के तारतम्य में ग्रामीण जनसंख्या 2020 में कुल आबादी का 58 प्रतिशत रह जाएगी और 2025 में 53 प्रतिशत सरकारी अनुमानों के अनुसार ग्रामीणों का प्रतिशत 2020 में 68 और 2025 में 64 रहेगा। राष्ट्रीय ग्रामीण विकास संस्थान में 2006 के एस.के. डे स्मारक व्याख्यान में मैंने कहा था कि गुजरात में शहरीकरण का जो अनुमान लगाया गया है उसे कम करके आंका गया है और वास्तविक शहरीकरण लगभग 5 प्रतिशत था न कि उसका आधा। हमने अपने तर्क के समर्थन में संयुक्त राष्ट्र के आंकड़े पेश किए हैं। नीतियों में इस प्रकार की गंभीर त्रुटियां महत्वपूर्ण सामाजिक प्रवृत्तियों को भली भांति न समझ पाने के कारण होती हैं। कृषि क्षेत्र में आ रही विविधता के कारण छोटे शहरों और बाज़ारों ने जो संभावनाएं पैदा की हैं, उसको ठीक से न समझ पाने के कारण अनुमानों में यह त्रुटि आई है। खाद्य एवं कृषि संगठन (एफएओ) का कहना है ग्राम स्तर की अर्थव्यवस्थाओं को देखते हुए यह बात और भी महत्वपूर्ण हो जाती है। पांच हज़ार लोगों के बाज़ार वाले शहर तक पहुंचने में पांच घंटे का समय लगने की परिभाषा के आधार पर यदि बाज़ार से ग्रामीण जनसंख्या की दूरी को मापा जाए तो पता चलेगा कि दक्षिण एशिया के केवल पांच प्रतिशत लोग ही दूरस्थ क्षेत्रों में रहते हैं जबकि अफ्रीकी देशों में 30 प्रतिशत से अधिक लोग दूर-दराज के क्षेत्रों में रहते हैं। यहां हम यह कहना चाहते हैं कि पूर्व के अनुमानों की अपेक्षा शहरीकरण कहीं अधिक तेज़ी से हो रहा है। इस बात को स्वीकार करना कृषि के विकास के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। ❑

(लेखक नगालैंड विश्वविद्यालय के कुलपति हैं। वे भारत सरकार के ऊर्जा, नियोजन, विज्ञान और प्रौद्योगिकी मंत्री भी रह चुके हैं।

ई-मेल: yalagh@gmail.com)

योजना

आगामी अंक

फरवरी 2012 अंक

योजना का फरवरी 2012 अंक विदेश व्यापार पर केंद्रित होगा। इस अंक का मूल्य ₹ 10 होगा।

मार्च 2012 बजट विशेषांक

विगत वर्षों की भांति *योजना* 2012 का मार्च अंक बजट 2012-13 पर केंद्रित विशेषांक होगा। इस अंक का मूल्य ₹ 20 होगा।

बारहवीं योजना में जनस्वास्थ्य

● ए.के. अरुण

तेज़, टिकाऊ और ज्यादा समावेशी विकास के नारे के साथ योजना आयोग का 12वीं पंचवर्षीय योजना का आधारपत्र संभावनाओं की झलक तो देता है लेकिन अभी चल रही 11वीं योजना की वास्तविक परिणति से आगे की स्थिति पर संदेह भी उत्पन्न होता है। इस लेख में आगामी योजना में स्वास्थ्य और लोगों के सेहत से जुड़े ज़रूरी पहलुओं के प्रति सरकार की प्राथमिकता, सोच, वस्तुस्थिति तथा इस योजना से पड़ने वाले प्रभावों पर चर्चा की गई है। योजना आयोग में सदस्य और स्वास्थ्य मामलों से जुड़ी डॉ. सईदा हमीद के हाल में दिए एक वक्तव्य के अनुसार, ''आगामी 12वीं पंचवर्षीय योजना स्वास्थ्य को समर्पित होगी।'' उल्लेखनीय है कि विगत 3 दिसंबर, 2011 को दिल्ली में अंतरराष्ट्रीय होमियोपैथिक सम्मेलन में बोलते हुए डॉ. हमीद ने कहा कि, ''12वीं पंचवर्षीय योजना भारत के जनस्वास्थ्य के नाम समर्पित है।''

पृष्ठभूमि

भारत में जनस्वास्थ्य ढांचे को मज़बूत करने का संकल्प कोई नया नहीं है। आज़ादी के पहले से ही बनी भोरे समिति की सिफ़ारिशें आज भी पूरी तरह लागू नहीं हो पाई हैं। सन् 1950 में भारतीय स्वास्थ्य सेवा की जो तस्वीर उभरी उसमें 81 प्रतिशत सुविधाएं शहरों में स्थापित हुईं। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के मुताबिक उस दौर में 27,000 लोगों पर औसतन एक चिकित्सक उपलब्ध था। सन् 1959 में गठित ए.एल. मुदलियार समिति ने तत्कालीन स्वास्थ्य व्यवस्था की पड़ताल की तो पाया कि आधुनिक डॉक्टर ग्रामीण क्षेत्रों में काम करने के इच्छुक नहीं हैं। तब मुदलियार समिति ने प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों के बजाय जिला अस्पतालों को मज़बूत करने का सुझाव दिया था। सन् 1960 के अंत तक सरकारी नीतियों ने असमानताएं बढ़ानी शुरू कर दी। लोगों के सामने रोटी, कपड़ा और मकान तथा बेहतर जीवन के सवाल थे। सरकारी नीतियों का नतीज़ा हुआ कि अमीर और अमीर तथा ग़रीब और ग़रीब होने लगे। स्वास्थ्य सेवाओं के बारे में सरकार ने लगभग मान लिया कि चिकित्सकों से गांव में जाकर सेवा देने की उम्मीद करना बेकार है। तब सरकार ने सामुदायिक स्वास्थ्य सेवा को मज़बूत करने का मन बनाया। इस नज़रिये से सरकार ने तब जे.बी. श्रीवास्तव की अध्यक्षता में एक और समिति बनाई। इस समिति ने सुझाव दिया कि ग्रामीण स्तर पर स्वास्थ्य और चिकित्सा सुविधा के लिए बड़ी संख्या में स्वास्थ्य कार्यकर्ता तैयार किए जाएं। इसी दौर में परिवार नियोजन कार्यक्रम भी शुरू हुआ। भारत सरकार ने इसके लिए विदेशी बैंकों से कर्ज़ लेना शुरू किया और 1980 आते-आते भारत अंतरराष्ट्रीय बैंकों के कर्ज़ में फंसता चला गया। 1991 से तो भारत सरकार ने खुले रूप से अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक की नीतियों को ही लागू करना शुरू कर दिया। अब इसका असर आम आदमी के जीवन पर स्पष्ट देखा जा सकता है। एक गैर-सरकारी अध्ययन को यदि मानें तो भारत में आम लोगों को अपने स्वास्थ्य और उपचार पर सालाना 95,000 करोड़ रुपये ख़र्च करने पड़ते हैं। इनमें से 40 प्रतिशत तो ऐसे लोग हैं

जो ज़मीन, जेवरात या अपनी स्थायी संपत्ति बेचकर उपचार कराते हैं। नतीज़न सालाना 3.25 करोड़ लोग महंगे उपचार की वजह से ग़रीबीरेखा के नीचे ढकेल दिए जाते हैं। एक और अध्ययन बताता है कि यदि सरकार ग़रीबों की स्वास्थ्य रक्षा पर सालाना 6,000 करोड़ रुपये अतिरिक्त ख़र्च करे तो काफी हद तक लोगों को उपचार मिल सकता है।

11वीं योजना की हक़ीक़त

इस पृष्ठभूमि में योजना आयोग की 11वीं योजना के लक्ष्यों की समीक्षा करना भी ज़रूरी है। 11वीं योजना का लक्ष्य भी आम लोगों की स्वास्थ्य रक्षा, बेहतर साफ़-सफ़ाई, साफ़ पेय जल की उपलब्धता, पोषक आहार तथा आम लोगों तक जनस्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता के रूप में तय था। इसमें संकल्प लिया गया था कि हाशिये पर रह रहे लोगों, खासकर किशोर लड़कियों, महिलाओं, तीन वर्ष से कम उम्र के बच्चों, वृद्ध, अनुसूचित जाति व जनजाति के लोगों के स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान दिया जाएगा। यह भी संकल्प था कि स्वास्थ्य पर सरकार सकल घरेलू उत्पाद का 2 फीसदी तक ख़र्च करेगी। सरकार ने राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन (एनआरएचएम), राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना (आरएसबीवाई) तथा भारतीय चिकित्सा पद्धतियों एवं होमियोपैथी (आयुष) को प्रमुखता देने का संकल्प भी लिया था। लेकिन अब, जब 11वीं योजना समाप्ति के कगार पर है तब इन लक्ष्यों की हक़ीक़त यह है कि अभी भी कई संकल्पों को ज़मीन पर नहीं उतारा जा सका है।

11वीं योजना में स्वास्थ्य एवं जैव चिकित्सा अनुसंधान को महत्व देने पर बल था लेकिन इस दिशा में कुछ विशेष नहीं हुआ। कई अनुसंधान केंद्रों की स्थापना का लक्ष्य अभी भी अधूरा है। राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति में व्यक्त सरकारी संकल्पों को बार-बार याद दिलाने के बावजूद चिकित्सा अनुसंधान पर सरकार को 2010 तक कुल स्वास्थ्य ख़र्च का 2 प्रतिशत ख़र्च करना था लेकिन यह घोषणा भी कागज़ी ही रही। इसी योजना में सरकार ने यह भी माना था कि राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन में आयुष के चिकित्सकों को ज्यादा से ज्यादा लगाया जाएगा क्योंकि गांवों में एलोपैथिक चिकित्सक जाना नहीं चाहते और वहां चिकित्सकों की सख़्त ज़रूरत है लेकिन यह भी मामला लटका रहा। प्रधानमंत्री स्वास्थ्य सुरक्षा योजना के नाम पर देश में अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान (एम्स) की तर्ज़ पर छह नये एम्स क्रमशः पटना, भोपाल, भुवनेश्वर, जोधपुर, रायपुर तथा ऋषिकेश में खोलने की योजना की मियाद पूरी हो रही है लेकिन स्थिति कछुआ चाल से आगे नहीं बल्कि वैसी की वैसी है। ऐसे ही भारतीय चिकित्सा पद्धति और होमियोपैथी के विकास के लिए एक अंतरराष्ट्रीय विकास परिषद की स्थापना भी अभी तक खटाई में है। साथ ही आयुर्वेद एवं होमियोपैथी के कई क्षेत्रीय संस्थानों की स्थापना के लक्ष्य के बावजूद उनकी नींव भी अभी तक नहीं रखी जा सकी है।

11वीं योजना में स्पष्ट संकल्प लिया गया था कि टेली मेडिसीन, मधुमेह नियंत्रण, कॉर्डियोवैस्कुलर रोगों तथा स्ट्रोक आदि के लिए राष्ट्रीय स्तर पर अभियान चलाए जाएंगे साथ ही राष्ट्रीय कैंसर नियंत्रण कार्यक्रम, नशा मुक्ति अभियान, तंबाकू नियंत्रण कार्यक्रम आदि को महत्वपूर्ण माना गया था। लेकिन इस दिशा में अभी भी बहुत कुछ करना बाकी है। इसी योजना में लेप्टोस्पाइरोसिसए 'लोरोसिस' जैसे रोग बहुल इलाक़े में पायलट परियोजना भी लक्ष्य से अभी दूर है। साथ ही अंग प्रत्यारोपण संबंधी नीतियां और कार्यक्रम अभी भी सरकारी पहल की मांग कर रहे हैं।

11वीं योजना के मध्यवर्ती मूल्यांकन में स्वयं योजना आयोग भी स्वीकार कर चुका है कि योजना लक्ष्य से काफी पीछे चल रही है। सरकार को 12वीं योजना के आरंभ होने से पहले अपने क़दम तेज़ करने होंगे लेकिन इस दौरान स्वास्थ्य के विभिन्न योजनाओं में मची सरकारी लूट और व्याप्त भयंकर भ्रष्टाचार ने सब गुड़-गोबर करके रख दिया है। संक्षेप में कहें तो 11वीं योजना में भी एनजीओ एवं कारपोरेट के सहयोग पर बल था लेकिन पर्याप्त मुनाफ़े के न होने की वजह से स्वास्थ्य सेवाओं में सार्वजनिक-निजी साझेदारी (पीपीपी) मॉडल भी अच्छी तरह लागू नहीं हो पाया, इसी के तहत समेकित रोग निगरानी कार्यक्रम (आईडीएसपी) को भी स्थापित करने का लक्ष्य अधूरा ही है। इस योजना में एक और महत्वपूर्ण दिशानिर्देश था। वह यह कि लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कार्यक्रम के केंद्रित क्रियान्वयन के बजाय उसे क्षेत्र विशेष के अनुसार निर्धारित करने पर ज़ोर हो लेकिन अभी हमारे देश में सरकारी संस्थाओं की रचनात्मकता ऐसी नहीं है कि इस प्रकार की महत्वाकांक्षी योजना या सोच पर काम करें। बहरहाल, लक्ष्य प्राप्ति के संकल्प को कार्यरूप देने की क्षमता के अनुरूप योजना का निर्माण और कार्यान्वयन ज़रूरी तत्व है।

12वीं योजना के लक्ष्य

प्रस्तावित 12वीं योजना की रूपरेखा एवं दृष्टिपत्र को देखकर सरकारी महत्वाकांक्षा का पता तो लगता है लेकिन मौजूदा सरकारी मशीनरी की वास्तविकता एवं गहराते स्वास्थ्य संकट तथा जनस्वास्थ्य की बढ़ती चुनौतियों की तुलना में यह उम्मीद करना मुश्किल है कि भारत में सरकार जनस्वास्थ्य एवं बढ़ते रोगों की चुनौतियों को स्वीकार कर उससे निबटने के लिए कमर कस रही है। हां सरकार ने 12वीं योजना में स्वास्थ्य पर जीडीपी का 2.5 प्रतिशत ख़र्च करने एवं औसत स्वास्थ्य संकेत के नज़दीक पहुंचने की इच्छा रखी है, जोकि अच्छी बात है। 12वीं योजना के दृष्टिपत्र में सरकार ने व्यापक स्वास्थ्य सुविधा, व्यापक स्वास्थ्य ढांचा, स्वास्थ्य के लिए पर्याप्त मानव संसाधन, स्वास्थ्य सेवाओं में जनभागीदारी, बच्चों के पोषण एवं इससे संबंधित कार्यक्रमों को मज़बूत करने का संकल्प है।

भारत में व्यापक स्वास्थ्य सेवाओं की बात करें तो शुरू से ही यहां श्रेणीबद्ध प्रणाली पर ज़ोर था। प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र से लेकर राष्ट्रीय अस्पताल तक एक बहुस्तरीय व्यवस्था आज भी है। यह अलग बात है कि प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र कभी उतने प्रभावी नहीं बन पाए जितनी उम्मीद की गई थी। अब पंचायती राज संस्थाओं के प्रभावी होने पर स्वास्थ्य सेवाओं को उसकी मदद से गांव में ले जाने की बात चल रही है। इसमें स्वयंसेवी संस्थाओं की भूमिका भी अहम मानी जा रही है। इस योजना का लक्ष्य है कि पंचायत स्तर पर स्वास्थ्य उपकेंद्रों की स्थापना हो ताकि स्वास्थ्य सेवा एवं बाल व शिशु विकास की विभिन्न योजनाएं, पोषण एवं प्रशिक्षण आदि के कार्य प्रभावी हो सकें।

ग्रामीण स्वास्थ्य आंकड़ों की बात करें तो वर्ष 2010 तक में भी देश में लगभग 20 हज़ार स्वास्थ्य उपकेंद्रों की कमी होगी। अभी भी 4,252 प्राथमिक स्वास्थ्यकेंद्र तथा

2,115 सामुदायिक स्वास्थ्यकेंद्रों को स्थापित करना है। इस समय देश में कोई 1,084 चल चिकित्सा इकाई सक्रिय हैं। यदि वास्तव में स्वास्थ्य संस्थाओं को प्रभावी बनाना है तो समुदाय, ग्राम व प्रखंड स्तर पर स्वास्थ्य केंद्रों को मज़बूत व प्रभावी बनाना होगा। ऐसे ही ग्रामीण स्वास्थ्य आंकड़ों के अनुसार अभी भी प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों में 2,433 केंद्रों पर चिकित्सक नहीं हैं। यह अभी कुल आवश्यकता का 10.27 प्रतिशत है। सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्रों में 11,361 चिकित्सकों की अभी भी ज़रूरत है। आवश्यकता का यह 62.6 प्रतिशत है। ऐसे ही इन केंद्रों पर कोई 25 प्रतिशत नर्स एवं सहायकों की ज़रूरत है। इसके अलावा 8 हज़ार फार्मासिस्ट एवं 14,225 लैब टेकनीशियन की भी जगह भरना शेष है।

आंकड़ों में देखें तो देश के 640 जिलों में से मात्र 193 जिले में ही मेडिकल कॉलेज हैं। बाकी 447 जिले में चिकित्सा अध्ययन का कोई इंतजाम नहीं है। ऐसे ही, देश में अभी मात्र 49 स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण प्रशिक्षण केंद्र हैं। इतने से 121 करोड़ आबादी वाले भारत के लोगों की स्वास्थ्य आवश्यकताओं को भला कैसे पूरा किया जा सकता है? 12वीं पंचवर्षीय योजना में यह भी विचार चल रहा है कि देश के सभी 635 जिला अस्पतालों तथा समुदाय स्तर के 4,535 स्वास्थ्य केंद्रों को प्रशिक्षण केंद्र बना लिया जाए।

आगामी योजना की यह परिकल्पना अवश्य महत्वपूर्ण है लेकिन चिंता की बात यह है कि उदारीकरण के इस दौर में जहां सरकार स्वास्थ्य एवं शिक्षा जैसे बुनियादी क्षेत्रों में भी विदेशी निवेश और निजीकरण को बढ़ावा दे रही है, वहां लोक महत्व की इन योजनाओं को लागू कराना क्या आसान होगा? जबसे भारत ने विश्व व्यापार संगठन के दबाव में काम करना शुरू किया है तब से जनस्वास्थ्य, जनकल्याण और जनशिक्षण कार्यों व योजनाओं की गति धीमी हुई है।

12वीं योजना में राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना (आरएसबीवाई) पर भी ज़ोर दिया जा रहा है। हालांकि इस योजना का जिक्र 11वीं योजना में भी था लेकिन इस पर सरकार ने ज्यादा कुछ नहीं किया। इस योजना के तहत केंद्र सरकार एवं राज्य सरकारें 75:25 के अनुपात में 30 रुपये के वार्षिक प्रीमियम पर 30,000 रुपये तक के ऑपरेशन या उपचार की सुविधा देगी। ज़ाहिर है कि इस स्वास्थ्य बीमा योजना से ग़रीबों को शुल्करहित उपचार की सुविधा मिल सकेगी। अनुमान है कि इससे ढाई करोड़ परिवारों को लाभ मिलेगा। यह योजना 29 राज्यों के सभी प्रमुख जिलों में लागू करना है। हालांकि 12वीं योजना का दृष्टिपत्र यह उम्मीद करता है कि सरकार द्वारा पोषित यह स्वास्थ्य बीमा योजना देश के सभी नागरिकों को मिले, ऐसी कोशिश की जाएगी।

12वीं योजना में बच्चों के पोषण, स्कूल स्वास्थ्य तथा समेकित बाल विकास कार्यक्रमों पर भी ज़ोर दिया गया है। इसमें 3 वर्ष तक के बच्चों को विशेष टीकाकरण एवं पोषण आपूर्ति कार्यक्रम में आवश्यक रूप से शामिल करने की बात है, लेकिन मुख्य सवाल फिर खड़ा होता है कि सरकार की मौजूदा मशीनरी क्या इन ड्रीम योजनाओं को अमल में ला सकेगी?

यह विडंबना ही है कि जहां हमने सबको स्वास्थ्य के संकल्प की बात आज से ढाई दशक पूर्व की थी वहीं 11 वर्षों बाद भी हम अभी तक पूरे देश में स्वास्थ्य के बुनियादी ढांचे को खड़ा नहीं कर पाए हैं। आज भी प्रत्येक साल कालाजार के 6 लाख नये मामलों में से एक लाख मामले भारत में ही होते हैं। दुनिया की 350 लाख आबादी कालाजार की आशंका में है। इनमें से 12 लाख मामले भारत के हैं। इस रोग की एक खास बात यह है कि बिहार, बंगाल, असम, तमिलनाडु आदि प्रदेशों में सबसे ग़रीब व उपेक्षित कही जाने वाली जातियां सबसे ज्यादा इस रोग की चपेट में हैं। साल-दर-साल कालाजार की स्थिति बदतर होते जाने के बावजूद इस पर सरकार का बजट वर्ष 2005-06 में एड्स/एचआईवी के बजट का 5 प्रतिशत भी नहीं है। जबकि एचआईवी के मुक़ाबले कालाजार के मरीजों की संख्या कई गुना ज्यादा है। वैश्वीकरण और उदारीकरण के बाद मलेरिया की स्थिति ऐसी भयानक हुई है कि इसके संक्रमण और बढ़ते प्रभाव की आलोचना से बचने के लिए सरकार ने राष्ट्रीय मलेरिया नियंत्रण कार्यक्रम (एनएमसीपी 1953) एवं राष्ट्रीय मलेरिया उन्मूलन कार्यक्रम (एनएमईपी 1958) से अपना ध्यान हटा लिया है। नतीज़ा हुआ कि सालाना मृत्युदर में वृद्धि हो गई। हालांकि सरकारी आंकड़ों में मलेरिया संक्रमण के मामले कम हुए बताया गया है, लेकिन सालाना परजीवी मामले (एपीआई), सालाना फैल्सीफेरम मामलों (एएफआई) में गुणात्मक रूप से वृद्धि हुई है। हमारे देश में स्त्री-पुरुष अनुपात भी अन्य देशों से असमान हैं। जनगणना के आंकड़ों के अनुसार भारत में स्त्री-पुरुष का अनुपात 933:1000 है, जबकि रूस में यह 1140:1000 है। महिलाओं की कमज़ोर सेहत की वजहों में कुपोषण खासा महत्वपूर्ण है। पंजाब जैसे समृद्ध प्रदेश में लड़कियों में कुपोषण का प्रतिशत लड़कों से ज्यादा है। आंकड़े बताते हैं कि गर्भ में लड़का होने पर माताएं 90 प्रतिशत पोषण प्राप्त करती हैं, जबकि लड़कियों के मामले में ऐसी माताओं का प्रतिशत सिर्फ़ 72 है। ग्रामीण लड़कों की तुलना में 52 प्रतिशत ग्रामीण लड़कियां कुपोषित हैं।

यह मौजूदा भूमंडलीकरण और अंतरराष्ट्रीय पूंजीवादी व्यवस्था का ही प्रभाव है जो स्वास्थ्य संबंधी सरकार की नीति सेवा से विचलित होकर राजस्व पैदा करने के मॉडल की ओर जा रही है। इसी नीति के तहत एम्स जैसी अति विशिष्ट स्वास्थ्य व चिकित्सा प्रदान करने वाली संस्थाओं से भी मुनाफ़ा कमाने का लालच सरकार में दिख रहा है। एम्स को लेकर वेलियाथन की अध्यक्षता में बनी समिति की अनुशंसा भी इसी कड़ी का हिस्सा है। यह बात और है कि एम्स के प्रोग्रेसिव डॉक्टर्स फोरम के दबाव से यह रिपोर्ट अभी तक लागू नहीं हो पा रही है।

स्वास्थ्य पर जहां जनआकांक्षाओं का दबाव है वहीं अंतरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थाएं उपभोक्ता शुल्क एवं चिकित्सा या इलाज के बदले पैसा लेने की नीति की वक़ालत कर रही हैं। भारत जैसे ग़रीब मुल्क में जहां 70 फीसदी लोग 20 रुपये से कम की दैनिक आय पर गुज़ारा करते हैं, वहां चिकित्सा को महंगा कर देने का क्या परिणाम होगा आसानी से समझा जा सकता है। योजना आयोग के ही एन.सी. सक्सेना कमीशन की रिपोर्ट पर गौर करें तो पता चलेगा कि इस देश में 50 प्रतिशत से ज्यादा लोग अपने इलाज़ पर भारी रक़म ख़र्च नहीं कर सकते। इसी रिपोर्ट में प्रतिव्यक्ति कैलोरी का जो मानदंड रखा गया है वह आईसीएमआर के

दिशानिर्देशों के कैलोरी ऋण से बहुत कम है। भारतीय संविधान की मूल भावना के अनुसार भी यहां के लोगों को मुफ़्त स्वास्थ्य व शिक्षा उपलब्ध कराने की जिम्मेवारी सरकार की है लेकिन सरकार 'सबके लिए स्वास्थ्य' की जगह 'एफोर्डेबल स्वास्थ्य' की बात करने लगी है। स्पष्ट है कि यह स्वास्थ्य सेवाओं के निजीकरण एवं व्यावसायीकरण की स्पष्ट साज़िश है।

भारत में जीवन से जुड़ी विभिन्न सरकारी योजनाओं व नीतियों की यह विडंबना है कि नारे तो जनकल्याण के होते हैं लेकिन अमल व्यावसायिक या निहित स्वार्थों का होता है। वैश्वीकरण के दौर में सेवा का लगभग प्रत्येक क्षेत्र मुनाफ़ा कमाने की इकाई के रूप में देखा जाने लगा है। ज़ाहिर है जनस्वास्थ्य के सभी ज़रूरी मानदंडों की उपेक्षा कर ज़ोर तथाकथित वैज्ञानिक खानापूर्ति एवं दवा वितरण, टीकाकरण, टॉनिकों के व्यापार आदि पर है और यह बाज़ार की बड़ी कंपनियों के व्यावसायिक हित में है। एक उदाहरण देखें : खसरा बच्चों में होने वाली एक आम महामारी है और यह महामारी कुपोषित बच्चों में ज्यादा होती है। मशहूर जनस्वास्थ्य वैज्ञानिक डेविड मोर्ले ने कहा था कि 'खसरा से बचाव के लिए टीका से ज्यादा ज़रूरी बच्चों का पोषण सुधारने से है। यदि सरकारी नीतियों में ग़रीबी उन्मूलन और लोगों की क्रय क्षमता बढ़ाने पर ज़ोर नहीं है तो खसरा को जड़ से ख़त्म करना संभव नहीं है।' यही बात दूसरे सभी महामारियों पर भी लागू होती है। पोलियो का ख़ात्मा पोलियो ड्रॉप के साथ-साथ सामुदायिक सफ़ाई के निर्धारण से ही संभव है। इसलिए नीतियों में दवा एवं टीका के साथ-साथ आम आदमी की आर्थिक स्थिति सुधारने पर ज़ोर दिए बगैर देश के नागरिकों का स्वास्थ्य सुधारना संभव नहीं है।

आधुनिक नीति की सबसे बड़ी विडंबना यह है कि इसमें पहले समस्या उत्पन्न की जाती है फिर उसका समाधान ढूंढा जाता है। व्यवसाय की दृष्टि से यह अच्छा है क्योंकि समाधान के नाम पर कंपनियों, वित्तीय संस्थाओं को अच्छा मुनाफ़ा कमाने एवं धंधा चमकाने का आधिकारिक एवं सम्मानजनक मौका मिल जाता है। अब सवाल है कि 12वीं योजना की रूपरेखा बनाते समय ऐसा क्या किया जाए ताकि देश के लोगों में स्वास्थ्य की वास्तविक रक्षा हो सके और देश को बीमारियों व महंगे इलाज के बोझ से हल्का किया जा सके? सुझाव के तौर पर मोटे-मोटे कुछ बिंदु निम्नलिखित हैं :

- जनस्वास्थ्य शिक्षण को माध्यमिक स्तर से विश्वविद्यालय स्तर तक के पाठ्यक्रम में शामिल किया जाए।
- जनस्वास्थ्य एवं स्वास्थ्य के बुनियादी ढांचों को प्राथमिक स्तर पर मज़बूत, योग्य एवं आत्मनिर्भर बनाने की योजना बने।
- स्वास्थ्य एवं शिक्षा जैसे अति महत्वपूर्ण क्षेत्र को व्यावसायिकता एवं बाज़ार से दूर रखा जाए।
- देश में प्रचलित भारतीय एवं सामुदायिक स्वास्थ्य पद्धतियां- आयुर्वेद, यूनानी, होमियोपैथी आदि को वैज्ञानिक एवं अकादमिक तौर पर न केवल और विकसित किया जाए बल्कि इन्हें स्वास्थ्य व उपचार की प्रक्रिया की मुख्यधारा में शामिल किया जाए।
- देश में स्वास्थ्य को आवश्यक एवं आकस्मिक सेवा घोषित किया जाए तथा जीवन रक्षा को नि:शुल्क एवं व्यक्ति का सर्वप्रथम अधिकार घोषित किया जाए।

हेल्थ, मेडिसिन एंड इम्पायर नामक अपनी पुस्तक में विश्वमोय पाति तथा मार्क हैरिसन ने माना है कि ''तकनीकी श्रेष्ठता और रोगों को जटिल बनाकर पेश करने के पीछे दवा कंपनियां और साम्राज्यवादी ताक़तों का एकमात्र उद्देश्य होता है मुनाफ़ा। और इसके लिए वे नैतिकता और कानून की सारी हदें पार कर सकते हैं।'' बहरहाल, वैश्वीकरण की इन थोपी गई परिस्थितियों में वैकल्पिक और जनवादी सोच रखने वाले समाज वैज्ञानिकों की जिम्मेदारी है कि वे जनसंघर्ष को सकारात्मक और वैकल्पिक तलाश की दिशा दें ताकि इसके दुष्प्रभावों को रोका जा सके। ❑

(लेखक जनस्वास्थ्य वैज्ञानिक एवं राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त होमियोपैथिक चिकित्सक हैं।
ई-मेल: docarun2@gmail.com)

खाद्य सुरक्षा विधेयक लोकसभा में पेश

योजना के मौजूदा विशेषांक के प्रेस में जाते-जाते राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा विधेयक को लोकसभा में पेश कर दिया गया है। राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा विधेयक (नेशनल फूड सिक्योरिटी बिल) को मंत्रिपरिषद ने बीते दिनों अपनी मंजूरी दे दी थी। अब इस बिल को इसी सत्र में पारित कराया जाएगा। इस विधेयक में देश की 1.2 अरब आबादी के 63.5 फीसदी हिस्से को 7 किलो चावल तीन रुपये, गेहूं दो रुपये और मोटा अनाज एक रुपया प्रतिकिलो की दर पर दिए जाने का प्रावधान है।

विधेयक में ग्रामीण आबादी के 75 फीसदी और शहरी आबादी के 50 फीसदी हिस्से को दायरे में लाने का प्रावधान है।

यह विधेयक यूपीए अध्यक्ष के नेतृत्व वाली राष्ट्रीय सलाहकार परिषद की पसंदीदा परियोजना और साल 2009 के आम चुनाव के समय घोषित कांग्रेस के घोषणापत्र का अहम हिस्सा है।

बिल के मुताबिक सामान्य श्रेणी के प्रत्येक व्यक्ति को कम से कम तीन किलो अनाज प्रतिमाह न्यूनतम समर्थन मूल्य की आधी दर पर मुहैया कराया जाएगा। सरकार की इस योजना के लिए 5.5 करोड़ टन अनाज की जगह 6.1 करोड़ टन अनाज की ज़रूरत पड़ेगी। खाद्यमंत्री के.वी. थॉमस ने कहा था कि इस कानून को लागू करने में समग्र रूप से 3.5 लाख करोड़ रुपये की ज़रूरत पड़ेगी। इसकी वजह यह है कि अनाज का उत्पादन बढ़ाने, भंडारण स्थान में इजाफ़ा करने और दूसरी चीज़ों के साथ प्रचार-प्रसार के लिए भी अधिक रक़म की ज़रूरत पड़ेगी। यूपीए सरकार की इस महत्वाकांक्षी योजना को मेगा प्रोजेक्ट समझा जा रहा है। इससे पहले मनरेगा जैसी योजनाएं भी यूपीए सरकार लागू कर चुकी है। इस कानून के तहत आम लोगों को भी कम से कम 3 किलो अनाज एमएसपी के 50 फीसदी के हिसाब से मिलेगा।

इस समय राशन की दुकानों के माध्यम से ग़रीबों को अनाज की आपूर्ति की क़ीमत के मुक़ाबले यह रक़म बहुत कम है। इस समय ग़रीबीरेखा से ऊपर की श्रेणी के 11.5 करोड़ लोगों को हर महीने 15 किलो गेहूं ₹ 6.10 किलो और चावल ₹ 8.30 किलो के हिसाब से मिलता है। मौजूदा बिल पर वित्तमंत्री प्रणव मुखर्जी की अध्यक्षता वाली एक समिति ने विचार किया था। ❑

बुनियादी ढांचा में निवेश की समीक्षा और संभावनाएं

● मनोज सिंह

ग्यारहवीं योजना के मध्यावधि समीक्षा ने पूर्वविदित इस तथ्य को दोहराया है कि मूलभूत संरचना, विशेषकर ऊर्जा और परिवहन के क्षेत्रों में अर्थव्यवस्था के विकास में संभवत: सबसे महत्वपूर्ण बाधाएं हैं। बुनियादी ढांचे के विकास के महत्व को स्वीकारते हुए ग्यारहवीं योजना में अनुमान लगाया गया था कि पूरी योजनावधि में पांच खरब अमरीकी डॉलर के निवेश की आवश्यकता होगी, जबकि 'पहले की तरह ही काम करने' के आधार पर कुल 3 अरब डॉलर की आवश्यकता होती। यह तय किया गया था कि बुनियादी ढांचे में सकल पूंजी की व्यवस्था (जीसीएफ) सघउ के एक अंश के रूप में 2006-07 में 5 प्रतिशत से लेकर योजना के अंत तक 9 प्रतिशत तक बढ़ जाएगी। इसी आधार पर 2006-07 के स्थिर मूल्यांक पर कुल पूंजी 2007-08 के 2.6 लाख करोड़ से बढ़ कर 2011-12 में 5.74 लाख करोड़ तक पहुंच जाएगी। इसी प्रकार, ग्यारहवीं योजना के दौरान कुल 20.5 लाख करोड़ रुपये के निवेश का अनुमान लगाया गया था जोकि जीडीपी का 5.6 प्रतिशत है। यह निवेश पीपीपी सहित सार्वजनिक अर्थात सरकारी निवेश और निजी प्रयासों के मेल से, हासिल होना था। सार्वजनिक और निजी क्षेत्र की सापेक्षिक भूमिकाएं भिन्न रहने की आशा थी। सिंचाई एवं जल संसाधन प्रबंधन, ग्रामीण सड़कों का निर्माण और प्रमुख बंदरगाहों में गाद की निकासी जैसे कुछ क्षेत्रों में बुनियादी ढांचे में निवेश का बड़ा भाग सार्वजनिक क्षेत्र से ही करना होगा। ग्यारहवीं योजना की रणनीति ने निजी क्षेत्र को सीधे तौर पर और पीपीपी के विभिन्न रूपों के माध्यम से भागीदारी के लिए प्रोत्साहित किया। यह तय किया गया था कि बुनियादी ढांचे में निजी क्षेत्र की हिस्सेदारी दसवीं योजना के अपेक्षित 20 प्रतिशत से बढ़ कर ग्यारहवीं योजना में 30 प्रतिशत अथवा ₹ 6.2 लाख करोड़ हो जाएगी। आशा यह थी कि जैसा दूरसंचार क्षेत्र में हुआ, प्रतिस्पर्धा और निजी निवेश न केवल क्षमता में विस्तार करेगा वरन बुनियादी ढांचे में गुणात्मक सुधार भी लेकर आएगा। आशा थी कि निजी क्षेत्र की फंडिंग (वित्तीय निवेश) की मात्रा में क्षेत्र पर विभिन्नता रहेगी। सड़क एवं पुल, दूरसंचार, बंदरगाह, विमान तल, भंडारण और गैस वितरण में निजी क्षेत्र के औसत योगदान से अधिक ऊंचे निवेश का अनुमान लगाया गया था जो 30 प्रतिशत के बराबर है। बंदरगाहों, विमानतलों और दूरसंचार के क्षेत्रों में 60 प्रतिशत से अधिक के निवेश का अनुमान लगया गया था।

बारहवीं योजना पर विचार करने के पूर्व मध्यावधि समीक्षा के दस्तावेज़ में अनुमान लगाया गया था कि बुनियादी ढांचे में निवेश योजना के आधार वर्ष (2011-12) में जीडीपी का लगभग 8.37 प्रतिशत होगा, जो इसके अंतिम वर्ष (2016-17) में बढ़ कर 10.70 प्रतिशत तक पहुंच जाएगा जोकि कुल मिलाकर योजनावधि के दौरान जीडीपी के 9.95 प्रतिशत के बराबर रहेगा। इसमें यह माना गया था कि बारहवीं योजनावधि में जीडीपी 9 प्रतिशत रहेगी। बारहवीं योजना में बुनियादी ढांचे में निवेश का यह अनुमान, यदि हासिल किया जा सका, तो ₹ 40.99 लाख करोड़ के बराबर होगा। मध्यावधि समीक्षा में अनुमान लगाया गया है कि निवेश का 50 प्रतिशत निजी क्षेत्र से लाना होगा, तो इसका अर्थ यह है कि निजी क्षेत्र को अपना निवेश ₹ 13.11 लाख करोड़ से बढ़ाकर ₹ 20.5 लाख करोड़ करना होगा। (2006-07 के मूल्यानुसार), जोकि वास्तव में 9.34 प्रतिशत की वृद्धि होगी।

अब, जब हम ग्यारहवीं योजना के अंत और बारहवीं योजना के प्रारंभ की ओर क़दम बढ़ा रहे हैं, योजना आयोग उपयुक्त अनुमानों का संकलन और विश्लेषण करने में लगा है। हमारे दृष्टिपत्र में बुनियादी ढांचा के सभी क्षेत्रों पर ध्यान देते हुए यह देखने का प्रयास किया गया है कि पूर्वानुमान के अनुसार निवेश आकर्षित करने में उनका प्रदर्शन कैसा रहा है। यह समीक्षा बारहवीं योजना की तैयारी के सिलसिले में योजना आयोग द्वारा विभिन्न क्षेत्रों के लिए गठित कार्यकारी समूहों की रिपोर्टों के आधार पर की जा रही है। यहां इस बात को ध्यान में रखना होगा कि कार्यकारी समूहों ने निवेश के जो अनुमान लगाए थे वे निवेश की

आवश्यकता के रूप में थे न कि प्रत्येक क्षेत्र को उपलब्ध कराई गई राशि के आधार पर। संसाधन आवंटन की कवायद बारहवीं योजना की तैयारियों के अंश के रूप में की जाएगी। जैसाकि पहले बताया जा चुका है, यह काम वर्तमान में जारी है।

विद्युत

ग्यारहवीं योजना में विद्युत क्षेत्र में ₹ 6.6 लाख करोड़ के निवेश का अनुमान लगाया था। मध्यावधि समीक्षा के अनुसार, निजी क्षेत्र के निवेश में लगभग 55 प्रतिशत की बढ़ोतरी के दम पर अपेक्षित निवेश अनुमानित राशि के बराबर ही रहने की आशा है। सार्वजनिक क्षेत्र के योगदान में कमी आने की संभावना है क्योंकि ग्यारहवीं योजना के पहले दो वर्षों में निवेश आशा से कम रहा था। मध्यावधि समीक्षा में 78.7 गीगावाट के लक्ष्य की तुलना में कुल क्षमता में 62 गीगावाट की वृद्धि का अनुमान लगाया गया था, परंतु सार्वजनिक क्षेत्र की परियोजनाओं में हुई चूक के कारण वास्तविक प्रदर्शन 50 गीगावाट से ऊपर जाने की संभावना नहीं है। लक्ष्य की प्राप्ति में आई कमी का कारण मुख्यत: परियोजनाओं पर उचित रूप से अमल नहीं करना, अपर्याप्त घरेलू निर्माण क्षमता, विद्युत उपकरणों का अभाव, ईंधन विशेषकर कोयले के अभाव के कारण आई गिरावट है। वर्तमान में 60 गीगावाट क्षमता की नयी परियोजनाओं पर काम चल रहा है। बारहवीं योजना में 100 गीगावाट की अतिरिक्त क्षमता के निर्माण का लक्ष्य है। क्षमता वृद्धि में निजी क्षेत्र की हिस्सेदारी बढ़ कर 50 प्रतिशत तक पहुंचने की संभावना है। ग्यारहवीं योजना में निजी क्षेत्र का योगदान 33 प्रतिशत था। क्षमता में वृद्धि का अधिकांश दारोमदार तापीय विद्युत पर निर्भर है इसलिए कोयले की उपलब्धता से जुड़े मुद्दों को हल करना, बारहवीं योजना में महत्वपूर्ण होगा। बारहवीं योजना के अंतिम वर्ष में घरेलू कोयले के उत्पादन का 68 करोड़ टन का जो लक्ष्य रखा गया है, उसके 55 करोड़ 40 लाख टन से अधिक जाने की संभावना नहीं दिखती। बारहवीं योजना में 75 करोड़ टन से अधिक उत्पादन होने की संभावना नहीं है, जोकि नब्बे करोड़ टन से एक अरब टन की मांग को देखते हुए काफी कम है। इसके कारण भारत को आयात करना पड़ता है जिसकी बंदरगाहों की क्षमता और परिवहन की समस्याओं के साथ-साथ घरेलू और आयातित कोयले की लागत में अंतर से जुड़ी अपनी ही समस्याएं हैं।

दूरसंचार

इस योजनावधि में दूरसंचार क्षेत्र में वास्तव में विकास हुआ है। मध्यावधि समीक्षा के अनुसार इस क्षेत्र में ₹ 3.5 लाख करोड़ का निवेश होने की आशा है जो प्रारंभिक अनुमान से 34 प्रतिशत अधिक है। आशा से अधिक उपलब्धि निजी क्षेत्र के अनुमानित 60 प्रतिशत से अधिक के निवेश के कारण संभव हो सकी है। इसकी तुलना में केंद्रीय क्षेत्र के निवेश में 24 प्रतिशत की कमी आई है। ट्राई (भारतीय दूरसंचार विनियामक प्राधिकरण) की रिपोर्ट के अनुसार कुल फोन कनेक्शनों की संख्या 89 करोड़ 90 लाख हो गई है। मल्टीपुल कनेक्शनों (एक ही व्यक्ति द्वारा लिए गए अनेक कनेक्शन) की चिंताओं के बावजूद यह संख्या काफी बड़ी है। इस क्षेत्र को ग्यारहवीं योजना की उपलब्धि माना जा सकता है।

तेल एवं गैस पाइपलाइन

निवेश आकर्षित करने के मामले में इस क्षेत्र ने भी अच्छा प्रदर्शन किया है। इसे ₹ 16,855 करोड़ के लक्ष्य की तुलना में ₹ 1.27 लाख करोड़ का निवेश मिलने की आशा है। भारी वृद्धि का मुख्य कारण इस क्षेत्र में पाइपलाइनों को शामिल किया जाना है, जबकि पहले उन्हें शामिल नहीं किया गया था। अकेले पाइपलाइनों में ही ₹ 1.08 लाख करोड़ का निवेश किया गया है। बारहवीं योजना में भी वृद्धि की इस प्रवृत्ति के जारी रहने की संभावना है, क्योंकि तेल और गैस की मांग में वृद्धि होना निश्चित है। घरेलू तेल खपत में आयातित तेल की मात्रा ग्यारहवीं योजना के 76 प्रतिशत से बढ़कर बारहवीं योजना में 80 प्रतिशत तक पहुंच जाने की संभावना है। प्राकृतिक गैस की मांग में भी वृद्धि 19 प्रतिशत से बढ़कर 28 प्रतिशत हो जाने की आशा है। आशा है कि बारहवीं योजना में ऐसी रणनीतियां तैयार करने पर ज़ोर दिया जाएगा जिससे एलएनजी (तरल प्राकृतिक गैस) सहित गैस के उपयोग के विस्तार की संभावना में वृद्धि हो, ताकि हाइड्रोकार्बन के सभी अवयवों का उपयोग बढ़े। गैस पाइप लाइन का विस्तार इस रणनीति का महत्वपूर्ण भाग होगा। तेल पाइपलाइन के जरिये तेल का परिवहन सतह परिवहन (सड़क/नौवहन) की तुलना में सस्ता पड़ता है और इसके कई अन्य लाभ भी हैं।

सिंचाई

सिंचाई और जलग्रहण क्षेत्र (वाटरशेड) प्रबंधन में निवेश ग्रामीण बुनियादी ढांचे का महत्वपूर्ण अंग है। यह सरकार अथवा सार्वजनिक क्षेत्र के अधिकार क्षेत्र में आता है। सिंचाई जल परियोजनाओं की परिचालन लागत का केवल 20 प्रतिशत ही जल-प्रभार के रूप में प्राप्त होता है। घाटे का सौदा होने के कारण निजी क्षेत्र इसमें निवेश नहीं करता। मध्यावधि समीक्षा में अनुमान लगाया गया है कि ग्यारहवीं योजना में इस क्षेत्र में कुल ₹ 2.46 लाख करोड़ का निवेश होने की संभावना है जोकि मौलिक अनुमान से 7.5 प्रतिशत अधिक है। दसवीं योजना में किए गए ₹ 1.19 लाख करोड़ के निवेश से दोगुना निवेश ग्यारहवीं योजना में किया गया है।

ग्रामीण बुनियादी ढांचा

सभी उप-क्षेत्रों में ग्रामीण बुनियादी ढांचे के व्यापक उन्नयन के लिए 2005 में शुरू हुए भारत निर्माण कार्यक्रम का उद्देश्य 1,25,000 गांवों के 2 करोड़, 30 लाख घरों में बिजली पहुंचाना, शेष 66,802 ग्रामीण बस्तियों को बारहमासी सड़कों से जोड़ना; 55,067 वंचित बस्तियों में पेयजल मुहैया कराना; एक करोड़ हेक्टेयर अतिरिक्त क्षेत्र में सिंचाई सुविधा उपलब्ध कराना और बाकी बचे 66,822 गांवों में टेलीफोन कनेक्शन देना है। अनुमान है कि ग्यारहवीं योजना में केंद्र और राज्यों द्वारा बुनियादी ढांचा के विकास पर जो ₹ 13.11 लाख करोड़ का निवेश किया जाना है, उसमें से 3.94 लाख करोड़ अथवा 30 प्रतिशत ग्रामीण बुनियादी ढांचे के विकास पर ख़र्च किया जाएगा।

रेलवे

रेलवे में 2.33 ₹ लाख करोड़ का निवेश सृजित होने की संभावना है, जोकि अपेक्षा से लगभग 13 प्रतिशत कम है। रेलवे की धन

जुटाने की पद्धति में लगातार बदलाव आता जा रहा है और ग्यारहवीं योजना सामान्य कोष के समर्थन और बाज़ार ऋण पर अधिक निर्भर रहा है। ग्यारहवीं योजना में बजटीय सहयोग अंश 38 प्रतिशत हो गया है जबकि प्रारंभ में 27 प्रतिशत का ही अनुमोदन किया गया था। परंतु, ग्यारहवीं योजना में आंतरिक संसाधनों का अंश 19 प्रतिशत की तुलना में 55 प्रतिशत ही रहा है। योजना में बजटेतर संसाधनों का अंश भी 34 प्रतिशत से घटकर 27 प्रतिशत रह गया है। इस प्रकार ग्यारहवीं योजना में जीबीएस (आम बजट समर्थन) और आईआरएफसी (भारतीय रेल वित्त निगम) के ज़रिये बाज़ार ऋण पर निर्भरता की प्रवृत्ति बढ़ी है। आंतरिक संसाधनों और पीपीपी के ज़रिये अपेक्षित निवेश नहीं हो सका, जिसके कारण रेल क्षेत्र में निवेश कम हुआ है। मध्यावधि समीक्षा के अनुसार, निजी निवेश के रूप में केवल 8,316 करोड़ रुपये प्राप्त होने की आशा है जो पूर्वानुमान का कुल 16.5 प्रतिशत ही है।

रेलवे के लिए बारहवीं योजना का निर्माण 2020 की परिकल्पना की पृष्ठभूमि में किया जा रहा है। नीचे कुछ महत्वपूर्ण मुद्दे दिए गए हैं जिन पर विचार किए जाने की ज़रूरत है। यह हैं– आधुनिकीकरण की तुरंत आवश्यकता, संतृप्त मार्गों की समस्या, औसतन धीमी गति और डिब्बे की क्षमता तथा उसमें लदे हुए माल के भार में कमी, सुरक्षा, अनेक बड़ी और नयी परियोजनाओं के अनुमोदनों का अभी भी जारी रहना, आरओबी'ज/आरयूबी'ज (रेल ओवर ब्रिज/ रेल अंडर ब्रिज) और समर्पित माल गलियारे (डीएफसी) के लिए वित्तीय व्यवस्था, फीडर मार्गों का सुदृढ़ीकरण, आईआरएफसी के ऋण की सर्विसिंग और पूर्वोत्तर क्षेत्र रेल विकास कोष की स्थापना। इसके अतिरिक्त व्यय के अनुपात में आय में वृद्धि का न होना और पेंशन की बढ़ती देनदारियों पर भी गंभीरता से ध्यान देने की आवश्यकता है। इस बात का अहसास बढ़ता जा रहा है कि रेलवे में निवेश वृद्धि करनी होगी ताकि उसकी क्षमता में कमी की समस्या का निराकरण किया जा सके। आगामी योजनावधि में दो समर्पित माल गलियारे (माल परिवहन हेतु विशेष रेलमार्ग) को पूरा किए जाने की संभावना है। बारहवीं योजना में तीन-चार और समर्पित माल परिवहन रेल मार्गों के निर्माण की संभावनाओं का अध्ययन किया जा रहा है। ये हैं– दिल्ली-चेन्नई, मुंबई-चेन्नई और चेन्नई-कोलकाता। एक द्रुत गति का रेल गलियारा बनाने की भी आवश्यकता है। यात्री-परिवहन के क्षेत्र में भी क्षमता विस्तार की आवश्यकता है। अतिरिक्त डिब्बों को जोड़ना और गाड़ी की गति में वृद्धि उसी प्रकार ज़रूरी है जिस प्रकार मालगाड़ियों में अतिरिक्त वैगन लगाना और गति बढ़ाना। कार्यकारी समूह ने बारहवीं योजना के लिए रेलवे की 7.19 लाख करोड़ रुपये के निवेश का अनुमान लगाया है, जिसमें से 50 प्रतिशत से अधिक बजट से प्राप्त होगा और निजी क्षेत्र से 10 प्रतिशत का समर्थन मिलेगा। परिवहन क्षेत्रों में रेलवे को प्राथमिकता देनी होगी। ऊर्जा, भूमि और पर्यावरण के लिहाज़ से ऐसा ज़रूरी भी है। इस समर्थन के बावजूद निजी क्षेत्र से नियोजित निवेश का वृहत्तर अंश आकर्षित करने के लिए रेलवे को रणनीति तैयार करनी होगी। बजट से अधिक समर्थन जुटाने की सीमा को देखते हुए पीपीपी के ज़रिये भी निवेश आकर्षित करने पर ज़ोर देना होगा।

ग्रामीण सड़कें

निर्धनता अपशमन की महत्वपूर्ण रणनीति के तौर पर वर्ष 2000 में शुरू की गई प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना (पीएमजीएसवाई) एक केंद्र प्रायोजित योजना है। कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में 1,000 या उससे अधिक की आबादी वाले गांवों को 2003 तक बारहमासी सड़कों से जोड़ना था। 500 से अधिक की जनसंख्या वाले गांवों को 2007 तक जोड़ना था। पर्वतीय, मरुस्थली और जनजातीय इलाक़ों में 250 या उससे अधिक की आबादी वाले गांवों को जोड़ने का लक्ष्य है। चुनिंदा ग्रामीण सड़कों को सुधारकर कृषि उत्पादों को बाज़ार मुहैया कराना भी इस योजना का एक लक्ष्य है। इस कार्यक्रम पर अमल की जिम्मेदारी भारत सरकार के ग्रामीण विकास मंत्रालय की है। कार्यक्रम को पूरा करने के लिए 2007 तक की समय-सीमा निर्धारित की गई थी, परंतु कुछ राज्यों में कियान्वयन की क्षमता और धन के अभाव के कारण कार्यक्रम के लक्ष्य अभी तक पूरे नहीं हो सके हैं। कुल मिलाकर इस योजना को सफल योजना माना जा रहा है। ग्यारहवीं योजना में इस कार्यक्रम के अमल पर 59,751 करोड़ रुपये व्यय होने का अनुमान है। कार्यकारी समूह ने बारहवीं योजना में 2 लाख करोड़ रुपये के निवेश का अनुमान लगाया है। चूंकि इस क्षेत्र में पीपीपी आकर्षित करने का कोई अवसर नहीं है, कार्यकारी समूह ने पूरी मांग बजटीय समर्थन से पूरा करने का अनुमान लगाया है।

केंद्रीय सड़कें

ग्यारहवीं योजना में, एनएचडीपी (राष्ट्रीय राजमार्ग विकास कार्यक्रम) के विभिन्न चरणों में 9,044 किमी सड़कों का निर्माण किया जाएगा। इसके अलावा, पूर्वोत्तर पैकेज़ के तहत 1,012 किमी और वामपंथी उग्रवाद प्रभावित क्षेत्रों में 1,051 किमी सड़कों का निर्माण किया जाएगा। वर्तमान में, 71,772 किमी लंबे राष्ट्रीय राजमार्ग का लगभग 24 प्रतिशत लंबा मात्र 4 लेन और उससे ऊंचे स्तर का है, 52 प्रतिशत सड़कें 2 लेन की हैं और 24 प्रतिशत सड़कें एकल लेन वाली हैं। ग्यारहवीं योजना में 1.9 लाख करोड़ रुपये के अनुमानित निवेश में से कुल 1.52 लाख करोड़ रुपये का निवेश प्राप्त होने की संभावना है, जोकि 25 प्रतिशत कम है। निजी निवेश से 62,630 करोड़ रुपये प्राप्त होने की आशा है, जो 41 प्रतिशत के बराबर होता है। इससे यह पता चलता है कि सड़क क्षेत्र में पीपीपी कार्यक्रम ज़ोर पकड़ रहा है। बारहवीं योजना के लिए केंद्रीय सड़कों पर कार्यकारी समूह ने 4.83 लाख करोड़ रुपये के निवेश की आवश्यकता बताई है, जिसमें से निजी क्षेत्र का घटक 1.78 लाख करोड़ रुपये या 37 प्रतिशत है। शेष राशि बजट और बजटेतर स्रोतों से प्राप्त होने की आशा है। इसमें पेट्रोल और डीज़ल पर उपकर शामिल है। बारहवीं योजना में 30 हज़ार किमी के राष्ट्रीय राजमार्ग के साथ-साथ पूर्वोत्तर में 7 हज़ार किमी और वामपंथी उग्रवाद प्रभावित क्षेत्रों में क़रीब 13 हज़ार लंबी सड़कों के निर्माण का लक्ष्य रहने की संभावना है। एक्सप्रेस वेज़ (उच्चस्तरीय राजमार्गों) पर भी निवेश की योजना है, हालांकि वे अधिक किफायती नहीं होतीं।

नागरिक विमानन

पिछले पांच वर्षों में, भारत विश्व का नौवां

सबसे बड़ा नागरिक विमानन बाज़ार बन चुका है। यात्रियों के सार-संभाल की संख्या में भारी वृद्धि हुई है। वित्त वर्ष 2006 में 7 करोड़ 20 लाख यात्रियों ने विमानों से यात्राएं कीं जो वित्त वर्ष 2011 में तीन गुना बढ़कर 22 करोड़ तक पहुंच गई। माल परिवहन प्रबंधन क्षमता 5 लाख मीट्रिक टन (वित्त वर्ष 2006 से बढ़कर 33 लाख मीट्रिक टन वित्त वर्ष 2011 हो गई। पूर्वोत्तर क्षेत्र में हवाई संपर्क की सुविधाओं में विस्तार हुआ है। इस क्षेत्र से आने-जाने वाली उड़ानों की संख्या प्रतिसप्ताह 87 से बढ़कर 286 उड़ान प्रतिसप्ताह हो गई है। पीपीपी के माध्यम से चार अंतरराष्ट्रीय विमानतल परियोजनाओं का काम सफलतापूर्वक पूरा किया गया है। ये परियोजनाएं हैं– हैदराबाद और बंगलुरु अंतरराष्ट्रीय विमान तलों का हरित क्षेत्र विकास और मुंबई तथा दिल्ली अंतरराष्ट्रीय विमान तलों का आधुनिकीकरण। विमान तल आर्थिक नियामक प्राधिकरण (एईआरए) का निर्माण भारतीय विमान तलों पर उपयोगकर्ताओं और सेवा प्रदाताओं के हितों की रक्षा के लिए किया गया है। ग्यारहवीं योजना में नागरिक विमानन क्षेत्र में निवेश का जो अनुमान लगाया गया है उसमें से 50,000 करोड़ ₹ जीवीएस और बजट से इतर स्रोतों से प्राप्त होंगे, जबकि निजी निवेश से 30,000 करोड़ ₹ प्राप्त होंगे। कार्यकारी समूह ने अनुमान लगाया है कि बारहवीं योजना में विमानतलों के लिए ₹ 75,000 करोड़ के निवेश की आवश्यकता होगी, जिसमें से 75 प्रतिशत निजी क्षेत्र से प्राप्त होने की आशा है। एयर इंडिया जैसे नागरिक विमानन के अन्य पहलुओं के लिए 55,000 करोड़ रुपये अलग से निवेश किए जाएंगे। यह राशि केंद्रीय बजट और बजट से इतर स्रोतों से प्राप्त होगी।

बंदरगाह

इस क्षेत्र में प्रगति अपेक्षा से कम हुई है। निजी क्षेत्र के निवेश सहित प्रारंभिक लक्ष्य ₹ 87,995 करोड़ का था। इसमें से सार्वजनिक क्षेत्र का अंश ₹ 30,305 करोड़ का था जिसमें से कुल ₹ 7,600 करोड़ ही प्राप्त होने की आशा है। बंदरगाह क्षेत्र में निजी क्षेत्र का निवेश 36,868 करोड़ रुपये रहने की संभावना है। इस प्रकार कुल निवेश ₹ 44,500 करोड़ हो जाएगा, जो मूल लक्ष्य से 50 प्रतिशत कम है। इसकी धीमी प्रगति का मुख्य कारण यह है कि जहाज़रानी मंत्रालय ने योजना के पहले दो वर्षों में एक भी पीपीपी परियोजना को मंजूरी नहीं दी थी। आदर्श संविदा समझौता में लंबित संशोधन के कारण मंत्रालय ने कोई निर्णय नहीं लिया। प्रमुख विस्तार राज्यों द्वारा आगे बढ़ाई जा रही नयी बंदरगाह परियोजनाओं में हुआ है, जिनके कारण निजी क्षेत्र के निवेश में 80 प्रतिशत का योगदान हुआ है। बारहवीं योजना में बंदरगाहों की क्षमता के विस्तार पर काफी ज़ोर दिया जा रहा है। बारहवीं योजना में कुल 4,338 करोड़ रुपये (निजी क्षेत्र के बगैर) के निवेश का प्रस्ताव है। आशा है कि निजी क्षेत्र द्वारा बंदरगाह क्षेत्र के विस्तार की रणनीति बारहवीं योजना में भी जारी रहेगी। उम्मीद तो यह भी है कि बारहवीं योजना में गैर-प्रमुख बंदरगाह क्षेत्र की क्षमता बड़े बंदरगाहों की क्षमता से आगे निकल जाएगी। बंदरगाह क्षेत्र की क्षमता विस्तार के इस प्रयास को देखकर ऐसा लगता है कि मांग से अधिक क्षमता उपलब्ध होगी, जो सेवा की गुणवत्ता को देखते हुए एक सकारात्मक पहलू है।

समस्याएं

सड़क परिवहन और राजमार्ग मंत्रालय द्वारा केंद्रीय सड़कों पर गठित कार्यकारी समूह ने विचार व्यक्त किया है कि पर्यावरण की मंजूरी की मौजूदा नीति के कारण परियोजनाएं समय पर पूरी नहीं हो पा रही हैं। यह भी देखा गया है कि प्रस्तावों पर वन विभाग की मंजूरी में भी तीन वर्ष से अधिक का समय लगता है। कार्यकारी समूह ने पर्यावरण की मंजूरी को वन विभाग से अलग करने का सुझाव दिया है। समूह का प्रस्ताव है कि यदि सड़कों को चौड़ा करने का प्रस्ताव राष्ट्रीय राजमार्ग के लिए रास्ते का अधिकार (आरओडब्ल्यू) के दायरे में और 100 किमी की लंबाई से कम हो तो पर्यावरण की मंजूरी की ज़रूरत नहीं होनी चाहिए। पर्यावरण और वन मंत्रालय द्वारा विभिन्न परियोजनाओं को मंजूरी देने की एक समयबद्ध तर्कसंगत नीति अपनानी चाहिए।

भूमि अधिकरण भी एक लंबी खिंचने वाली प्रक्रिया है, जो बुनियादी ढांचा परियोजनाओं और सड़क परियोजनाओं के पूरा होने में देरी करती है। भूमि अधिग्रहण की नीति वर्तमान में भूमि अधिग्रहण कानून के अंतर्गत होती है। सरकार ने इस कानून में संशोधन के लिए पहल की है। संशोधन विधेयक को अंतिम रूप देने का कार्य अंतिम चरण में है। राष्ट्रीय राजमार्गों के लिए भूमि अधिग्रहण के लिए संबंधित राज्यों के निरंतर समर्थन की आवश्यकता है। परियोजनाओं की मंजूरी के लिए समय-सीमा के बारे में कोई स्पष्ट दिशा-निर्देश नहीं हैं जिसके कारण एनएचएआई की परियोजनाओं को पूरा करने में समय लगता है।

योजना आयोग द्वारा बंदरगाह क्षेत्र की परियोजनाओं की समीक्षा से पता चला है कि उनको अंतिम रूप देने में प्रक्रियागत बाधाएं आड़े आ रही हैं। समीक्षा के दौरान पता चला है कि गृह मंत्रालय के पास 10 से अधिक परियोजनाएं, सुरक्षा की दृष्टि से मंजूरी न मिलने के कारण तीन महीने से भी अधिक समय से लंबित हैं। इस गति से साल में 8-10 परियोजनाओं से अधिक मंजूरी नहीं मिल सकती। गैर-प्रमुख बंदरगाहों को गृह मंत्रालय की मंजूरी की आवश्यकता नहीं होती। प्रशासकीय प्रक्रिया को सरल और चुस्त बनाए जाने की आवश्यकता है ताकि परियोजनाओं को समय पर मंजूरी मिल सके।

निष्कर्ष

ग्यारहवीं योजना में बुनियादी ढांचा क्षेत्र में जो निवेश हुआ है, वह पिछली योजनाओं से बेहतर है। वास्तविक उपलब्धि के दावों की समीक्षा की जा रही है। बुनियादी ढांचा के विभिन्न क्षेत्रों का प्रदर्शन अलग-अलग रहा है। दूरसंचार और गैस एवं तेल पाइपलाइन में अच्छा निवेश हुआ है, जबकि अन्य क्षेत्रों में उतना निवेश नहीं हो सका है। बारहवीं योजना में बुनियादी ढांचे के सभी क्षेत्रों में भारी धनराशि के निवेश की आवश्यकता होगी ताकि न केवल प्रगति की गति बनी रहे बल्कि लंबित परियोजनाओं को पूरा किया जा सके। बुनियादी ढांचों की गुणवत्ता में सुधार भी आवश्यक है ताकि देश की अर्थव्यवस्था को उसका पूरा-पूरा लाभ मिल सके। ❑

(लेखक भारत सरकार के योजना आयोग में सलाहकार (परिवहन) हैं। लेख में उनके निजी विचार व्यक्त किए गए हैं।

ई-मेलः majojsingh@nic.in)

परिवहन क्षेत्र के लिए दीर्घकालीन योजना

● कैलाश चन्द्र पपनै

यदि आर्थिक विकास की गति तेज़ रखनी हो तो कुशल, विश्वसनीय एवं सुरक्षित परिवहन प्रणाली एक मूलभूत आवश्यकता है। हाल में जारी किया गया 12वीं पंचवर्षीय योजना का दृष्टिपत्र इस बात का उल्लेख करता है कि भारत के पिछले अनुभव और अन्य प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं के अनुभवों से पता चलता है कि परिवहन सेवाओं की ज़रूरतों में वृद्धि सघउ में विकास की दर से भी ज़्यादा तेज़ होती है। अंतरराष्ट्रीय व्यापार में वृद्धि और विदेशी निवेश को आकर्षित करने के लिए बुनियादी ढांचे का सुदृढ़ होना और परिवहन प्रणाली का दक्ष होना बेहद ज़रूरी है। अच्छी सड़क परिवहन, तीव्र रेल सेवाएं, सुव्यवस्थित बंदरगाह तथा अत्याधुनिक वायु परिवहन प्रणाली समय की मांग है। शहरीकरण की रफ़्तार में वृद्धि से शहरों में तीव्र जन परिवहन प्रणाली की मांग भी बढ़ती है। यही वजह है कि देश की राजधानी में मेट्रो के सफल प्रयोग के बाद न केवल वहां मेट्रो सेवा का विस्तार हो रहा है वरन देश के अन्य महानगरों में भी मेट्रो की मांग बढ़ रही है।

सड़क परिवहन

बुनियादी ढांचे के विकास में सरकारी क्षेत्र की अग्रणी भूमिका रही है, परंतु संसाधनों की कमी के कारण इसका आवश्यकतानुसार विकास नहीं हो सका। यही वज़ह है कि 11वीं पंचवर्षीय योजना के दस्तावेज़ों में इस कमी को स्वीकार किया गया और निज़ी निवेश को आकर्षित करने की ज़रूरत को रेखांकित किया गया। देश में आर्थिक विकास की गतिविधियों में तेज़ी और वैश्वीकरण के तकाज़ों को ध्यान में रखते हुए उच्च गुणवत्ता वाली ढांचागत सुविधाओं की ज़रूरत को भी अनुभव किया जाने लगा। स्थिति यह थी कि राष्ट्रीय राजमार्गों की कुल लंबाई 65,569 किमी. थी जो कुल सड़कों के मात्र दो प्रतिशत के बराबर थी जबकि 40 प्रतिशत यातायात इन पर चलता था। राष्ट्रीय राजमार्गों का मात्र 12 प्रतिशत चार लेन वाला, 50 प्रतिशत दो लेन वाला और 38 प्रतिशत एक लेन वाला था। देश के आर्थिक विकास के दौर में सड़कों के निर्माण की गति धीमी ही रही। यही वज़ह है कि सड़कों का नेटवर्क अपर्याप्त है और यातायात के मौजूदा घनत्व की दृष्टि से नाकाफी है। नयी सड़कों के निर्माण का काम वांछित प्राथमिकता नहीं पा सका जिससे सड़क नेटवर्क में नियमित रूप से वृद्धि नहीं हो पाई। उदाहरण के तौर पर राष्ट्रीय राजमार्गों के निर्माण के रफ़्तार को ले सकते हैं। इसमें उतार-चढ़ाव आता रहा है। जब देश आज़ाद हुआ तो राष्ट्रीय राजमार्गों की कुल लंबाई 21,440 किमी. थी। पहली योजनावधि (1951-1956) में इसमें 815 किमी. की, दूसरी योजनावधि में 1,514 किमी. की वृद्धि हुई तो तीसरी योजना के पांच वर्षों के दौरान मात्र 179 किमी. की वृद्धि हुई। जब तीसरी योजना के बाद 1966 से 1969 तक योजनागत विकास की छुट्टी रही तो राष्ट्रीय राजमार्गों की लंबाई में मात्र 52 किमी. की वृद्धि दर्ज़ की गई। चौथी पंचवर्षीय योजना में इसमें तेज़ी आई और 4,819 किमी. का इज़ाफ़ा दर्ज़ किया गया। पांचवीं योजना (1974-1978) के दौरान एक बार फिर उपेक्षा का दौर चला और राष्ट्रीय राजमार्गों में मात्र 158 किमी. की वृद्धि हो पाई। इसके बाद लगभग दो वर्षों की योजना में मात्र 46 किमी. राष्ट्रीय राजमार्ग का निर्माण हुआ। छठी पंचवर्षीय योजना (1980-1985) के दौरान 2,687 किमी. और सातवीं योजना के दौरान 1,902 किमी. राष्ट्रीय राजमार्ग का निर्माण हुआ। इसके बाद फिर 1990-92 की विराम अवधि में मात्र 77 किमी. राष्ट्रीय राजमार्ग का निर्माण हुआ। आठवीं योजना काल (1992-1997) में स्थिति में मामूली सुधार हुआ और 609 किमी. राष्ट्रीय राजमार्ग का निर्माण किया गया। नौवीं पंचवर्षीय योजना की अवधि (1997-2002) अवश्य उल्लेखनीय है जब राष्ट्रीय राजमार्गों के निर्माण को उचित प्राथमिकता मिली और इसमें कुल 23,814 किमी. की वृद्धि कर राष्ट्रीय राजमार्गों की कुल लंबाई को 58,112 किमी. के स्तर तक पहुंचाया जा सका। दसवीं पंचवर्षीय योजना में फिर शिथिलता का दौर चला और 9,008 किमी. नये राष्ट्रीय राजमार्गों का निर्माण किया गया। यह नौवीं योजना की तुलना में कम होते हुए भी पहले की किसी भी योजनावधि में हासिल की गई प्रगति से बेहतर था। दसवीं योजना में राष्ट्रीय राजमार्ग विकास के अंतर्गत स्वर्णिम चतुर्भुज योजना और उत्तर-दक्षिण तथा पूर्व-पश्चिम कॉरिडोर के काम को पूरा करने पर ज़ोर दिया गया।

दसवीं योजना में इन कामों पर ₹ 41,371.57 करोड़ ख़र्च किए गए।

सड़कों के बारे में योजना आयोग के एक कार्यदल ने अप्रैल 2007 में अपनी रिपोर्ट में कहा कि राष्ट्रीय राजमार्गों के नेटवर्क में क्षमता और मार्गों की सुदृढ़ता और मज़बूती व सुरक्षा की दृष्टि से अनेक कमियां हैं। इन्हें दूर करने की लागत ₹ 67,400 करोड़ आंकी गई। इसके अलावा सीमा सड़क संगठन ने भी अपने क्षेत्र में 11वीं योजना के आरंभ में ₹ 5,600 करोड़ के बकाया काम बताए।

यह लक्ष्य निर्धारित किया गया कि 11वीं योजनावधि में छह लेन वाली 6,500 किमी. सड़कों का निर्माण किया जाएगा। 1,000 किमी. एक्सप्रेस मार्ग के निर्माण का प्रस्ताव था। चार लेन वाली 6,736 किमी. और उत्तर-दक्षिण व पूर्व-पश्चिम कॉरिडोर की चार लेन वाली 12,109 किमी. लंबी सड़क के निर्माण का लक्ष्य रखा गया। इसी के साथ दो लेन वाली 20,000 किमी. लंबी सड़क के निर्माण का लक्ष्य रखा गया।

निज़ी क्षेत्र की भूमिका

बुनियादी ढांचे के विकास के लिए निज़ी क्षेत्र की भागीदारी की जो रणनीति 11वीं पंचवर्षीय योजना में अंगीकार की गई उसके अनुकूल परिणाम सामने आने लगे हैं। केंद्रीय योजना कार्यक्रमों में ही नहीं राज्यों में भी इस दिशा में प्रगति देखी गई है। परंपरागत सरकारी तरीक़े से विकास की तुलना में पीपीपी पद्धति में समय की बर्बादी कम होती है और तदनुरूप ही लागत में वृद्धि का सिलसिला भी काबू में रहता है। ठेके देने के तौर-तरीक़ों में मानकीकरण बढ़ने के परिणाम भी अनुकूल रहे हैं। हाल में भारत की अनेक ढांचागत परियोजनाओं में निज़ी क्षेत्र की भागीदारी बढ़ी है। भारत में 1,017 ऐसी परियोजनाएं चल रही हैं जिनमें ₹ 4,86,603 करोड़ का निवेश हुआ है। ऐसी परियोजनाओं की संख्या की दृष्टि से भारत चीन के बाद दूसरे स्थान पर है। परियोजनाओं में निवेश की राशि की दृष्टि से भारत ब्राज़ील के बाद दूसरे स्थान पर है। निवेश परियोजनाओं में एक बड़ा हिस्सा परिवहन क्षेत्र का है। भारत में न केवल प्रतिष्ठित सड़क परियोजनाओं पर काम चल रहा है बल्कि पहले से बनी सड़कों में सुधार का कार्यक्रम भी बड़े पैमाने पर चल रहा है। भारत में विश्व का दूसरा सबसे बड़ा सड़क नेटवर्क है। लगभग 42 लाख किमी. के इस नेटवर्क की चिंताजनक बात यह है कि गुणवत्ता की दृष्टि से यह पिछड़ा हुआ है। आधे से अधिक नेटवर्क में सड़क के किनारे पटरी तक नहीं है। कई वर्ष पहले आरंभ किए गए राष्ट्रीय राजमार्ग विकास कार्यक्रम के बचे हुए कामों को 12वीं योजना के दौरान पूरा करना होगा। इस नेटवर्क के अधिक यातायात वाले हिस्सों को छह लेन की सड़कों में बदलना होगा। बारहवीं योजना के दृष्टिपत्र में इस तथ्य को रेखांकित किया गया है कि कुछ सड़कें लंबाई में राष्ट्रीय राजमार्ग के हिस्से के बारे में, जोकि फिलहाल मात्र दो प्रतिशत है, एक सुनिश्चित राय बनाकर अगले 20 वर्षों के लिए लक्ष्यों का निर्धारण किया जाना चाहिए। इसी तरह से राज्यों में भी सड़क संपर्क को व्यापक व सुदृढ़ बनाने की पांचसाला योजना बनाई जानी चाहिए। प्रधानमंत्री ग्रामीण सड़क योजना में हासिल की गई प्रगति से ज़ाहिर है कि ग्रामीण सड़कें आर्थिक गतिविधियों को बढ़ावा देने में सक्षम हैं जिससे ग्रामीण भारत की तक़दीर बदली जा सकती है।

सड़कों का बन जाना अपने आप में महत्वपूर्ण है परंतु पहले से बनी हुई सड़कों का रखरखाव इससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण है। इसके लिए वित्तीय प्रावधान करने की जिम्मेदारी निश्चित करना ज़रूरी है। निवेश की ज़रूरतों को देखते हुए परिवहन क्षेत्र के कुछ प्रमुख संगठनों में वैधानिक सुधारों की आवश्यकता को भी स्वीकार किया गया है।

रेल परिवहन

भारत में रेलवे परिवहन प्रणाली का अहम हिस्सा रही है। सड़क परिवहन की तुलना में रेलवे ऊर्जा की दृष्टि से अधिक किफ़ायती और कम प्रदूषणकारी है। माल की ढुलाई में इसका उल्लेखनीय योगदान रहा है। भारतीय रेलवे विश्व के बहुत बड़े रेलवे तंत्र में से एक है जो प्रतिदिन 2.2 करोड़ लोगों को उनके गंतव्य तक पहुंचाता है और हर साल 92.3 करोड़ टन माल की ढुलाई करता है। बावजूद इसके सेवाओं की गुणवत्ता में सुधार की बहुत संभावनाएं हैं। सुरक्षा एक प्रमुख मुद्दा है। भारतीय रेलगाड़ियों की रफ़्तार अपने ही जैसे अन्य देशों की तुलना में काफी कम है। समूचे रेलवे तंत्र के आधुनिकीकरण की आवश्यकता से इंकार नहीं किया जा सकता है। बारहवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान इस पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। पूर्वी और पश्चिमी क्षेत्र से सिर्फ़ माल ढुलाई की लाइन डाले जाने से काफी अंतर पड़ने वाला है। परंतु इस परियोजना पर तेज़ी से अमल के साथ ही अब तक रेल संपर्क से वंचित रहे इलाक़ों को भी रेलवे नेटवर्क में लाने की आवश्यकता को नजरअंदाज़ नहीं किया जा सकता है। रेलवे के लिए संसाधनों की ज़रूरतों को ध्यान में रखना होगा तभी विस्तार, सुधार और आधुनिकीकरण की दिशा में आगे बढ़ना संभव हो सकेगा। वित्तीय संसाधनों को जुटाने के लिए रेलवे के किराये और मालभाड़े के मौजूदा ढांचे पर पुनर्विचार भी समय की मांग है।

नागरिक उड्डयन

ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना की अवधि में हवाईअड्डों के आधुनिकीकरण की दिशा में अच्छी प्रगति हुई है। इस क्षेत्र में पीपीपी प्रणाली ने अच्छे परिणाम दिए हैं। कोलकाता और चेन्नई हवाईअड्डे के अलावा 35 अन्य हवाईअड्डों को सरकार आधुनिक बनाने में जुटी है। नवी मुंबई हवाईअड्डे के विकास में निज़ी क्षेत्र की भागीदारी रहने की आशा है। हैदराबाद, बंगलुरु और कोच्चि हवाईअड्डों का विकास भी निज़ी क्षेत्र की भागीदारी के अच्छे उदाहरण हैं। अन्य हवाईअड्डों के सुधार में भी ऐसे ही प्रयासों को बढ़ावा देने की आवश्यकता है। अनेक मझोले और छोटे शहरों को वायु संपर्क से जोड़ना व्यापारिक एवं आर्थिक गतिविधियों के विस्तार में सहायक होगा। आतंकवादी गतिविधियों से जुड़े इलाक़ों व पूर्वोत्तर के राज्यों तथा अन्य दुर्गम क्षेत्रों के लिए वायु सेवाओं का विस्तार एक अनिवार्यता बनती जा रही है। दृष्टिपत्र में कही गई यह बात उल्लेखनीय है कि ऐसे इलाक़ों में दिन में ही लैंडिंग वाली विमानपट्टियों का निर्माण करके संपर्क सुविधा देना लागत की दृष्टि से उपयुक्त होगा क्योंकि रात में विमान उतारने की आधुनिक प्रणालियां बेहद ख़र्चीली हैं। यदि दिन में ही वायु संपर्क सुलभ करवा दिए जाए तो भी अनेक छोटे नगरों व व्यापार केंद्रों को बहुत लाभ मिलेगा। भारत में वायु परिवहन प्रणाली में गुणात्मक सुधार की बहुत गुंजाइश है। इस दिशा में भारतीय विमानपत्तन प्राधिकरण द्वारा भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान

संगठन 'इसरो' के सहयोग से आरंभ की गई 'गगन' परियोजना से काफी उम्मीदें हैं। जून 2013 तक इस परियोजना पर काम पूरा होने के बाद वायु यातायात का और अच्छा प्रबंधन और रात में व बेहद कम रोशनी की हालत में वायु यातायात को अधिक सुरक्षित बनाया जा सकेगा। योजना आयोग ने वायु यातायात प्रबंधन की जिम्मेदारी भारतीय विमानपत्तन प्राधिकरण से लेकर एक अलग संगठन को सौंपने के प्रस्ताव पर भी अपनी मुहर लगाई है।

जल परिवहन

अंतरराष्ट्रीय व्यापार में वृद्धि के साथ-साथ आवश्यक सुविधाओं के निर्माण की दृष्टि से बंदरगाहों के अधुनिकीकरण की ज़रूरत बढ़ती जाती है। यह उल्लेखनीय है कि भारत के अंतरराष्ट्रीय व्यापार में 95 प्रतिशत माल (मूल्यानुसार 70 प्रतिशत) का आदान-प्रदान समुद्री रास्ते से ही होता है। ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजनावधि में कुछ छोटे बंदरगाहों व कंटेनर टर्मिनलों के निर्माण में निज़ी क्षेत्रों द्वारा सहयोग किया गया है। इससे बंदगाहों में बर्बाद होने वाले समय में कटौती हुई है और मालवाही पोतों को भरने व खाली करने के काम में दक्षता बढ़ी है। परंतु बंदरगाह विकास के लिए 11वीं पंचवर्षीय योजना में निर्धारित लक्ष्यों के 50 प्रतिशत को ही हासिल किया जा सका है। पहली अप्रैल से आरंभ होने वाली 12वीं पंचवर्षीय योजना में बंदरगाहों के निर्माण व आधुनिकीकरण की दिशा में तेज़ी से अमल को सुनिश्चित करने के उपाय ज़रूरी हैं। बंदरगाहों से गाद निकालने के काम (ड्रेजिंग) में तेज़ी व गुणवत्ता का समावेश कर बड़े समुद्री पोतों के लिए उन्हें उपयोगी बनाने को प्राथमिकता देनी होगी। बंदरगाहों के साथ तीव्र सड़क व रेल संपर्क को सुनिश्चित करना भी समुद्री यातायात को फायदेमंद बनाने के लिए आवश्यक है। भारत को नये मालवाही पोतों को हासिल करने की दिशा में बहुत कुछ करना होगा। ग्यारहवीं योजना के लिए गठित कार्यदल ने इस तथ्य को उजागर किया था कि भारत के कुल ₹ 73,300 करोड़ के परिवहन बिल में से ₹ 63,900 करोड़ का भुगतान विदेशी कंपनियों को चला जाता है क्योंकि व्यापारिक पोतों की संख्या की दृष्टि से भारत की हिस्सेदारी मात्र 1.17 प्रतिशत पर सिमटी हुई थी। कार्यदल ने नीति निर्धारित करने में कमियों, वित्तीय संसाधनों के अभाव, तटवर्ती जहाज़रानी उद्योग के अपर्याप्त होने और कर्मचारियों की भर्ती के बारे में उपयुक्त नियामक व्यवस्था न होने जैसी अनेक कमियों को रेखांकित किया था।

अंतर्देशीय जल परिवहन का परंपरागत रूप से इस्तेमाल होता रहा है। लेकिन पिछले अनेक वर्षों में इसकी उपेक्षा हुई है। नदियों की उपेक्षा, देखभाल में कमी और सहायक बुनियादी ढांचे के अभाव के कारण परिवहन के इस किफ़ायती तरीक़े का पूरा लाभ नहीं लिया जा सका है। भारत में लगभग 14,500 किमी. लंबा जलमार्ग है परंतु इसमें से मात्र 5,700 किमी. ही बड़े पोतों के लिए वांछित गहराई वाला है। भारत में माल ढुलाई के क्षेत्र में जल परिवहन की हिस्सेदारी मात्र 0.28 प्रतिशत की रही है। तटवर्ती परिवहन प्रणाली की विकसित देशों में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यूरोप में घरेलू माल ढुलाई का 43 प्रतिशत हिस्सा शार्ट सी शिपिंग के माध्यम से होता है जबकि भारत में यह हिस्सा 10 प्रतिशत से भी कम है। कम ईंधन लागत और पर्यावरण मित्र जल परिवहन प्रणाली को बढ़ावा देने की आवश्यकता के बारे में कोई विवाद नहीं हो सकता है। नदियों की परिवहन प्रणाली को दुरुस्त रखने में राज्य सरकारों को भी अपनी भूमिका का निर्वाह करना होगा। बारहवीं योजना का दृष्टिपत्र इस क्षेत्र में निवेश की पैरवी करता है तथा पूर्वोत्तर क्षेत्र एवं बड़ी नदियों वाले अन्य इलाक़ों के लिए इस परिवहन प्रणाली का समर्थन करता है। ग्यारहवीं योजनावधि में बंदरगाह क्षेत्र के लिए ₹ 68,972.16 करोड़ की आवश्यकता का आकलन किया गया था जिसमें निज़ी क्षेत्र से ₹ 36,868.24 करोड़ के निवेश की अपेक्षा की गई थी। 12वीं योजना में अब तक की प्रगति के आलोक में उपयुक्त प्रावधान करने होंगे।

परिवहन क्षेत्र में भारी निवेश और नेटवर्क का विस्तार न केवल अर्थव्यवस्था की रफ़्तार बनाए रखने के लिए महत्वपूर्ण है वरन आम आदमी के जीवन को भी सुगम और सुविधाजनक बनाने के लिए भी ख़ास अहमियत रखता है। पड़ोसी देश चीन में बुनियादी ढांचे के विस्तार और परिवहन प्रणाली की दक्षता से हमें सबक लेने की ज़रूरत है। ज़ाहिर है कि अभी भारत में परिवहन क्षेत्र को एक लंबा सफ़र तय करना है और हर तरफ सुनिश्चित संपर्क की व्यवस्था करनी होगी। इसके लिए दीर्घकालीन योजना और भारी निवेश की आवश्यकता होगी। ❑

(लेखक वरिष्ठ पत्रकार हैं।
ई-मेल: kailash.papnai@gmail.com)

अपने लेख हमें ई-मेल करें

आप हमें अपने लेख और पत्र ई-मेल भी कर सकते हैं। ई-मेल करने के लिए कृतिदेव फांट इस्तेमाल करें और वर्ड ओपन फाईल exeed.yojana@gmail.com अथवा yojanahindi@gmail.com पर भेजें। एक से अधिक लेखकों के नाम केवल विशेष शोध लेखों पर ही दें। जिन रचनाओं के साथ मौलिकता का प्रमाणपत्र संलग्न नहीं होगा वे स्वीकार नहीं की जा सकेंगी। रचना के प्रकाशन के संबंध में किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार अथवा फोन न करें। विशेष अवसरों के लिए लेख तीन माह पूर्व प्राप्त हो जाने चाहिए। रचनाओं के साथ यथासंभव प्रासंगिक चित्र भी भेजें। डाक से भेजे जाने वाले लेखों की एक प्रति सीडी में भी भेजें। वापसी के लिए कृपया टिकट लगा और पता लिखा लिफ़ाफ़ा संलग्न करें।

– वरिष्ठ संपादक

Science Planet

Indian Institute of Administration

"Study for the Nation"

Conceptual Study and "WIN-WIN STRATEGY" are required to be an IAS
You are Co-ordially invited to join our Authenticated Courses because we are
writing success stories of thousands of students..... we wish you would be part of it.

IAS 2012-13

हिन्दी माध्यम

English Medium

World's No. 1

Administrative "GURU"

Dr. Raushan Kumar & Other Doctorates

विश्व में सर्वप्रथम
न्यासंगत फीस... उचित मार्गदर्शन

New Batches
10th of Every Month

CSAT ₹ 1500

Faculty from IIT-D & IIM-A

GEN. STUDIES ₹6,000

Pre & Main includes "Lucid Study Package"

Led by Faculty from Delhi University

"Modern Foundation Course"

[A 'Pathfinder Course' from Prelims to Interview]

Each Optional Subject in Only ₹10,500

• PUB. ADMN. • GEOGRAPHY • HISTORY • SOCIOLOGY • PHILOSOPHY

• BOTANY • ZOOLOGY
•CSIR / UGC-NET • LIFE SCIENCE

IAS / IFoS 2012
New Batches : 10 Feb.

Head Office : 701, Ist Floor, Opp. HDFC ATM, Dr. Mukherjee Nagar, Delhi-9
Ph.: 9212255629, 9212355629, 011-27601137/38

YH-243/2011

पंचवर्षीय योजनाओं का मूल्यांकन और भविष्य

● अशिमा गोयल

योजनाओं में सदैव ही विकास को लेकर चिंता जताई जाती रही है, क्योंकि विकास से ही निर्धनता को दूर किया जा सकता है। विकास ही समृद्धि लाने का औज़ार है। भारत की निर्धनता और उसकी विशाल विविध जनसंख्याओं को देखते हुए विकास की यह भूमिका और निर्णायक हो जाती है। पिछले कुछ वर्षों में यह विचार कि इस विकास को कैसे हासिल किया जाए और किस प्रकार यह सुनिश्चित किया जाए कि विकास निर्धनता में कमी ला सके, बदल गया है।

दूसरी पंचवर्षीय योजना में विकास के तत्कालीन विचारों के अनुरूप सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों में भारी निवेश को प्राथमिकता दी गई है। निर्धनों को विशेष रूप से लक्ष्य करके अनेक कार्यक्रम शुरू किए गए।

विकास और समानता : निष्पक्षता

बाज़ार का दमन करने वाले अतीत और मूल्यों में हस्तक्षेप करने वाले प्रयासों के कारण न तो विकास संभव हो सका और न ही लोगों की हिस्सेदारी में वृद्धि हुई।

सरकार का ऋण और घाटा बढ़ता गया, जिससे सरकारी हस्तक्षेप की संभावनाएं क्षीण होती गईं। बाज़ारों की उपयोगिताओं और अधिक खुली प्रणालियों के बारे में विकास के अंतरराष्ट्रीय विचार भी बदल गए।

लोकतांत्रिक भारत में परिवर्तन की गति धीमी बनी हुई है। साठ के दशक के अंतिम वर्षों में एक विवश योजना अवकाश के बाद नियोजन की प्रक्रिया पुनः अपने पुराने रास्ते पर आ गई। परंतु सार्वजनिक निवेश धीरे-धीरे दूर होता गया, क्योंकि पूर्व में जो विभिन्न अंतरण योजनाएं शुरू की गई थीं उनमें कमी करना कठिन साबित हो रहा था।

अस्सी के दशक के मध्य में उदारीकरण वाले बदलाव किए जा रहे थे। विकास के इस नये दर्शन के अनुसरण में निवेश का दायित्व निजी क्षेत्र के कंधे पर डाल दिया गया। निजी क्षेत्र ने रुक-रुक कर क़दम बढ़ाए। नब्बे के दशक के अंतिम वर्षों में यह स्पष्ट हो गया कि निजी क्षेत्र अकेला ही बुनियादी ढांचे के अभाव को दूर नहीं कर सकेगा। इसलिए सरकारी और निजी क्षेत्र में बेहतर संतुलन की आवश्यकता थी।

एक बार फिर योजना प्रक्रिया को प्रमुखता मिलनी शुरू हुई, परंतु सरकार महत्वपूर्ण क्षेत्रों में संसाधनों का रुख मोड़ने में ढुलमुल नीति अपनाती रही और भविष्य में अवरोधों की आशंका बनी रही। सम्मिलित प्रयास का एक उत्तम उदाहरण है कि बुनियादी ढांचे के क्षेत्र में निजी क्षेत्र के साथ सरकारी भागीदारी को बढ़ावा दिया जाना। प्रोत्साहनों, धन जुटाने और जोख़िम के बंटवारे में अभीष्ट तालमेल के लिए रूपरेखा तैयार करने में काफी प्रयास लगे। परंतु धन के अभाव और कल्याणकारी कार्यक्रमों पर सतत ज़ोर दिए जाने के कारण सार्वजनिक निवेश में वास्तविक बदलाव लाने में कठिनाई हो रही थी।

विकास और समानता : सक्रिय समावेशन

अत: समाधान यह है कि कार्यक्रमों को ऐसा रूप दिया जाए जिससे क्षमता में वृद्धि हो। इसके दो अर्थ होते हैं : प्रथम, सरकारी परिव्यय की संरचना में परिवर्तन करना। दूसरा, परिव्यय को प्रभावी बनाना अथवा ऐसे परिव्यय का चयन जो ख़र्च किए गए प्रत्येक रुपये के मुक़ाबले अधिक प्रभाव पैदा कर सके।

समानता की इस परिभाषा को देखते हुए कि विकास से प्राप्त संसाधनों का उपयोग निर्धनों की विभिन्न योजनाओं पर व्यय किया जाना होता है, कुछ समय तक तो ऐसा लगा कि 2003-08 के दौरान उच्च विकासदर और कर सुधारों के फलस्वरूप बढ़े हुए राजस्व के कारण सरकार इसी प्रकार आगे भी ख़र्च करना जारी रखेगी परंतु विकासदर में आई कमी, घाटे में वृद्धि की वापसी और निरंतर बढ़ती मुद्रास्फीति इस बात की ओर संकेत करते हैं कि यथास्थिति जारी नहीं रखी जा सकती। इसके अलावा एक ऐसा विकल्प सामने आ रहा है जो राजनीतिक रूप से अधिक व्यावहारिक है।

'समावेशी विकास' अब सरकार का लक्ष्य बन गया है। ग्यारहवीं योजना में इसे विकास के लाभों को साझा करने के अर्थ में इस्तेमाल किया गया। परंतु गंभीर विचार-विमर्श के बाद इसका अर्थ अब और व्यापक हो गया है।

राजनीतिक दृष्टि से अधिक संपादित समाज में लोगों की भागीदारी अधिक सक्रिय होती है। चूंकि विकास गुणवत्ता की चढ़ाई में नये सोपान पैदा करता है, गतिविधियों की लागत में कमी आ जाती है और उसके फल (लाभ) बढ़ जाते हैं। उदाहरण के लिए, भारतीय शिक्षा का परिमाण विषय है और उसमें भारी कमी है, परंतु इतना निश्चित है कि निरक्षरता से अर्द्ध और लगभग पूर्ण साक्षरता की ओर प्रसार संभव हो सका है। अनेक प्रकार के कौशल के लिए कार्य के अवसर उपलब्ध हैं। उच्च भ्रष्टाचारजनक वाले त्रुटिपूर्ण बेकारी भत्ते से मुक्ति संभव हो सकी है। समावेशी विकास का अर्थ यह नहीं होता कि उत्पादक वर्ग से लेकर शेष लोगों के बीच पुनर्वितरण किया जाए, परंतु इसका अर्थ लोगों के लिए ऐसी परिस्थितियां तैयार करना है कि वे विकास प्रक्रिया में योगदान कर सकें और उसमें भाग ले सकें। यही सक्रिय समावेशन है। परंतु यह परिस्थितियां सक्रिय नियोजन और सरकारी पहल के बिना संभव नहीं है।

सक्रिय समावेशन के लिए कार्य के अवसरों के साथ-साथ पारिश्रमिक में वृद्धि की भी आवश्यकता होती है। यदि उत्पादकता में वृद्धि के बगैर पारिश्रमिक में वृद्धि होती है तो उससे केवल मुद्रास्फीति ही बढ़ती है। उपभोग की सामग्रियों में भोजन का अंश अभी भी भारी बना हुआ है, जिसे देखते हुए कृषि की उत्पादकता में वृद्धि, इस अर्थ में निर्णायक सिद्ध हो सकती है कि वेतन में वृद्धि से मुद्रास्फीति में बढ़ोतरी नहीं हो।

बारहवीं योजना में नया और पुराना

यहां योजनाओं पर पुराने विचार ही हावी रहते हैं। उदाहरण के लिए, 11वीं योजना में कृषि को महत्व देने की बात की गई थी और यह इसलिए तय किया गया था कि उद्योगों को कच्चे माल की आपूर्ति हो सके, क्योंकि विकास का यह अर्थ लगाया जा रहा था कि लोगों और संसाधनों को कृषि से विनिर्माण क्षेत्र की ओर ले जाना ही वास्तविक विकास है। परंतु यह परिवर्तन तभी संभव है जब कृषि की उपलब्धता में संतोषजनक वृद्धि हो, ताकि अन्यत्र जाने वाले लोगों का पेट भर सके। यह कोई संयोग की बात नहीं है कि लगभग समान जनसंख्या वाले चीन के सकल संक्रमण के पहले ही उसकी कृषि उत्पादकता में भारी वृद्धि हुई थी। इसके अतिरिक्त ग़रीबों के इस्तेमाल में आने वाली प्रमुख सामग्रियों की क़ीमतों में उच्च उत्पादकता के कारण आई गिरावट ग़रीबी कम करने का सबसे प्रभावी तरीक़ा होता है।

भारत में, आधुनिक सेवा क्षेत्र में विनिर्माण क्षेत्र से अधिक विस्तार हुआ है। संभवत: हम विकास के एक नये मार्ग का अनुसरण कर रहे हैं। विकास के पुराने तरीक़े को जारी रखना जबर्दस्ती होगी। योजनाकारों को केवल विकास के तमाम रास्ते तैयार करने होंगे और उनमें से कौन-सा रास्ता लोगों को पसंद आता है, उन्हीं पर छोड़ दिया जाना चाहिए। मौजूदा अंतरराष्ट्रीय माहौल में भारत को चीन के विनिर्माण (कारखाना उत्पादों) निर्यात आदर्श का अनुसरण करना कठिन हो सकता है।

बारहवीं योजना के दृष्टिपत्र में कृषि पर जो अध्याय तैयार किया गया है, उसकी सराहना की जानी चाहिए। इन क्षेत्रों में सुधार, सक्रिय समावेशन के मूल तत्व हैं। लोक सेवाओं में बेहतरी लाना महत्वपूर्ण है। संपन्न लोग तो इन सेवाओं की खामियों की भरपाई महंगी निजी संस्थानों में कर सकते हैं लेकिन ग़रीब ऐसा नहीं कर सकते। बारहवीं योजना इस अर्थ में दूरदर्शी कही जा सकती है कि उसमें बेहतर लोक सेवा के लिए विकेंद्रीकृत व्यवस्था कायम करने के विभिन्न रास्ते तलाश करने की बात की गई है।

इसलिए इस योजना में वे सभी तत्व शामिल किए गए हैं जो भविष्य में महत्वपूर्ण हो सकते हैं। परंतु सक्रिय समावेशन के लिए उन सभी तत्वों में बेहतर तालमेल की आवश्यकता है। इस प्रकार के समायोजन में कृषि की उत्पादकता में वृद्धि करने वाले कार्यक्रमों को शामिल करना ज़रूरी होगा। ये भी सक्रिय समावेशन के महत्वपूर्ण तत्व हैं।

सरकारी परिव्यय की प्राथमिकताओं को कड़ाई से लागू करना, इन तत्वों का महत्वपूर्ण अंग है। इसके लिए दो मानदंड अपनाने होंगे : वे जो भावी क्षमता का निर्माण करेंगे और जो प्रभावी ढंग से लोगों तक पहुंचाए जा सकेंगे। इससे निवेश के लिए सरकारी परिव्यय की संरचना में बदलाव आ सकेगा। इसकी सफलता के लिए करोड़ों निर्धनों को अपना जीवन सुधारने के लिए प्रोत्साहन अवसर देने होंगे।

प्रोत्साहन अनुरूपता

अधोसंरचना में सुधार और बेहतर लोक सेवा से कठिन परिश्रम का अच्छा मेहनताना मिलता है। ग़रीबों द्वारा इस्तेमाल की जाने वाली प्रौद्योगिकी में और अधिक संशोधन से उसकी संभावनाएं बढ़ जाती हैं। मोबाइल फोन इसका उत्तम उदाहरण है। सॉफ्टवेयर के क्षेत्र में भारत की सफलता को देखते हुए यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि देश में ब्रॉडबैंड की पैठ और पकड़ अभी भी कमज़ोर है। सबसे अच्छी सेवा भी अमरीका के मुक़ाबले दोगुना धीमी और चार गुना महंगी है।

ब्राज़ील के सशर्त नकद हस्तांतरण की सफलता यह कहती है कि मानव पूंजी में सुधार लाने की गतिविधियों को सब्सिडी देना ग़रीबों को प्रोत्साहन देने का एक अच्छा तरीक़ा है। इससे ग़रीबों से दूर रहने वाले बाज़ारों की विफलताओं की भरपाई की जा सकती है। प्रौद्योगिकी जनित त्रुटिहीन तरीक़ों में धनांतरित पैसे अंतत: ग़रीबों को लाभ पहुंचाते हैं। यदि

महात्मा गांधी नरेगा के व्यय का उद्देश्य गांवों में परिसंपत्तियों का निर्माण है, तो इससे रोज़गार भी पैदा होगा, क्योंकि मशीनों के उपयोग पर इसमें प्रतिबंध है।

कृषि उत्पादन और वितरण, शिक्षा और स्वास्थ्य में एक बड़ी समस्या यह है कि ये सभी समवर्ती सूची में आते हैं। केंद्र कुछ पहल तो कर सकता है, परंतु उनमें प्रगति के लिए विभिन्न राज्यों को ही प्रभावी कार्रवाई करनी होगी। हमारा अनुभव यह कहता है कि अगर राज्यों के साथ राजनीतिक सौदेबाजी नहीं हो तो प्रोत्साहनों के अच्छे नतीज़े प्राप्त होते हैं। बारहवें और तेरहवें वित्त आयोग में जो प्रोत्साहन दिए गए हैं उससे राज्यों की वित्तीय स्थिति में अच्छा सुधार आया है। परंतु शहरी बुनियादी ढांचे में सुधार के लिए जवाहरलाल नेहरू राष्ट्रीय शहरी नवीकरण मिशन (जेएनएनयूआरएम) के अंतर्गत दी गई सहायता उतनी कारगर साबित नहीं हुई है। प्रोत्साहनों का स्वरूप वैधानिक होना चाहिए और उनको राजनीतिक सौदेबाजी से मुक्त रखा जाना चाहिए।

संभावित विकास

सक्रिय समावेशन से श्रमिकों की संख्या में भारी वृद्धि होगी। इसी प्रकार की सक्रियता श्रमिकों को रोज़गार देने और उनके कौशल के विकास के लिए अपेक्षित धन की सुरक्षित व्यवस्था करने के लिए भी आवश्यक है। बचत में वृद्धि हो रही है। भारत में बचत और जीडीपी का अनुपात हाल के दिनों में 36-32 के बीच रहा है। चालू खाते के घाटे का सुरक्षित स्तर जीडीपी के 2-4 प्रतिशत के क़रीब होता है। चार के अनुपात में पूंजी और उत्पादन में वृद्धि और जीडीपी के 40 प्रतिशत की पूंजी की उपलब्धता से 10 प्रतिशत की विकासदर प्राप्त हो सकती है। परंतु निवेश की आवश्यकताएं बहुत अधिक हैं। यहां एक ही उदाहरण काफी होगा– बुनियादी ढांचे पर वर्तमान में जीडीपी का 6 प्रतिशत ख़र्च होता है और इसके 9-12 प्रतिशत तक पहुंचने की संभावना है क्योंकि अगले पांच योजना वर्षों में बुनियादी ढांचे पर 10 ख़रब डॉलर ख़र्च होने का अनुमान है। विदेशी बचत से इसका केवल एक चौथाई यानी 2 खरब 50 अरब डॉलर प्राप्त होने की आशा है। यह एक भारी राशि है। परंतु चूंकि इसमें से अधिकांश राशि घरेलू संसाधनों से जुटाई जानी है, घरेलू बचत का वित्तीय प्रबंधन बेहतर होना आवश्यक है। इसकी हालत अभी भी बड़ी ख़राब है। वित्तीय नवाचार से परिवारों की वास्तविक आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हुई है। यह समझ पाना मुश्किल हो रहा है कि मुद्रास्फीति सूचकांक बांड अभी तक क्यों उपलब्ध नहीं हो पाए हैं। संभवत: विदेशी संस्थागत निवेशकों की आवश्यकताओं पर अधिक ध्यान दिया जा रहा है। परंतु यदि वे अनिवार्य घरेलू समकक्षों के बगैर आएंगे तो उसमें भारी जोख़िम हो सकता है।

भारतीय उद्यमियों ने यह दिखा दिया है कि अवसर मिलने पर वे भी अच्छे प्रतिस्पर्धी साबित हो सकते हैं। श्रम, वित्त और उत्पादकता की संभावित उपलब्धता से यह आभास होता है कि दीर्घकालीन अवधि में कुल आपूर्ति में वृद्धि हो सकती है, क्योंकि उत्पादन स्तर में वृद्धि से सीमांत लागत में वृद्धि नहीं होती। परंतु यदि ऐसा ही नियम है तो मुद्रास्फीति इतनी अधिक क्यों है?

विकास में अवरोध

अकुशलता, विकृति, विवेक, अनुमति, विलंब और अधिक लागत के कारण उत्पादन लागत भी बढ़ जाती है। उदाहरणार्थ, प्रशासन द्वारा निर्धारित मूल्यों से उत्पादन की लागत उस स्तर से बढ़ जाती है, जो उत्पादन के स्तर पर आती है। तेल का बढ़ता मूल्य, अकुशल प्रशासन और प्रणालियां, खाद्यान्न के उच्च मूल्यों के कारण वेतन वृद्धि– ये सभी मूल्यों में वृद्धि के संभावित स्रोत हैं।

यह मूलभूत पद्धति पूर्व के उस विचार से भिन्न है जिसके अनुसार विकासशील अर्थव्यवस्था में आपूर्ति-अवरोधों के कारण उत्पादन मांग से निर्धारित नहीं होता। हमारे यहां उत्पादन का निर्धारण मांग से तय होता है परंतु आपूर्ति पक्ष लागत बढ़ा देता है। यह उस मौलिक विचार से भी भिन्न है कि औद्योगिक उत्पादन मांग-निर्धारित होता है जबकि कृषि उत्पादन एक समयावधि में निश्चित होती है। यह अंतर इसलिए होता है क्योंकि एक खुली अर्थव्यवस्था में आपूर्ति-अवरोधों को दूर करना अधिक सरल होता है। कृषि सामग्रियां भी आयात की जा सकती हैं।

यदि बाज़ार सही ढंग से काम कर रहे हैं और वेतन (मज़दूरी) में लचीलापन है, तभी किसी एक वस्तु के मूल्य में गिरावट दूसरे में वृद्धि को संतुलित कर देती है और कुल मूल्य स्तर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। परंतु मूल्य और वेतन जितनी आसानी से बढ़ते हैं, उसी तरह से गिरते नहीं। अत: मूल्य में निर्णायक वृद्धि से वेतन में वृद्धि होती है और इसीलिए अन्य मूल्यों में भी वृद्धि होती है, जिससे मुद्रास्फीति बढ़ती है। खाद्यान्न मूल्य सहित अन्य अपेक्षाकृत महत्वपूर्ण वस्तुओं के मूल्य और विनिमय दर पर इनका अधिक प्रभाव पड़ता है। भारत में मुद्रास्फीति के लिए खाद्यान्न के मूल्यों की भूमिका निर्णायक होती है। चूंकि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर खाद्य पदार्थों की मुद्रास्फीति घरेलू मुद्रास्फीति को प्रभावित करती है, विनिमय दर की भी बड़ी भूमिका होती है। भारत में वर्तमान उच्च मुद्रास्फीति का दौर 2007 में वैश्विक खाद्य पदार्थों के मूल्यों में अचानक वृद्धि के साथ शुरू हुआ था और 2008 में भारी मूल्यह्रास से इसे बनाए रखा गया था। इससे स्पष्ट है कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मूल्य वृद्धि का प्रभाव भारत में भी होता है। कृषि उत्पादकता से अधिक जीवन निर्वाह वेतन में वृद्धि से भी मुद्रास्फीति पर प्रभाव पड़ता है। खाद्य पदार्थों की उच्च मुद्रास्फीति के संदर्भ में राज्यों में न्यूनतम वेतन में वृद्धि की होड़-सी लग गई, क्योंकि इसके लिए आंशिक योगदान केंद्र सरकार महात्मा गांधी नरेगा के ज़रिये कर रही थी।

संभावनाओं की पूर्ति

दीर्घकाल में आपूर्ति में अधिक लचीलेपन से कुल मांग में कमी आती है जिससे उद्योगों के लिए मूल्यवृद्धि को बनाए रखना कठिन होता है। इसके लिए कीमतों में मामूली प्रभाव लाने के लिए उत्पादन में भारी कमी करनी होती है। इसके लिए लागत में कमी के नये रास्ते तलाशना बेहतर होगा और आपूर्ति बढ़ानी होगी। यहीं पर योजना में सक्रिय समावेशन की रणनीतियों की भूमिका शुरू होती है। मूल्य में त्वरित वृद्धि पैदा करने वाले कारकों को निष्प्रभावी बनाकर, समावेशन विकास की दर में वृद्धि और मुद्रास्फीति में कमी को संभव बनाया जा सकता है। भारत तब अपनी क्षमता को हासिल कर सकेगा और बारहवीं योजना ज़ोरदार ढंग से सफल होगी। ❑

(लेखिका इंदिरा गांधी इंस्टीट्यूट ऑफ डेवलपमेंटल रिसर्च, मुंबई में प्रोफेसर हैं।
ई-मेल: ashima@igidr.ac.in)

दीक्षांत

सा. अध्ययन

&

CSAT

By

DR. S. S. PANDEY & Team

Mega Test Series (100 Test) | 15 Jan. 6 PM

समाजशास्त्र

By

DR. S. S. PANDEY

PT + MAINS SPECIAL PROGRAMME

• नवीन घटनाओं एवं नवीन सैद्धांतिक विकास के साथ सम्बद्ध करते हुए अध्यापन • प्रश्नोत्तर परिचर्चा कार्यक्रम जिसमें संभावित प्रश्नों के उत्तरों की रूपरेखा पर चर्चा एवं UPSC में पूछे गए 10 वर्षों के प्रश्नों की समीक्षा • राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय, राजनैतिक, आर्थिक, समसामयिक व सामाजिक विषयों की तैयारी हेतु विश्लेषणात्मक प्रशिक्षण व्यवस्था • PCS परीक्षा हेतु विशेष कक्षा कार्यक्रम • Current Affairs और सामान्य ज्ञान अभिवर्धन पर विशेष बल

• NCERT, India Year Book, Economic Survey, Hindu आदि पर आधारित परीक्षण व्यवस्था •त्रिस्तरीय जांच परीक्षा– 1. Daily Class Test, 2. Unit Wise Test, 3. Test Series

सीट आरक्षित कराने हेतु भेजे Registration Fee- Rs. 5,000/- (Adjustable in fee)

DISTANCE Education Programme

SOCIO MAINS	GS MAINS	GS PT
Rs. 8,000/-	Rs. 8,000/-	Rs.5,000/-
• Study Material	• Study Material	• Study Material
• Class Notes	• Class Notes	• Class Notes
• 10 Tests	• 10 Tests	• 10 + 10 Tests

Please Send DD in favour of Dikshant Education Centre, payable at Delhi with 2 Passport Size Photographs.

TATA Mc Graw Hill से प्रकाशित पुस्तकें

हमारे संस्थान के सफल छात्र

Dikshant Education Centre

303-309-310, Jaina Building Extension, Commercial Complex, Dr. Mukherjee Nagar, Delhi-110009, Ph.: 011-27652723, 9868902785, E-mail: dikshantias2011@gmail.com

YH-242/2011

भ्रष्टाचार और बारहवीं पंचवर्षीय योजना

● बिबेक देवरॉय

यदि कोई 12वीं पंचवर्षीय योजना (2012-17) के बारे में लिखना शुरू करेगा तो उसे भ्रष्टाचार के पुराने मुद्दे से भी जूझना पड़ेगा। हालांकि योजना आयोग को ऐसे संगठन के रूप में नहीं लिया जा सकता जिसने भ्रष्टाचार से निपटने की दिशा में ज्यादा प्रयास किया हो। फिर भी भ्रष्टाचार एक महत्वपूर्ण सामाजिक मुद्दा है। योजना आयोग की वेबसाइट पर गूगल सर्च का बटन दबाते ही पता चलता है कि ऐसे सैकड़ों अध्ययन (क़रीब 341) किए जा चुके हैं जिनमें रिश्वतखोरी एवं भ्रष्टाचार का हवाला दिया गया है। बारहवीं योजना का दृष्टिपत्र अभी-अभी तैयार हुआ है और उसमें भी इसका उल्लेख है। इसके प्रमाण के लिए एक विस्तृत उदाहरण की ज़रूरत है। दृष्टिपत्र में कहा गया है, भ्रष्टाचार चाहे वह छोटा हो अथवा बड़ा, दोनों से समाज का नैतिक तंतु क्षीण होता है। बड़े स्तर का भ्रष्टाचार सरकारी ठेकों के काम को ग़लत ढंग से निपटाने अथवा कुछ लोगों को फायदा पहुंचाने के लिए ऐच्छिक फ़ैसलों के फलस्वरूप होता है। भ्रष्टाचार आम लोगों की नज़र में प्रणाली की वैधता को कम करता है। प्रतियोगिता के आधार पर कुशलता कायम करने की क्षमता कम करता है। भ्रष्टाचार के अनेक रूप हैं, सभी प्रकार के भ्रष्टाचार से प्रशासन की गुणवत्ता के प्रति लोगों का विश्वास घटता है। भ्रष्टाचार आमतौर पर इज़ाज़त प्राप्त करने के छोटे स्तर से लेकर बड़े स्तर पर बड़े ठेके देने की दोषपूर्ण प्रणाली से जुड़े मामलों और विवेकाधिकार संबंधी फ़ैसला लेने से जुड़े होते हैं। परंतु भ्रष्टाचार के संबंध में आम लोगों की सोच से संबंधित व्यापक स्तर की समस्या में वृद्धि हुई है। ऐसा जागरुकता तथा सूचना का अधिकार कानून के कारण हुआ है। जागरूक प्रेस, ख़ासकर इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के कारण भी पारदर्शिता बढ़ी है। यह सोच सही नहीं है कि आर्थिक सुधारों के कारण भ्रष्टाचार बढ़ा है। वास्तव में अनेक सुधार, यथा– औद्योगिक एवं आयात लाइसेंसों की समाप्ति से अनेक क्षेत्रों में भ्रष्टाचार ख़त्म हुआ है जबकि पहले यह व्यापक रूप में कायम था। फिर भी, तीव्र आर्थिक विकास से दुर्लभ संसाधनों के मूल्य में वृद्धि हुई है। इन संसाधनों में खनिज, स्पेक्ट्रम अथवा भूमि शामिल है। जब तक इनका आवंटन स्वैच्छिक आधार पर होता रहेगा, जो अपारदर्शी होता है, भ्रष्टाचार बढ़ने की संभावना कायम रहेगी। इन क्षेत्रों में सुधार की कमी रही। यही समस्या का वास्तविक कारण है। हमें सार्वजनिक अधिप्राप्ति प्रक्रिया में अधिक से अधिक पारदर्शिता कायम कर तथा सार्वजनिक सेवा प्रदान करने की प्रक्रिया को और सरल बनाकर भ्रष्टाचार रोकने का प्रयास करना चाहिए। हमें लोकपाल तथा लोकायुक्त जैसी संस्थाओं के माध्यम से सामने आने वाले भ्रष्टाचारों से निपटने के तंत्रों को भी मज़बूत करना होगा। सरकारी ठेकों से संबंधित भ्रष्टाचार को सरकारी अधिप्राप्ति प्रक्रिया को पुनर्गठित कर भी कम किया जा सकता है। एक विशेषज्ञ समिति ने विभिन्न देशों में प्रचलित तरीक़ों के अनुरूप एक राष्ट्रीय सार्वजनिक कानून बनाने की सिफ़ारिश की है। यूएनसीआईटीआरएएल ने सार्वजनिक अधिप्राप्ति कानून का एक नया मॉडल प्रकाशित किया है जो 1994 में प्रकाशित उसके मॉडल की जगह लेगा। सरकार ने इसके अनुरूप यथाशीघ्र एक उपयुक्त कानून बनाने की मंशा प्रकट की है। आम आदमी एवं सरकार के बीच संबंध में भ्रष्टाचार ही एक अड़चन बना हुआ है। यह महत्वपूर्ण होगा कि सार्वजनिक सेवा प्रदाय प्रणाली नागरिक उन्मुखी और समयबद्ध रूप से काम करे। इसके लिए ज़रूरी है कि नीतियों एवं कार्यक्रमों पर अमल करने वाली एजेंसियों में राज्य सरकारों की एजेंसियां भी शामिल हों जहां अधिकतर सार्वजनिक सेवाएं बुनियादी स्तर पर प्रदान की जाती हैं। सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (आईसीटी) इन परिणामों की प्राप्ति में अहम भूमिका निभा सकती है। सिटीजन चार्टर, जो सेवा प्रदान करने के लिए एक मानक स्तर कायम करता है, इस मामले में काफी हद तक मददगार साबित होगा। नागरिक रिपोर्ट कार्ड अथवा सामाजिक अंकेक्षण के आधार पर स्वतंत्र संस्थाओं द्वारा सार्वजनिक सेवाओं एवं प्रशासन की उत्कृष्टता का स्तर एवं मूल्यांकन निर्धारित किया जा सकता है। इन उपायों को आम लोगों को प्राप्त सार्वजनिक सेवा से होने वाली तृप्ति के आधार पर मापा जा सकता है अथवा उनका मूल्यांकन किया जा सकता है।

भ्रष्टाचार एवं पंचवर्षीय योजना

इस लंबे उद्धरण में अनेक तत्व हैं परंतु हम सिर्फ़ उस तत्व पर प्रकाश डालेंगे जो तुच्छ भ्रष्टाचार से प्रभावित सार्वजनिक वस्तुओं एवं सेवा प्रदान करने से संबंधित है। इस तुच्छ भ्रष्टाचार के प्रति काफी जागरुकता है। इस बारे में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से कायम दबाव के अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं।

पहला : एक केंद्रीय सूचना का अधिकार

कानून है जो 2005 में पारित हुआ था। उसके बाद राज्य स्तर पर भी कानून बने। तमिलनाडु (1997), गोवा (1997), राजस्थान (2000), कर्नाटक (2000), दिल्ली (2001), महाराष्ट्र (2002), असम (2002), मध्य प्रदेश (2009) तथा जम्मू-कश्मीर (2004) में ऐसे कानून बने। 1990 के दशक में मज़दूर किसान शक्ति संगठन ने भी इस बारे में आंदोलन चलाया था। जबकि सूचना का अधिकार कानून के तहत मिलने वाली जानकारी की वैधता के बारे में आपत्तियां भी प्रकट की गईं और उसमें कुछ छूट भी दी गई, वहीं सूचना के अधिकार को लेकर सक्रिय कार्यकर्ताओं की हत्या भी की गई। परंतु, इस कानून को लेकर अनेक सफलताएं भी मिली हैं। फिर भी अलग-अलग राज्य में इस कानून की अलग-अलग उपलब्धियां हैं। पब्लिक कॉज रिसर्च फाउंडेशन के अवार्ड भी राज्यों के रैंकिग के अनुरूप नहीं हैं। इसमें अंतरराज्यीय अंतर पाया जाता है।

दूसरा : सिटीजन चार्टर की पहल 1997 में हुई थी। यह व्यवस्था मई 1997 के मुख्यमंत्रियों के सम्मेलन के फलस्वरूप की गई। सिटीजन चार्टर न केवल केंद्र सरकार, उसके मंत्रियों तथा विभागों के संबंध में है बल्कि उसका विस्तार राज्यों तक है। 2007 में पब्लिक अफेयर्स सेंटर, बंगलुरु ने इन सिटीजन चार्टरों की समीक्षा शुरू की थी, जिसका व्यापक निष्कर्ष निम्नलिखित है : ''ऐसा लगता है कि सरकारी एजेंसियों ने सिटीजन चार्टरों पर अमल के काम को सेवा प्रदान करने की किस्म में सुधार तथा जवाबदेही बढ़ाने के लिए प्रणाली में आमूल बदलाव के सुअवसर के बजाय एक संक्षिप्त मसौदा तैयार करने के रूप में देखा।'' आंध्र प्रदेश तथा तमिलनाडु में थोड़ा बेहतर काम हुआ।

तीसरा : कर्नाटक जैसे राज्य में लोकायुक्त का पद है। कर्नाटक लोकायुक्त का कानून 1984 में पारित हुआ। प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग ने 1966 में अपनी रिपोर्ट सरकार को सौंपी थी। उसने सिफ़ारिश की थी कि भ्रष्टाचार-विरोधी ओम्बड्समैन की व्यवस्था केंद्र एवं राज्यों में की जानी चाहिए। इसे केंद्र में लोकपाल एवं राज्यों में लोकायुक्त के नाम से पुकारा जाएगा। कर्नाटक के अलावा लोकायुक्त अथवा समकक्ष पद आंध्र प्रदेश, असम, बिहार, छत्तीसगढ़, दिल्ली, गुजरात, झारखंड, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, केरल, मध्य प्रदेश, ओडिशा, पंजाब, राजस्थान, उत्तराखंड तथा उत्तरप्रदेश में भी सृजित हैं। लेकिन राज्यस्तरीय लोकायुक्तों की नियुक्ति राज्यों में बने विशेष कानूनों के अनुरूप हुई है। इसका मतलब यह हुआ कि केंद्रीकृत सांचा एवं अधिकारों का प्रावधान नहीं है। उनमें काफी अंतर है। इससे यह भी स्पष्ट है कि लोकायुक्त के रूप में नियुक्त अलग-अलग व्यक्ति की सफ़लता भी भिन्न-भिन्न है। कम ही लोकायुक्तों ने स्वविवेक से जांच का काम अपने हाथ में लिया है। लोकायुक्तों के अधिकारों को लेकर भी कई समस्याएं हैं। कुछ क्षेत्र लोकायुक्तों के अधिकार क्षेत्र से बाहर हैं। लोकायुक्तों की सिफ़ारिशें कानूनी रूप से बाध्यकारी नहीं हैं और न ही उन्हें दंड देने का अधिकार है। राज्यों के लोकायुक्तों के समानांतर ही केंद्र में भी लोकपाल की नियुक्ति की अपेक्षा की जाती है।

इस संबंध में अनेक विधेयक (1968, 1971, 1977, 1985, 1989, 1996, 1998, 2001, 2005, 2008) समयातीत हो गए और कोई केंद्रीय कानून का रूप नहीं ले सका। इस तरह की संस्था की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि वह सरकारी नियंत्रण से मुक्त हो, जिसमें चयन प्रक्रिया भी शामिल है। इस मामले में हांगकांग का' इंडिपेंडैंट कमीशन एगंस्ट करप्शन (आइसीएसी) एक श्रेष्ठ उदाहरण है, जिसे 1974 में स्थापित किया गया था।

चौथा : जल्द ही भ्रष्टाचार के विरुद्ध आवाज उठाने वाले अथवा उसकी सूचना देने वाले 'ह्विसलब्लोअर' की सुरक्षा के लिए भी कानून बन सकता है। विशेष रूप से यह जनहित प्रकटीकरण एवं प्रकटीकरण करने वाले व्यक्ति का संरक्षण विधेयक है जिसे मंत्रिमंडल ने स्वीकृति प्रदान कर दी है। ह्विसलब्लोअरों में अनेक उच्च पदस्थ व्यक्तियों के उदाहरण शामिल हैं जिनमें सत्येंद्र दूबे तथा षण्णमुखम मंजूनाथ शामिल हैं। उनकी हत्या की जा चुकी है, हालांकि मंजूनाथ पूरी तरह से ह्विसलब्लोअर नहीं थे।

अमरीका, ब्रिटेन, ऑस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैंड जैसे देशों में ह्विसलब्लोअरों के संरक्षण के लिए पहले से ही कानून बने हुए हैं।

पांचवां : 'जीरो रूपी नोट' जैसी पहलें हुई हैं। यह पहल पांचवें स्तंभ के रूप में शुमार एनजीओ ने की है। इनका मक़सद वैसे सरकारी पदाधिकारियों से निपटना है जो रिश्वत की मांग करते हैं। इन प्रयासों से चेन्नई, बंगलुरु तथा हैदराबाद जैसे शहरों में भ्रष्टाचार कम करने में सफलता मिली है। इसी तरीक़े से 'जागो रे' अभियान टाटा टी तथा जनाग्रह ने चलाया।

छठा : पब्लिक अफेयर्स सेंटर, बंगलुरु की सिटीजन रिपोर्ट कार्ड की पहल अच्छी रही। सिटीजन रिपोर्ट कार्ड के इस्तेमाल से सेवा प्रदान करने का स्तर सुधारने तथा भ्रष्टाचार कम करने में मदद मिली है। एडमिनिस्ट्रेटिव स्टाफ कॉलेज ऑफ हैदराबाद में 'द सेंटर फॉर इनोवेशंस इन पब्लिक सिस्टम' (सीआईपीएस) ने भी ऐसी रेटिंग का प्रयोग किया है।

सातवां : मध्य प्रदेश सार्वजनिक सेवा गारंटी अधिनियम, 2010 पारित कर अगुआ राज्य बन चुका है। कुछ सार्वजनिक सेवाओं (जन्म प्रमाणपत्र, जाति प्रमाणपत्र, आवासी प्रमाणपत्र, जलापूर्ति, खसरा, जन्म तथा मृत्यु प्रमाणपत्र) के मामले में यह कानून समय-सीमा के भीतर कार्य संपादन में मददगार साबित हुआ है। यदि सेवा प्रदान करने में कोई विलंब हुआ तो संबंधित अधिकारी पर जुर्माना कर दिया जाता है। जम्मू-कश्मीर, राजस्थान, छत्तीसगढ़, हिमाचल प्रदेश, दिल्ली, पंजाब तथा उत्तर प्रदेश ने भी ऐसी ही व्यवस्था की है। इसी तरह का कोई राष्ट्रीय कानून भी बनाया जा सकता है।

क्या यह बात सही है कि ऐसे सुधारों के फलस्वरूप छोटे-मोटे भ्रष्टाचारों के मामले में कमी आई है? कुछ मामलों को छोड़कर यही बात हुई है। सिर्फ़ नये सार्वजनिक ख़र्चे के मामलों में भ्रष्टाचार के मामले प्रकाश में आए हैं। मनरेगा इसका उदाहरण है। परंतु, क्या ऐसे मामले अक्सर सामने आए हैं जिनमें सरकारी एकाधिकार का पालन हुआ है? चुनिंदा पेशकश, निजी क्षेत्र की सेवा तथा एकाधिकार भ्रष्टाचार को एक प्रणाली का रूप देने में कारक रहे हैं। जहां तक चुनिंदा पेशकश की बात है तो वह अपेक्षाकृत धनाढ्य एवं शहरी भारत तक ही सीमित रहा है। समाज के दबाव ने मांग में बदलाव किया है और बेहतर सार्वजनिक हितों एवं सेवा का मार्ग खुला है। लेकिन, जहां तक आपूर्ति का पक्ष है, उसके लिए प्रशासनिक सेवा में सुधार लाने की ज़रूरत है। नये क़दम उठाने की ज़रूरत के संबंध में अनेक सिफ़ारिशों के बावजूद कोई ठोस क़दम नहीं उठाया गया, न भ्रष्टाचार-निरोधी तंत्र में ही कोई सुधार

(शेषांश पृष्ठ 62 पर)

लक्ष्य मुश्किल तो है

● रहीस सिंह

इस समय जब वैश्विक अर्थव्यवस्था की सेहत चिंताजनक स्थिति में है, यूरो क्षेत्र जीवनरक्षक प्रणाली पर आश्रित है, अमरीका एक कठिन चुनावी वर्ष में गुज़र रहा है, जापान की अर्थव्यवस्था संकट से परे नहीं है, चीनी अर्थव्यवस्था की ओर से मंदी की आहट सुनाई दे रही और भारतीय अर्थव्यवस्था 9 प्रतिशत के खुशनुमा माहौल से बाहर निकलकर कुछ विरोधाभाषों के साथ 7 प्रतिशत के आसपास ठिठकने का संकेत दे रही है, तब योजना आयोग का दृष्टिपत्र सामने आया है जिसमें संकट की चुनौतियों के साथ आशावादी तस्वीर पेश की गई है। अब सवाल यह उठता है कि योजना आयोग ने सकल घरेलू उत्पाद की जिस विकासदर को प्राप्त करने का लक्ष्य रखा है क्या वह विदेशी विनिमय और वित्तीय बाज़ारों में स्थिरता लाए बगैर संभव है? जब वित्तीय पूंजी प्रवाह बहुत धीमा हो और पश्चिम के संभावित निवेशक अपनी नकदी अपने वित्तीय संस्थानों के डांवाडोल होने की स्थिति में निपटने के लिए अपने पास बनाए रखने की मन:स्थिति में हों, तब तो बिल्कुल नहीं। एक बात और, हमारी 12वीं योजना 'तीव्र, धारणीय एवं अधिक समावेशी विकास' आदर्श वाक्य के साथ प्रभावी होने वाली है। लेकिन इसमें इस बात पर ध्यान दिया गया है कि देश को इस समय सबसे ज्यादा किसकी ज़रूरत है, विकासदर में वृद्धि करने या समानता एवं क्षमता के विकास की? 'तीव्र, धारणीय और अधिक समावेशी' वाक्यांश की रचना करते समय उन जटिलताओं पर विशेष ध्यान देने की कोशिश की गई है जो संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यूएनडीपी), विश्व बैंक तथा कुछ अन्य रपटों में दिखाई दे रही हैं।

12वीं योजना के दृष्टिपत्र में विकास की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि वर्तमान वैश्विक आर्थिक संभावनाएं अनिश्चितता से घिरी हैं। विश्व एक लंबी मंदी से बच गया है जबकि 2008 के संकट के परिणामस्वरूप एक समय ऐसा होने की आशंका व्यक्त की जा रही थी। औद्योगिक देशों ने 2009 संकुचन के बाद 2010 में सकारात्मक वृद्धि पुन: हासिल कर ली है। लेकिन बावजूद इसके इन देशों में विकास 2011 में धीमा हुआ है और गंभीर मैक्रो इकोनॉमिक (वृहद आर्थिक) असंतुलन एवं राजकीय ऋण संबंधी चिंताएं बढ़ी हैं। योजना आयोग का कहना है कि उभरते बाज़ार और अधिक ज़ोरदार ढंग से विकास कर रहे हैं तथा इस प्रक्रिया में भारत एक अग्रणी देश रहा है। तथापि राजकीय ऋण और औद्योगीकृत देशों में राजकोषीय धारणीयता के बारे में चिंता से इन देशों में ज़ोरदार विकास के जल्द लौटने की संभावनाएं कमज़ोर पड़ी हैं तथा औद्योगीकृत देशों में निर्यात बाज़ार के बारे में अनिश्चितता भी उत्पन्न हुई है। इन चिंताओं को ध्यान में रखते हुए 12वीं पंचवर्षीय योजना के दृष्टिपत्र में अगले ढाई दशकों के लिए विश्व अर्थव्यवस्था के लिए एक पूर्वानुमान व्यक्त किया गया है। इसके अनुसार औद्योगिक देशों में 2010 और 2025 के बीच साधारण अमरीकी डॉलर की दृष्टि से लगभग 3.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष की वृद्धि होने की संभावना है जबकि विकासशील और उभरती अर्थव्यवस्थाओं के लगभग 8 प्रतिशत की दर से विकास होने का पूर्वानुमान है। इस समूह के अंदर एशिया के पुन: साधारण अमरीकी डॉलर की दृष्टि से लगभग 10 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से वृद्धि होने का पूर्वानुमान है। विश्व जीडीपी में उन्नत अर्थव्यवस्था का हिस्सा 2011 में 65 प्रतिशत से कम होकर 2025 तक 51 प्रतिशत होने का अनुमान है जबकि उभरती अर्थव्यवस्था का हिस्सा इसी अवधि

तालिका-1

	2000	2011	2016	2020	2025
विश्व जीडीपी	32.2	68.7	90.5	110.5	140.5
उन्नत अर्थव्यवस्थाएं	25.7 (79.7%)	44.4 (64.6%)	53.3 (58.9%)	61.1 (55.3%)	71.7 (51.1%)
विकासशील और उभरती अर्थव्यवस्थाएं	6.5 (20.3%)	24.3 (35.4%)	37.2 (41.1%)	49.4 (44.7%)	68.8 (48.9%)
विश्व जीडीपी ढांचा (वर्तमान अमरीकी ट्रिलियन डॉलर में)					
विकासशील एशिया	2.3 (7.3%)	10.5 (15.2%)	17.4 (19.3%)	26.6 (24.1%)	40.7 (28.9%)
भारत	0.5 (1.5%)	1.9 (2.8%)	3.6 (4.0%)	5.8 (5.2%)	10.0 (7.1%)
उप-सहारा अफ्रीका	0.3 (1.0%)	1.2 (1.8%)	1.7 (1.9%)	2.5 (2.2%)	3.9 (2.8%)
पश्चिमी एशिया और उत्तरी अफ्रीका	0.8 (2.5%)	2.8 (4.0%)	3.8 (4.2%)	5.0 (4.5%)	7.1 (5.0%)
लातिनी अमरीका और केरेबियाई देश	2.1 (6.6%)	5.5 (8.0%)	7.4 (8.2%)	9.7 (8.8%)	13.3 (9.5%)

नोट : कोष्ठक में दिए गए आंकड़े विश्व जीडीपी का हिस्सा दर्शाते हैं

स्रोत : अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोष का विश्व आर्थिक दृष्टिकोण डेटाबेस (2009-10) एवं आईएमएफ (2010 से 2016 तक)। (माध्यम-12वीं पंचवर्षीय योजना का दृष्टिपत्र)

के दौरान 35 प्रतिशत से बढ़कर लगभग 49 प्रतिशत होने का अनुमान है।

पूर्वानुमानों पर आधारित उपर्युक्त आंकड़े बताते हैं कि भारत दो दशकों में विश्व का तीसरा सर्वाधिक जीडीपी वाला देश बनने की क्षमता रखता है। लेकिन इस क्षमता को प्राप्त करने के लिए लगातार तीव्र विकास सुनिश्चित करना आवश्यक होगा। चीन ने 30 वर्षों तक वास्तविक दृष्टि से लगभग 10 प्रतिशत प्रतिवर्ष का विकास किया है लेकिन अब उसके धीमा पड़ने की उम्मीद है। भारत फिलहाल चीन से पीछे है। लेकिन साक्ष्यों से पता चलता है कि भारत ने अब अगले दो दशकों के दौरान लगातार तीव्र विकास करने की क्षमता विकसित कर ली है। शर्त यह है कि समर्थकारी उपयुक्त नीतियों को सफलतापूर्वक लागू किया जाए। इसमें कोई शक नहीं कि भारत दुनिया की तीसरा सबसे बड़ा जीडीपी वाला देश बनने की क्षमता रखता है और यह भी सच है कि आने वाले समय में भारत चीन को इस मामले में पीछे छोड़ सकता है। लेकिन यह सिर्फ़ आकलनों के जरिये हासिल नहीं होगा बल्कि इसके लिए बहुआयामी प्रतियोगिता से गुज़रना होगा। इसके लिए सुशासन की अनिवार्यता है और भारत का यह पक्ष अभी बहुत कमज़ोर है।

योजना आयोग ने 12वीं पंचवर्षीय योजना में जिस आर्थिक विकासदर को लक्ष्य बनाया है, अगर वह प्राप्त हो जाता है तो इससे अच्छी बात और क्या हो सकती है? 9 प्रतिशत वाले गणितीय आकलन यह सवाल तो उठता ही है कि आखिर यह संभव कैसे होगा? खासकर तब जब भारतीय अर्थव्यवस्था के हांफने का अंदेशा जताया जा रहा हो। इसके कई कारण गिनाए गए हैं जिनमें से पहला यह है कि जब कोई देश पहले के मुक़ाबले अमीर हो जाता है तो वहां अपेक्षाकृत ज्यादा कुशल कर्मचारियों की दरकार बढ़ जाती है। यह काम आसान नहीं होता है क्योंकि कुशल कामगारों की फौज तैयार करने में कई साल लग जाते हैं। वित्तीय प्रणाली को अत्याधुनिक बनाना होगा ताकि निवेश पर बेहतर रिटर्न मिल सके। दरअसल, वैश्विक आर्थिक परिदृश्य निराशाजनक रहने के कारण विदेश से सस्ती पूंजी जुटाना अब संभव नहीं है। इसका मतलब यही है कि भारत सहित कई उभरते देशों की सरकारों को भारी-भरकम ख़र्च के लिए आंतरिक पूंजी पर ही निर्भर रहना पड़ेगा। लेकिन आंतरिक पूंजी के कारण मुद्रास्फीति में बढ़त होगी, जिससे पूरा देश महंगाई से जूझेगा जैसाकि दिख भी रहा है। एक और समस्या यह है कि जो देश पिछले आर्थिक संकट को झेल जाते हैं, उनके लिए दूसरी बार इससे जूझना आसान नहीं होता। वर्तमान समय में उभरते देशों की मुद्राओं की जिस तरह से तेज़ गति से बिकवाली हुई है उससे यह संकेत मिलने लगा है कि आने वाले समय में इन देशों में आर्थिक विकास की रफ़्तार धीमी रहेगी।

किसी भी देश की अर्थव्यवस्था की रीढ़ उसका औद्योगिक क्षेत्र (उद्योग एवं विनिर्माण) होता है। लेकिन भारत के औद्योगिक और निर्यात क्षेत्रों पर गौर करें तो एक निराशाजनक तस्वीर बनती नज़र आ रही है। अमरीका व यूरोपीय देशों में पुनः आई मंदी और चीन द्वारा आक्रामक व्यापार से भारत के निर्यात व्यापार पर संकट की परछाईं दिख रही है। अगर विशेषज्ञों की बात मानें, तो आगे स्थितियां और भी बिगड़ने की संभावनाएं हैं। आज की स्थिति यह है कि हमारा औद्योगिक उत्पादन सूचकांक भी ख़तरे के निशान पर जा पहुंचा है। जुलाई महीने के लिए जारी औद्योगिक उत्पादन सूचकांक (आईपीपी) केवल 3.3 प्रतिशत दर्ज़ किया गया था जबकि पिछले वर्ष जुलाई माह में सूचकांक 9.9 प्रतिशत के स्तर पर था। 2007 के बाद जब दुनियाभर में मंदी का दौर शुरू हुआ था तभी इसका असर भारत में दिखाई देने लगा था, लेकिन उस समय भारत के अर्थशास्त्री प्रधानमंत्री इसे मंदी की मार से सुरक्षित रखने में कामयाब रहे। लेकिन इसके लिए केंद्र सरकार द्वारा औद्योगिक जगत को भारी-भरकम पैकेज़ देना पड़ा था। और इस दौरान भारत में महंगाई बढ़ी। पिछले दो वर्षों से लगातार पेट्रोल, खाद्यान्न व आवश्यक वस्तुओं की क़ीमतें बढ़ रही हैं। इससे चिंतित भारतीय रिज़र्व बैंक ने मौद्रिक व साख नीति के जरिये रेपो दर में लगातार बढ़ोतरी की। पिछले 17 महीनों में रेपो दर 11 बार बढ़ाया गया। सरकार के महंगाई घटाने के इस क़दम ने औद्योगिक क्षेत्र पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है। गौर से देखें तो जुलाई 2010 के बाद से लगातार औद्योगिक उत्पादन में स्थिरता बनी रही। चिंता की बात यह है अर्थव्यवस्था की रीढ़ मानी जान वाली पूंजीगत वस्तुएं, खनन, और गृह निर्माण जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में पिछले साल जुलाई की तुलना में इस साल सूचकांक लगभग एक चौथाई के स्तर पर पहुंच गया है। यह स्थिति तो बाहरी पूंजी को लाने से वंचित रहेगी ही साथ ही श्रम की मांग को कम कर देगी। फिर किस आधार पर सरकार कुशल कामगारों की भारी-भरकम फ़ौज तैयार करने की बात कर सकती है? हालांकि 12वीं पंचवर्षीय योजना के लिए प्रस्तुत दृष्टिपत्र में इन क्षेत्रों का जो लक्ष्य रखा गया है, यदि वह पूरा हो जाता है तो भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए बेहतर संभावनाएं बन सकती हैं, लेकिन यह बहुत हद वैश्विक आर्थिक स्थिति पर निर्भर करेगा। परंतु औद्योगिक क्षेत्र में गिरावट के साथ ही निर्यात क्षेत्र भी गिरावट दर्शा रहा है। वस्तुओं का आयात अब उनके निर्यात के 50 प्रतिशत से भी ज्यादा हो चुका है। कुछ हद तक इसकी भरपाई सेवा क्षेत्र (सूचना प्रौद्योगिकी) के कारोबार के अधिशेष और अनिवासी भारतीयों द्वारा भेजे गए धन से हुई है। फिर भी कुल व्यापार घाटा जीडीपी के 3 फीसदी से अधिक है जो कई दशकों का उच्चतम स्तर है। अगर इस स्तर पर भी विदेशी पूंजी देश में आता रहे तब भी राहत की सांस ली जा सकती है लेकिन मौजूदा वैश्विक हालात आने वाले समय में जोख़िम का संकेत दे रहे हैं। स्वयं दृष्टिपत्र व्यापार कोष के -4.5 (जबकि चालू खाताकोश -2.5) पर रहने की बात कर रहा है। फिर खुशनुमा तस्वीर कैसे बनेगी?

इस दिशा में राजकोषीय घाटे को पाटने की एक और चुनौती होगी। अब अगर राजकोषीय घाटा पाटने के लिए सख़्त क़दम उठाए जाते हैं तो बहुत से व्ययों में कटौतियां संभव हो सकती हैं जिससे अधिक समावेशी विकास की गति कमज़ोर पड़ेगी। दृष्टिपत्र में संपूर्ण 12वीं पंचवर्षीय योजना के दौरान 22,31,461 करोड़ रुपये (चालू मूल्यों पर) का राजकोषीय घाटा होने का अनुमान लगाया गया है जो सघउ के 3.25 प्रतिशत के बराबर होगा। लेकिन ध्यान देने योग्य बात यह है कि वर्ष 2011-12 के बजट अनुमान में राजकोषीय घाटा 4,12,817 करोड़ ₹ के बराबर अर्थात जीडीपी के 4.60 प्रतिशत था जिसके अब जीडीपी के 5 प्रतिशत तक पहुंचने की आशंका जताई जा रही है। औद्योगिक उत्पादन में कमी

आने तथा कंपनियों का मुनाफ़ा कम होने के कारण कर संग्रह में कमी आएगी और सब्सिडी बिल की वृद्धि होगी। उम्मीदों पर सफल होने का एक रास्ता है– राजस्व में इजाफ़ा करना और अर्थव्यवस्था की विकासदर में और तेज़ी लाना। इन दोनों के लिए बड़े पैमाने पर सुधार की आवश्यकता होगी। लेकिन इसके लिए या तो सरकार की इच्छाशक्ति की कमी बाधक बनेगी अथवा उदार लोकतंत्र। एक उपाय और भी है, वह है– सब्सिडी में कमी एवं ख़र्च में कटौती। लेकिन इससे तो और बुरे हालात पैदा हो जाएंगे। सब्सिडी में कमी लाने से क़ीमतों में वृद्धि होगी और ख़र्च में कटौती से सरकार की पसंदीदा योजनाओं को नुक़सान होगा। अब सरकार के पास सिर्फ़ एक ही रास्ता बचेगा और वह होगा ख़र्च में कटौती और विकासदर को धीमा करना। तब क्या 9 या 9.5 प्रतिशत के लक्ष्य संभव होगा?

भारत में वर्तमान में ग़रीबी की जो स्थिति है वह सही अर्थों में समावेशी विकास और 9 प्रतिशत की विकासदर पर एक बड़ा प्रश्नचिह्न है। संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यूएनडीपी) द्वारा जारी की गई मानव विकास रिपोर्ट बताती है कि दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र, यानी भारत में, दुनिया के सबसे ज्यादा ग़रीब रहते हैं। इनकी संख्या वर्तमान में 61 करोड़ हैं, जोकि देश की आधी जनसंख्या से भी ज्यादा है। रिपोर्ट में बहुआयामी ग़रीबी का मूल्यांकन करने के लिए आय के अलावा स्वास्थ्य, शिक्षा और जीवनस्तर को भी तरज़ीह दी गई है। इस सूचकांक के मुताबिक दुनिया के दस सबसे ग़रीब देश तो सब-सहारा अफ्रीका में हैं, लेकिन अगर किसी एक देश में कुल संख्या की बात की जाए तो दुनिया के सबसे ज्यादा ग़रीब दक्षिण एशियाई देशों (भारत, पाकिस्तान और बांग्लादेश) में रहते हैं। यूएनडीपी (भारत) की निदेशक केटलिन वीसेन के मुताबिक, वर्ष 2011 में अब तक के सबसे ज्यादा 187 देशों को श्रेणीबद्ध किया गया जिनमें भारत 134वें पायदान पर रहा जबकि चीन 101वें पायदान पर और पाकिस्तान 145वें पायदान पर रहा है। नार्वे, ऑस्ट्रेलिया और नीदरलैंड सूची में सबसे ऊपर रहे, अमरीका चौथे और जापान 12वें नंबर पर रहा। विश्व बैंक की ताज़ा रिपोर्ट भी यही बताती है कि वर्ष 2015 में भी भारत की 50 करोड़ से ज्यादा जनसंख्या ग़रीबीरेखा के नीचे रहेगी। विश्व बैंक का आकलन बताता है कि वर्ष 2008 में पैदा हुए वैश्विक आर्थिक संकट की वजह से 2009 में 2004 की तुलना में दस करोड़ ज्यादा भारतीय ग़रीब हो गया। इस वजह से भारत में 27.5 प्रतिशत ग़रीब बढ़कर 37.5 प्रतिशत हो गए। भारत के लिए तो सबसे अहम बात यही कि वह यह तय करे कि वास्तव में भारत में ग़रीबों की संख्या है कितनी? तभी वह उसके निवारण का दावा कर सकता है। 12वीं योजना के दृष्टिपत्र में ग़रीबी के सूक्ष्म संदर्भ और सरलीकृत स्थिति दर्शाई गई है जबकि भारत में ग़रीबी का आकलन अत्यधिक जटिल है क्योंकि इसमें एक तरफ वास्तविक संख्या को जानना ज़रूरी है तो दूसरी तरफ क्षेत्रीय असमानता इसे और भी जटिल बना रही है (इस स्थिति को क्रमशः तालिका 2 और 3 में देखा जा सकता है)। वास्तव में भारत में अभी तक ग़रीबों की सही तादाद या ग़रीबी के लिए किसी मानक पर सहमति नहीं बन पाई है। इसका कारण यह रहा कि कुछ ने वर्ष 2004-05 को आधार बनाकर आकलन किया जिसमें लोगों की खपत को आधार बनाया गया। लेकिन सुरेश तेंदुलकर ने इसमें बदलाव किया और इसमें भोजन के साथ-साथ स्वास्थ्य और शिक्षा पर ख़र्च को भी शामिल कर लिया। फलतः संख्या बढ़ गई। ऑक्सफोर्ड पॉवर्टी एंड ह्यूमन डेवलपमेंट इनिशिएटिव ने बहुआयामी ग़रीबी सूचकांक यानी एमपीआई का इस्तेमाल किया और ग़रीबों की संख्या 65 करोड़ आंकी। यही नहीं इसने यह भी बताया कि इन ग़रीबों में से 42 करोड़ लोग बिहार, छत्तीसगढ़, झारखंड, मध्य प्रदेश, ओडिशा, राजस्थान, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल में रहते हैं। यह संख्या 26 अफ्रीकी देशों में रहने वाले ग़रीबों से भी ज्यादा है।

तालिका-2

समिति /अध्ययन समिति या संस्था/व्यक्ति	ग़रीबी
लकड़वाला समिति	26 %
विश्व बैंक	42 %
सुरेश तेंदुलकर समिति	37 %
अर्जुन सेनगुप्ता समिति	77 %
एन.सी. सक्सेना समिति	50 %
एनसीएईआर	48 %
उत्सा पटनायक	80 %

तालिका-3

सर्वाधिक ग़रीबी वाले राज्य

राज्य	ग़रीबी (प्रतिशत में)
राजस्थान	64.2 (7)
मध्य प्रदेश	69.5 (8.5)
उत्तर प्रदेश	55.2 (21.3)
बिहार	81.4 (13.5)
पश्चिम बंगाल	58.3 (8.5)
झारखंड	77 (4.2)
ओडिशा	64 (4.3)
छत्तीसगढ़	71.9 (2.9)

नोट : कोष्ठक में दी गई संख्या पूरी ग़रीबी में योगदान को दर्शाती है।

स्रोत : ऑक्सफोर्ड पॉवर्टी एंड ह्यूमन डेवलपमेंट इनिशिएटिव रिपोर्ट

कुल मिलाकर लंबे समय से इस बात पर मंथन हो रहा है कि भारतीय अर्थव्यवस्था ने 9 या 9.5 प्रतिशत तक विकास की जिस रफ़्तार को पाने का जो हुनर दिखाया है उससे कुछ लोगों को तो लाभ पहुंचा लेकिन विषमता बढ़ गई। ग्रामीण इलाक़ों में कुछ नहीं बदला, वृद्धि से ग़रीबी में कमी नहीं आई बल्कि जहां एक तरफ देश की तीन-चौथाई आबादी अभी भी निर्धन बनी हुई है वहीं दूसरी तरफ ग़रीबों की तादाद कम होने के बजाय बढ़ रही है। ऐसे में अप्रैल से शुरू हो रही बारहवीं पंचवर्षीय योजना में 9 फीसदी विकासदर के लक्ष्य के साथ-साथ 'तीव्र, धारणीय और अधिक समावेशी विकास' को किस नज़रिये से देखा जाए? इसे एक यथार्थ लक्ष्य माना जाए या फिर दिवास्वप्न? दृष्टिपत्र तो कहता है कि इस पुनर्विलोकन से उभरने वाला संदेश यह है कि अर्थव्यवस्था ने बहुत से क्षेत्रों में मज़बूती कायम कर ली है और इसलिए यह तीव्र, धारणीय तथा और अधिक समावेशी विकास प्राप्त करने के लिए तैयार है। अगले पांच वर्षों के लिए 9 प्रतिशत का वृद्धि लक्ष्य महत्वाकांक्षी है, लेकिन यह असंभव नहीं है, यदि हममें जो ज़रूरी है उसे करने की राजनीतिक इच्छाशक्ति है। लेकिन अगर वैश्विक स्थितियां ऐसी ही रहीं और शासन व्यवस्था का ऐसा ही शिथिल रवैया रहा तो 9 प्रतिशत की विकासदर सहित 'और अधिक समावेशी विकास' का लक्ष्य मुश्किल सिद्ध होगा। ❑

(लेखक आर्थिक मामलों के जानकार हैं।
ई-मेलः raheessingh@gmail.com)

कृषि का ऊंचा उठता मुकाम

● वेद प्रकाश अरोड़ा

12वीं पंचवर्षीय योजना 1 अप्रैल, 2012 से आरंभ होकर 31 मार्च, 2017 को समाप्त होगी। इस योजना के दृष्टिपत्र के अंतिम रूप से स्वीकार करने से पहले राष्ट्रीय विकास परिषद ने योजना के लक्ष्यों, चुनौतियों, प्रायोजित कार्यक्रमों, विभिन्न समस्याओं और उनके समाधानों पर विचार-विमर्श किया। इस में अनेक मुद्दों पर सहमति देखने को मिली।

दृष्टिपत्र में व्यक्त किए गए अनुमानों के अनुसार 12वीं पंचवर्षीय योजना की समयावधि के अंत तक योजना निधि में राज्यों का हिस्सा केंद्र की तुलना में अधिक होगा, अगर राज्यों को आवंटित सीएसएस भी शामिल कर लिया जाए। यह महसूस किया गया कि राज्यों को अपने संसाधन बढ़ाकर समस्याओं का समाधान करने का प्रयास करना चाहिए।

समावेशी विकास

प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने राष्ट्रीय विकास परिषद के उद्घाटन भाषण में कहा कि 12वीं योजना के दृष्टिपत्र में त्वरित, समावेशी और सतत विकास का मतलब है सभी वर्गों और हाशिये पर खड़े ग़रीब लोगों का विकास करना। साथ ही समावेशी विकास में ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों के बुनियादी ढांचे में सुधार लाना है। इसमें पूर्वोत्तर के क्षेत्रों और जम्मू-कश्मीर की विशेष ज़रूरतों का भी खास ख्याल रखा गया है। प्रधानमंत्री ने कहा कि हमारे समावेशी विकास के लिए कृषि विकास भी बहुत प्रासंगिक है। दसवीं योजना में यह घटकर 2.2 प्रतिशत वार्षिक रह गया था। ग्यारहवीं योजना में कृषि विकास के 3.5 प्रतिशत तक पहुंचने की आशा है। 12वीं योजना में इसकी विकासदर 4 प्रतिशत तक ले जाने का प्रयास किया जाएगा। तेज़ कृषि विकास के साथ महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी योजना को लागू करने से गांवों में रहने वाले लोगों की आय में काफी बढ़ोतरी हुई है।

प्रधानमंत्री द्वारा व्यक्त विचारों की गूंज पूरे दृष्टिपत्र में शुरू से आखिर तक सुनाई देती है।

नौ प्रतिशत तक विकास

12वीं योजना के दृष्टिपत्र में आर्थिक विकास को वर्तमान ग्यारहवीं योजना के अनुमानित 8.2 प्रतिशत से बढ़ाकर 9 प्रतिशत तक ले जाने के प्रयास पर ज़ोर दिया गया है। दृष्टिपत्र का मूल स्वर है– विकास के क़दम तेज़ी से बढ़ाओ, चाल को बनाए रखो और इसका दायरा भी बढ़ाओ। इसमें 12वीं योजना के प्रमुख लक्ष्य हासिल करने और राह की चुनौतियों को ख़त्म करने के मोटे सिद्धांत भी दिए गए हैं। वैश्विक अर्थव्यवस्था की अनिश्चितताओं और आंतरिक अर्थव्यवस्था की चुनौतियों को देखते हुए दृष्टिपत्र में कहा गया है कि कुछ कठिन निर्णय करने होंगे और रास्ते की बाधाओं और कठिनाइयों को पार करना होगा, तभी 9 प्रतिशत की विकासदर प्राप्त की जा सकेगी। साथ ही इसमें इस तथ्य पर ध्यान दिया गया है कि 9 प्रतिशत विकासदर प्राप्त करने के लिए बुनियादी ढांचा क्षेत्र में भारी निवेश की ज़रूरत होगी। सार्वजनिक निवेश की चाल बढ़ाने और बुनियादी ढांचे में सार्वजनिक और निजी भागीदारी को भी बढ़ाने की आवश्यकता है, ताकि बुनियादी ढांचे की कमियों/कमज़ोरियों को जल्दी दूर किया जा सके।

दृष्टिपत्र में राजकोषीय सुधार की आवश्यकता पर ज़ोर दिया गया है, लेकिन राजकोषीय सुदृढ़ीकरण का परिणाम यह हो सकता है कि योजना के लिए कुल संसाधनों की कमी पड़ जाए। इसकी वजह से प्राथमिकताओं का निर्धारण सावधानी से करना होगा और कुछ प्राथमिकता वाले क्षेत्रों जैसे– स्वास्थ्य, शिक्षा और बुनियादी ढांचे के लिए अन्य क्षेत्रों की तुलना में अधिक राशि जुटानी पड़ जाएगी। इतना ही नहीं, संसाधनों की तंगी की वजह से उपलब्ध संसाधनों के कुशल उपयोग पर अधिक ध्यान केंद्रित करने की ज़रूरत होगी। दृष्टिपत्र में इस संबंध में कई सुझाव दिए गए हैं जैसे– कार्यान्वयन एजेंसियों को काम में अधिक आज़ादी देना और लचीलापन लाना, विभिन्न योजनाओं के लिए संसाधनों में सुसंगति लाना और क्षमता निर्माण, जांच-पड़ताल तथा जवाबदेही पर अधिक ध्यान देना।

दृष्टिपत्र में यह भी सुझाया गया है कि जिन प्रमुख कार्यक्रमों से ग्यारहवीं योजना में समावेशिता को बढ़ावा मिला था, वे 12वीं योजना में भी जारी रहने चाहिए। साथ ही यह

भी ज़रूरी है कि इनके प्रभाव को बढ़ाने के लिए क्रियान्वयन और प्रबंधन पर अधिक ध्यान केंद्रित किया जाए।

कृषि विकासदर

दृष्टिपत्र में इस बात पर ज़ोर दिया गया है कि 12वीं योजना में कृषि क्षेत्र में 4 प्रतिशत के औसत विकास, खाद्यान्नों के उत्पादन में लगभग 2 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि और गैर-खाद्यान्नों, ख़ासकर बागवानी, पशुधन, डेयरी, मुर्गीपालन और मछलीपालन उद्योग की 5 से 6 प्रतिशत की वृद्धिदर पाने के प्रयत्नों में तेज़ी लानी होगी। कृषि में उच्चतर विकास से न सिर्फ़ ग्रामीण आबादी की आय में व्यापक वृद्धि होगी बल्कि मुद्रास्फीति के दबाव को कम करने में भी सहायता मिलेगी। यह दबाव तब बढ़ जाता है जब आंतरिक खाद्य उत्पादन की क्षमता में बढ़ोतरी के बिना विकासदर को बढ़ाने का प्रयास किया जाए।

देश की अर्थव्यवस्था और उसका विकास सकल घरेलू उत्पाद के तीन घटकों– कृषि, सेवा और विनिर्माण तथा उसके बड़े सहोदर उद्योग की गति-प्रगति पर निर्भर करता है। विकासदर में तेज़ी या मंदी इन तीन क्षेत्रों की चाल से गहरी जुड़ी रहती है। इन तीनों की दौड़ में कभी विनिर्माण क्षेत्र बाज़ी मार जाती है, तो कभी कृषि क्षेत्र, तो कभी सेवा क्षेत्र दोनों से आगे निकल जाता है। कभी-कभी उनके क़दमताल और रफ़्तार में हल्की-सी घट-बढ़ भी देखने को मिलती है। जहां तक कृषि क्षेत्र का संबंध है, इस की यात्रा ऊंच-नीच भरी रही है। कृषि उत्पादन मुख्यतया चार बातों पर निर्भर करता है। एक, आकाश में इंद्र देवता के तेवर और ऋतुओं से जुड़ा उसका मिज़ाज। दो, चिलचिलाती धूप और ठिठुरा देने वाली ठंड में कृषि कार्यों में जुटे किसानों की मेहनत-मशक्कत। तीन, कृषि और कृषि-इतर वस्तुओं, विशेषकर कच्चे तेल और डीजल के मूल्यों में उतार-चढ़ाव का असर तथा चार, केंद्र और राज्यों में सरकारों की उर्वरकों, बिजली, पानी, कृषि-ऋणों, न्यूनतम समर्थन मूल्यों, कृषि-निवेश तथा सड़कों जैसे बुनियादी ढांचे से जुड़ी नीतियां।

किसानी

कॉरपोरेट क्षेत्र और उद्योगों के तेज़ विस्तार के बावजूद हमारा देश आज भी कृषि प्रधान है। देश की लगभग आधी जनसंख्या अपनी आजीविका के लिए या तो पूरी तरह या फिर बहुत हद तक किसी न किसी किसानी कार्य पर निर्भर करती है। ये विविध कार्य या तो कृषि फ़सलें उगाने, बागवानी, पशुपालन या फिर मछलीपालन जैसे कृषि से जुड़े व्यवसाय के रूप में होते हैं। बुनियादी ढांचे और मानव विकास का स्तर कम होने तथा विषमताओं और अनिश्चितताओं से भरे माहौल के कारण ग्रामीण भारत अपनी कल की दुनिया में बदलाव लाए जाने को कभी आशा से तो कभी चिंता से देखता है। जो हो, कृषि क्षेत्र में आय के अवसरों में विस्तार ग़रीबी कम करने का सबसे बड़ा और सशक्त माध्यम है। इतना ही नहीं, देहाती इलाक़ों में कृषि-इतर क्षेत्र से आमदनी की बहुत संभावनाएं रहती है क्योंकि इसका काफी हिस्सा कृषि गतिविधियों से जुड़ा रहता है। इनमें फ़सल कटाई के बाद के कई काम और कृषि उपकरणों के रखरखाव की अनेक क्रियाएं शामिल होती हैं। इस तरह कृषि से जुड़े आर्थिक कार्यों के विस्तार का ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि-इतर कार्यों से होने वाली आमदनी के साथ जुड़ जाने का एक चक्र-सा चलने लगता है।

खाद्यान्नों का उत्पादन

ग्यारहवीं योजना में कृषि विकास की रफ़्तार में उस कमियों को दूर करने का प्रयास किया गया है जो नौवीं योजना में देखने को मिलीं। गिरावट का यह दौर दसवीं योजना के दौरान भी जारी रहा। लेकिन वक़्त ने करवट ली और कृषि खिलाड़ियों की दिन-रात की मेहनत रंग लाई। 2010-11 में खाद्यान्नों का उत्पादन 24 करोड़ 16 लाख टन के शिखर तक पहुंच गया। गेहूं के साथ-साथ दलहनों, तिलहनों और कपास के उत्पादन में भी कीर्तिमान स्थापित किए गए हैं। 2010-11 की अंतिम तिमाही में तो कृषि का कुल उत्पादन 7.5 प्रतिशत की प्रभावशाली विकासदर से हुआ। परिणाम यह हुआ कि इस वर्ष का सकल घरेलू उत्पाद बढ़कर 6.6 प्रतिशत हुआ। साथ ही वर्तमान योजना में कृषि की विकास दर 3.2 प्रतिशत हो गई। यह सब तब संभव हुआ जब इससे कुछ ही पहले सूखे, बेमौसमी बरसात, भीषण बाढ़ और पाले जैसे प्रतिकूल मौसम की मार झेलनी पड़ी थी। दसवीं योजना के दौरान तो कृषि की वृद्धिदर घटकर 2.2 प्रतिशत रह गई। अब 12वीं योजना के दौरान अधिक नहीं तो कम से कम चार प्रतिशत की विकासदर सुनिश्चित करने के लिए हमें अपने प्रयास दोगुनी रफ़्तार और पूरे उत्साह से करने की ज़रूरत है। हालांकि इधर कुछ वर्षों से ग्रामीण आय बढ़ गई है और गांवों में ग़रीबी घटी है। लेकिन शहरी और देहाती लोगों की आय में अंतर काफी बढ़ गया है। कारण यह है कि कृषि का विस्तार अन्य क्षेत्रों की तुलना में धीमी गति से हुआ है और गैर-कृषि क्षेत्र में रोज़गार के अवसर इतने नहीं बढ़े हैं कि कृषि पर आबादी की निर्भरता कम हो जाए। हरित क्रांति के उत्पादकता लाभ पर आठवीं योजना के अंत तक एक तरह से विराम-सा लग गया था। परिणाम यह हुआ कि उसके बाद प्रतिव्यक्ति अनाज उत्पादन घट गया। कृषि का बागवानी, पशुपालन और गैर-खाद्य फ़सलों के क्षेत्र में विस्तार तो हुआ लेकिन 1997-1998 से 2004-2005 के दौरान स्वयं कृषि के सघउ में औसत से सिर्फ़ 1.9 प्रतिशत की वृद्धि ही हुई। कृषि से आय वृद्धिदर तो और भी घट गई क्योंकि इस अवधि में व्यापार शर्तें कृषि के प्रतिकूल थीं। यह सब कुछ अपर्याप्त मांग और ग्रामीणों की क्रय शक्ति में कमी का सूचक था। कृषि आय की तुलना में कृषि कर्ज़ बढ़ जाने से आशा की किरण धूमिल पड़ने लगी। इसकी परिणति किसानों की आत्महत्याओं की संख्या में वृद्धि के रूप में देखने को मिली।

वर्षा सिंचित क्षेत्र

देश में खासकर वर्षापोषित क्षेत्रों में कृषि संकट की पुष्टि, 2003 में राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण द्वारा किए गए किसानों के स्थिति के आकलन से और 2004 में दसवीं योजना की मध्यावधि मूल्यांकन से भी हो गई। राष्ट्रीय विकास परिषद ने 2005 में कृषि की स्थिति पर विचार के लिए एक उपसमिति बनाई तथा राष्ट्रीय किसान आयोग और योजना आयोग ने जो सूचना सामग्री दी उसके आधार पर ग्यारहवीं योजना बनाई गई। राष्ट्रीय विकास परिषद ने पहली बार 2007 में अकेले कृषि क्षेत्र पर विचार के लिए विशेष बैठक बुलाई। इसमें इस क्षेत्र के लिए ग्यारहवीं योजना की कार्यनीति पर विचार किया गया और इस विषय पर प्रस्ताव पारित किया गया। इस विचार-विमर्श से यह तथ्य उभरकर सामने आया कि प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव तथा

ग्रामीण बुनियादी ढांचे के अभाव के अलावा, कमज़ोर प्रौद्योगिकी, कर्ज़ के लिए रुपये-पैसे की उपलब्धता में देरी तथा विस्तार और विपणन सेवाओं में ढीलापन साफ़ दिखाई देता है।

इन कमियों को दूर करने के लिए, ग्यारहवीं योजना से पहले ही ग्रामीण बुनियादी ढांचे को मज़बूत बनाने के उद्देश्य से महत्वाकांक्षी भारत निर्माण कार्यक्रम आरंभ कर दिया गया। राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी कार्यक्रम 2 फरवरी, 2006 को आरंभ किया गया। इसके जरिये रोज़गार सुरक्षा का भूमि और जल संरक्षण के साथ तालमेल बिठाया गया है। पिछड़ा क्षेत्र अनुदान कोष से अत्यंत ग़रीब क्षेत्रों में पंचायती राज संस्थाओं को अपनी योजनाएं स्वयं बनाने के लिए आर्थिक सहायता का विस्तार किया गया। साथ ही कृषि के लिए योजना राशि बढ़ा दी गई। इन कार्यक्रमों का क्षेत्र बढ़ाने और विभिन्न कार्यदलों द्वारा सुझाए गए संशोधनों और सुधारों को लागू करने के लिए ग्यारहवीं योजना के अंतर्गत राष्ट्रीय कृषि विकास योजना शुरू की गई।

खाद्य सुरक्षा

गत वर्षों में अंतरराष्ट्रीय वार्ताओं में खाद्य सुरक्षा के मामलों पर प्रमुखता से विचार-विमर्श हुआ है। इस संदर्भ में कभी-कभी यह प्रश्न पूछा जाता है कि क्या भारत अपने खाने की ज़रूरत स्वयं पूरी कर सकेगा या फिर खाद्य आयातों पर निर्भर करेगा? 1990 के बाद अधिकतर वर्षों में हम अनाजों का निर्यात करते रहे हैं। 2010-11 में तो भारत ने 50 लाख टन से अधिक अनाज का निर्यात किया। इसमें 20 लाख टन बासमती चावल और तीस लाख टन मक्का था। विदेशों से आयात किए बिना आंतरिक उत्पादन से देश की अनाज की मांग पूरी की जा सकती है। देश में उत्पादकता बढ़ाने की काफी क्षमता है, अभी तो हमने इसका पूरा इस्तेमाल तक नहीं किया है।

जहां तक उत्पादों की आपूर्ति का संबंध है, इसके लिए कई मोर्चो पर कार्रवाई की ज़रूरत है। यह कार्रवाई भी एक कृषि जलवायु क्षेत्र में दूसरे जलवायु क्षेत्र से अलग हो सकती है। इसके कुछ महत्वपूर्ण पहलू इस प्रकार हैं:

जल प्रबंधन

पहला और शायद सबसे महत्वपूर्ण घटक जल प्रबंधन है। इसमें विविध संकल्प, समस्याएं, उनका समाधान तथा उद्देश्य शामिल है, जो इस प्रकार हैं:

- जल प्रयोक्ता संस्थाओं जैसे– पानी पंचायतों और पंचायती राज आधारित संस्थाओं के जरिये जल प्रबंधन में सुधार करना।
- कमांड क्षेत्र विकास पर ध्यान केंद्रित करना और मौजूदा बड़ी सिंचाई प्रणालियों को सुधारना तथा आधुनिक बनाना।
- भूमि जल की फिर से व्यापक भराई करना और चट्टानों में इकट्ठा हुए पानी के नक्शे तैयार करना।
- छिड़काव और टपक सिंचाई की ओर अग्रसर होना और बाढ़ के पानी की सिंचाई से बचना।
- मौजूदा 42 प्रतिशत कृषि योग्य भूमि से अधिक क्षेत्र में सिंचाई सुनिश्चित करना।
- पीने के पानी के संसाधनों को बढ़ाना।

इन कामों को मिलाकर संयुक्त कार्रवाई अलग-अलग क्षेत्र में अलग-अलग हो सकती है।

मृदा पोषण एवं प्रबंधन

जिस दूसरी बड़ी चीज़ की ज़रूरत है, वह है मिट्टी का उपजाऊपन और प्रबंधन। मिट्टी प्राकृतिक संसाधन है। छोटे-छोटे लाखों-करोड़ों जीव जैव-पदार्थों से भरपूर स्वस्थ मिट्टी में रहते हैं। इसलिए कृत्रिम उर्वरकों का अंधाधुंध प्रयोग प्राकृतिक मृदा और उसके पोषक जीव समूहों के लिए अत्यंत हानिकारक होता है। इसके बावजूद इन रासायनिक खादों पर अत्यधिक सब्सिडी दी जाती है। पिछले तीन दशकों में सब्सिडी की मात्रा में भारी वृद्धि हुई है। 1976-77 में मात्र 60 करोड़ ₹ की सब्सिडी दी गई। 2009-10 में इस राशि में भारी वृद्धि कर 61,264 करोड़ ₹ सब्सिडी के रूप में दिए गए। भारी सब्सिडी देने से मिट्टी के पोषण में असंतुलन पैदा हो गया है, जो देश के बहुत से भागों में मिट्टी की उपजाऊ शक्ति के ह्रास का बड़ा कारण बन गया है। इन उर्वरकों के सही प्रयोग के लिए ज़रूरी है कि उन्हें वहीं काम में लाया जाए जहां पानी अधिक मात्रा में उपलब्ध हो। पानी के अभाव वाले इलाक़ों में मिट्टी का उपजाऊपन बढ़ाने के लिए अन्य विकल्पों को काम में लाने में कोताही नहीं की जानी चाहिए। जैविक खादों के प्रयोग से रासायनिक खादों पर निर्भरता क्रमिक रूप से कम होगी।

रासायनिक खादों का कुशल प्रयोग

तेज़ और घनी खेती के लिए रासायनिक खादों के प्रयोग की ज़रूरत बनी रहेगी। जो भी नीति बनाई जाए, उसके अंतर्गत मृदा की स्थिति और विशिष्ट फ़सल के अनुकूल उपयुक्त मिश्रित खाद के प्रयोग को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। सामान्य सब्सिडी प्रणाली के स्थान पर पोषक तत्वों पर आधारित सब्सिडी देना और फुटकर मूल्यों के नियमन पर से अंकुश हटाना बहुत ज़रूरी है। इसके अलावा मृदा के उर्वरता-प्रबंधन के सबसे अच्छे तरीक़े अपना कर वर्तमान नीति को सुधारना होगा। जैव उर्वरकों को प्रादेशिक स्तर पर तैयार करना और उसके प्रयोग को प्रोत्साहित करना होगा। एक ही फ़सल उगाने के बजाय कई फ़सलों को बदल-बदल कर उगाने की प्रक्रिया को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। इससे मिट्टी की किस्म और गुणवत्ता में सुधार होता है। अनुसंधानों द्वारा उत्पादन-तकनीकों को नये-नये सुधारों से उन्नत बनाना होगा। इसके लिए ज़रूरी है कि अनुसंधान और विकास कार्यों पर व्यय सघउ के वर्तमान लगभग 0.6 से बढ़ाकर कम से कम एक प्रतिशत कर दिया जाए। एक और बात, कृषि प्रौद्योगिकी प्रबंधन एजेंसी के जरिये जिला स्तर पर तकनीकी ज्ञान का प्रसार रंग लाएगा।

वर्षा सिंचित कृषि

देश का 62 प्रतिशत क्षेत्र वर्षा सिंचित कृषि की श्रेणी में आता है। इस क्षेत्र की उत्पादकता में गिरावट आई है जिससे व्यापक इलाकों में लोगों को कष्ट झेलने पड़ रहे हैं। कम उत्पादकता के बावजूद वर्षा सिंचित कृषि का योगदान कम नहीं है। यह क्षेत्र कुल फ़सल वाले इलाक़े का 56 प्रतिशत तथा खाद्य फ़सलों वाले इलाक़े का 48 प्रतिशत और गैर खाद्य फ़सलों वाले क्षेत्र का 68 प्रतिशत है। फ़सली समूह में 77 प्रतिशत दालें, 66 प्रतिशत तिलहन और 45 प्रतिशत अनाज वर्षा सिंचित क्षेत्र में होते हैं। वर्षा सिंचित कृषि क्षेत्र को जानदार बनाने के लिए व्यापक नीतिगत पैकेज़ की ज़रूरत पड़ेगी। फ़सल उत्पादकता बढ़ाने और बाज़ार संपर्कों को मज़बूत बनाने के लिए वर्षा सिंचित क्षेत्रों में 60,000 दलहन गांवों को प्रोत्साहित करने के लिए 300 करोड़ रुपये की राशि उपलब्ध कराई गई है। भविष्य

में बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए अनाजों की अतिरिक्त आपूर्ति का 40 प्रतिशत हिस्सा कृषि के इसी वर्षा सिंचित भू-खंड से प्राप्त होगा।

इस संदर्भ में यह नहीं भूलना चाहिए कि पानी के अधिक प्रयोग से हरित क्रांति का मॉडल, मशीनीकरण के विस्तार से भी उत्पादकता में वृद्धि नहीं कर पाएगा। इसलिए वर्षा सिंचित कृषि में नया प्राण फूंकने के लिए व्यापक नीतिगत पैकेज़ की ज़रूरत पड़ेगी, जो अनेक बातों के सम्मिश्रण से बनाया जाएगा। इसके लिए भारी निवेश और नीतिगत समर्थन की ज़रूरत पड़ेगी।

दृष्टिपत्र में कहा गया है कि बाजरे के उत्पादन और खपत को बढ़ावा दिया जाना चाहिए क्योंकि यह पोषण का अच्छा स्रोत है और देश के बहुत से हिस्सों में विभिन्न समुदायों का परंपरागत आहार रहा है।

बीजों का महत्व

जहां तक बीजों का संबंध है, ये कृषि के लिए बहुत महत्व रखते हैं। लेकिन अच्छी-खासी उत्पादन क्षमता वाले प्रमाणित बढ़िया बीजों का समय पर मिलना एक बड़ी समस्या है। 80 प्रतिशत किसान खेतों से बीने गए बीजों पर निर्भर करते हैं। इसलिए ज़रूरी है कि संबद्ध संस्थाएं निश्चित समय पर प्रमाणित बीज उपलब्ध कराएं। लंबे समय तक सूखा पड़ने और बीजों के ख़राब होने के दुष्परिणामों से बचने के लिए बीज बचाकर रखना ज़रूरी है। बीज बैंकों और बीज गांवों की स्थापना, वर्षा सिंचित खेतों के लिए निहायत ज़रूरी है। कृषि के सुचारू उत्पादन कार्यों के लिए रासायनिक कीटनाशकों का प्रयोग भी ज़रूरी होता है। देश में इनका प्रयोग 1954 में 154 टन से बढ़कर 2008 में लगभग 90 हज़ार टन हो गया है। लेकिन कीटनाशकों का लगातार अधिक प्रयोग भी कृषि कार्यों के लिए हानिकर बन जाता है। इससे बचने के लिए कईऐसे जैव कीटनाशक तैयार किए गए हैं जो फ़सलों के प्रबंधन में लाभकारी होते हैं। इनके प्रयोग से खेतों में उत्पादन लागत भी घट जाती है।

भूमि सुधार

भूमि की मिल्कीयत के बारे में अधिकतम सीमा से संबद्ध कानून का उतना प्रभाव नहीं पड़ा, जितना सोचा गया था। क्योंकि सरप्लस घोषित भूमि का बंटवारा कानूनी झगड़ों के कारण नहीं हो सका। अनेक मामलों में लाभार्थियों के पास ज़मीन के पट्टे न होने, कई बेनामी सौदे होने तथा ज़मीन पर अधिकार के मामलों के कारण इस कानून का लाभ नहीं मिला है। इन विवादित मामलों को निपटाने के लिए रचनात्मक क़दम उठाने होंगे। इसके अलावा पट्टेदारी कानून पर नये सिरे से विचार करना आवश्यक है, ताकि छोटे किसान अपनी ज़मीन दूसरों को पट्टे पर दे सकें। समाधान इस प्रकार का होना चाहिए कि मूल भू-स्वामी के संपत्ति अधिकारों पर कोई आंच न आए। दृष्टिपत्र में विशेष रूप से निर्धन ग्रामीणों की आय बढ़ाने के लिए डेयरी व्यवसाय और पशुधन विकास की ज़ोरदार वकालत करते हुए छोटे, ग़रीब और सीमांत किसानों के हितों की रक्षा के लिए भी आवाज़ बुलंद की गई है। पत्र में कहा गया है कि कई बार भरपूर फ़सल होने के बावजूद इन किसानों के पास इतना पैसा नहीं होता कि उत्पादों को बेचने के लिए मंडियों में ले जा सकें। इस तरह किसानों को भरपूर फ़सल वाले वर्षों में भी उचित मूल्य न मिलने पर कष्ट झेलने पड़ते हैं।

छोटे किसानों का बाज़ार से सरोकार

छोटे और सीमांत किसानों की संख्या कुल किसान परिवारों का 80 प्रतिशत से अधिक है। बाज़ारों में बेचने के लिए उनके पास उत्पादों की बहुत कम मात्रा होती है। दूसरे बहुत ग़रीब होने के कारण उनके पास इन उत्पादों को अपने घरों में रखने की क्षमता बहुत कम होती है। नतीज़ा यह होता है कि वे अपनी फ़सल का अधिकांश फ़सल कटाई के तुरंत बाद स्थानीय बाज़ारों में बहुत कम क़ीमत पर बेचने पर मज़बूर होते हैं। मतलब यह कि भरपूर फ़सल होने पर भी उन्हें कष्ट झेलने पड़ते हैं। स्वयं सहायता समूह आंदोलन के ज़ोर पकड़ने और इन स्वयं सहायता समूहों की संख्या बढ़ने पर फ़सल को इकट्ठा करने और इकट्ठा ही बेचने के विकल्प खुल रहे हैं। बैंक भी भंडारण रसीद देकर किसानों के माल को स्थानीय गोदामों में जमा करने में सहायता कर सकते हैं। इस तरह मूल्य बढ़ने पर सामान बेचकर इन किसानों की सहायता की जा सकती है।

फ़सल बीमा

छोटे और ग़रीब किसानों में बाढ़, ओला, सूखा जैसी प्राकृतिक आपदाओं का सामना करने की ताक़त नहीं होती। मौसम की बेरुखी के कारण कभी-कभी उन्हें भारी तबाही का सामना करना पड़ता है। इन ग़रीब किसानों को फ़सल बीमा से इन ज़ोखिमों से छुटकारा पाने में सहायता मिल जाती है। लेकिन अभी 10 प्रतिशत से भी कम किसान फ़सल बीमा का लाभ उठा रहे हैं। इस संख्या के कम होने का कारण है वर्तमान फ़सल बीमा योजना की खामियां। जैसे– दावों को निपटाने में देरी, सब्सिडी में कमी, जागरुकता का अभाव और क्रियान्वयन की खामियां। अब इन त्रुटियों को दूर कर नयी राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना शुरू की गई है।

बाज़ारों तक पहुंच

सड़क संपर्क, बागवानी, डेयरी तथा पशुपालन व्यवसाय और नकदी फ़सलों में वृद्धि ये सब कृषि क्षेत्र की बाज़ार में अधिक पहुंच में सहायक होते हैं। बीजों की बरबादी और मध्यवर्ती ख़र्चे कम करने के लिए उन्नत शीत-भंडारण की ज़रूरत होगी। उत्पादों के समुचित भंडारण से उनके मूल्यों के उतार-चढ़ाव पर विराम लगेगा। इस सुविधा के लिए कृषि उत्पादों की ढुलाई के लिए परिवहन सुविधाओं को आधुनिक बनाना होगा।

इन उपायों का परिणाम यह होगा कि गुणवत्ता, मात्रा, विविधता और क्षेत्र की दृष्टि से अनाज के उत्पादन में भारी वृद्धि होगी। साथ ही हमारे लिए यह क़दम भी विवेक सम्मत होगा कि हम खाद्य उत्पादन में न सिर्फ़ आत्मनिर्भर हों, बल्कि आवश्यकता से अधिक उत्पादन करें। बारहवीं योजना के दौरान अनाजों के उत्पादन में 1.8 से 2 प्रतिशत, चावल के उत्पादन में लगभग 2 प्रतिशत और दालों में लगभग 4 प्रतिशत के उत्पादन का अनुमान लगाया गया है। इस तरह कुल मिलाकर अनाज का उत्पादन 2 प्रतिशत या कुछ अधिक होने की अपेक्षा है। बागवानी और पशुपालन क्षेत्र के उत्पाद 4.5 से 5 प्रतिशत होने की उम्मीद है। तिलहन का उत्पादन 2.5 प्रतिशत से अधिक होने की अपेक्षा है। इस तरह कह सकते हैं, कि कृषि के उत्पादन में कुल मिलाकर 4 से 4.5 प्रतिशत के बीच वृद्धि होगी। ❑

(लेखक वरिष्ठ पत्रकार हैं)

निर्माण IAS

Give the best ... Take the best

by **कमल देव (K.D.)** | सफलता का पर्याय

Why Nirman IAS is the Best ?

सफलता का सफर

CSE - 07
SAROJ KUMAR
RANK 22

CSE - 08
BHANU CHAND
RANK 33

CSE - 09
JAI PRAKASH
RANK 9

BPSC 48-52
SADANAND KUMAR
RANK 2

UTTRAKHAND PCS
ARVIND PANDEY
RANK 1

निरन्तर सर्वाधिक परिणाम देने वाला संस्थान

Target..... 20 May, 2012

सा.अध्ययन

प्रारंभिक परीक्षा Special Batch - 10 जनवरी

प्रथम बैच - 9.00 AM

द्वितीय बैच - 5.30 PM

CSAT

नियमित टेस्ट के साथ

नया दौर, नई चुनौती..... सफलता उसे ही मिलेगी जो सही दिशा में मेहनत करेगा

HEAD OFFICE 12, Mall Road, Hudson Lane, Kingsway Camp, Delhi-9

CLASS ROOM 624, IInd Floor, Mukherjee Nagar (Near Aggarwal Sweet) Delhi-9

पत्राचार कार्यक्रम उपलब्ध (9990765484)

Ph. : 011-47058219, 9990765484, 9891327521

YH-244/2011

खाद्य सुरक्षा के लिए मज़बूत पीडीएस

● अमरेन्द्र कुमार राय

आज़ादी के वक्त देश के सामने कई समस्याएं थीं। रोटी-कपड़ा और मकान की बुनियादी समस्याओं के साथ ही शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवहन और दूसरी अन्य समस्याएं भी मुंह बाए खड़ी थीं। इन चुनौतियों से निपटना आसान भी नहीं था। लेकिन इनसे निपटना भी ज़रूरी था। इसके लिए प्राथमिकता के आधार पर चीज़ें तय की गईं और उन्हें पूरा करने के लिए समयबद्ध कार्यक्रम बनाए गए। इसी कड़ी में पंचवर्षीय योजना शुरू की गई। अब तक 11 पंचवर्षीय योजनाएं बनाई जा चुकी हैं और अब 12वीं शुरू की जाने वाली है।

आज़ादी के बाद के 64 सालों में हमने तरक़्की भी खूब की है। देश के बड़े शहरों में तो इसका आभास होता ही है, दूर-दराज़ के इलाक़ों में तो ये सफलताएं किसी चमत्कार से कम नहीं लगतीं। अगर आप पहाड़ी इलाक़ों में जाएं तो जिन चोटियों पर कभी पहुंचने की कल्पना नहीं की जा सकती थी, वहां घुमावदार सड़कें बन चुकी हैं, गाड़ियां पहुंच रही हैं। इतना ही नहीं, वहां लोग रह रहे हैं और बिजली-पानी की व्यवस्था भी अच्छी है। रात में वहां बिजली के बल्ब वैसे ही चमकते हैं जैसे आसमान में तारे। सचमुच ये सब काम आसमान से तारे तोड़ने जैसा ही है।

लेकिन बावजूद इसके हमें और भी ज्यादा काम करने की ज़रूरत है। हमने एक के बाद एक ग्यारह पंचवर्षीय योजनाएं बनाईं और उन पर अमल किया है। लेकिन समस्याओं पर काबू नहीं पा सके हैं। अभी तक हम मनुष्य की बुनियादी समस्या को भी सही ढंग से नहीं सुलझा सके हैं। वह समस्या है– रोटी। अभी भी देश की पूरी जनता को भरपेट पौष्टिक भोजन नहीं मिल पाता। आज़ादी के वक़्त तो यह समस्या बहुत ज़्यादा गंभीर थी। लोगों का पेट भरने के लिए विदेशों से अनाज़ आयात करना पड़ता था। सभी लोगों को अनाज़ मिल सके इसके लिए सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पीडीएस) विकसित की गई। पीडीएस विकसित करने का सिर्फ़ इतना ही मक़सद नहीं था कि खाद्यान्न या दूसरी ज़रूरी चीज़ों का वितरण निष्पक्ष और सही ढंग से हो सके बल्कि उसका मक़सद यह भी था कि जो ग़रीब हैं, जिनके पास खाद्यान्न ख़रीदने के लिए कम पैसे हैं, उन्हें भी ये चीज़ें कम पैसे में ही मिल सकें।

इसके लिए सबसे पहली कोशिश होनी थी खाद्यान्न उत्पादन बढ़ाने के मोर्चे पर। इसमें हम काफी हद तक सफल रहे। देश में हरित क्रांति हुई। अनाज़ का उत्पादन कई गुना बढ़ा लिया गया। पहले जहां लोगों का पेट भरने के लिए अनाज़ बाहर से आयात करना पड़ता था वहीं अब हम निर्यात करने की स्थिति में आ पहुंचे हैं। अब हम खाद्यान्न का रिकॉर्ड उत्पादन तो कर ही रहे हैं, दुग्ध उत्पादन के क्षेत्र में भी रिकॉर्ड कायम कर चुके हैं। हम दस करोड़ टन से ज़्यादा दुग्ध उत्पादन कर रहे हैं।

इस कामयाबी के बावजूद हमारी समस्याएं कम नहीं हुई हैं। बल्कि हमारी चिंताएं और बढ़ गई हैं। इसकी दो प्रमुख वज़हें हैं। एक बढ़ती आबादी और दूसरी हाल के वर्षों में कृषि क्षेत्र का लचर प्रदर्शन। अभी तक तो हमारे पास पर्याप्त खाद्यान्न है लेकिन जिस तरह से हमारी आबादी बढ़ रही है उसके अनुरूप खाद्यान्न का उत्पादन नहीं बढ़ रहा, इससे हमारी चिंताएं बढ़ गई हैं कि कहीं हमें फिर से विदेशों से खाद्यान्न आयात न करना पड़ जाए। 2008-09 में कृषि उत्पादकता में महज़ 1.6 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज़ की गई। पिछले साल तो यह वृद्धिदर और भी घट गई। संयुक्त राष्ट्र संघ की सहयोगी संस्था खाद्य और कृषि संगठन बार-बार आगाह कर रही है कि भारत में अगर खेती का यही हाल रहा तो 2017 तक खाद्यान्न मामलों में स्थितियां प्रतिकूल हो सकती हैं। दुनियाभर में हो रहे जलवायु परिवर्तन का भी भारतीय खेती पर बुरा असर पड़ सकता है। एक विशेषज्ञ समिति की रिपोर्ट में बताया गया है कि औसत तापमान में प्रति डिग्री बढ़त से भारत में गेहूं की उपज में प्रतिवर्ष 60 लाख टन की कमी हो जाएगी। इसी तरह से दूसरी पैदावारों में भी गिरावट आ सकती है।

इन हालातों को देखते हुए खाद्यान्न सुरक्षा को लेकर चिंतित होना स्वाभाविक है। क्योंकि जिस दिन अर्थतंत्र को खाद्यानों का आयात करना पड़ेगा उस दिन देश की जड़ें हिल जाएंगी। सरकार ने दूसरी हरित क्रांति की योजना बनाई है। वर्ष 2007 में 1,882 करोड़ ₹ की लागत से राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन आया। सरकार खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए समय-समय पर प्रयास करती रही है। उसकी कोशिश यही रहती है कि खाद्यान्नों का इतना उत्पादन कर दिया जाए कि देश में इसकी कमी न हो। इसी शृंखला में राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन आया। 2008-09 के लिए इस मिशन के तहत 993 करोड़ रुपये प्रदान किए गए। इस योजना के माध्यम से 2011-12 तक दस लाख टन चावल, आठ लाख टन गेहूं और 2 लाख टन धान का उत्पादन बढ़ाया जाएगा। प्राथमिक तौर पर धान के लिए 134 ज़िले, गेहूं के लिए 138 ज़िले और दलहन के लिए 168 ज़िलों का चयन किया गया है। इसके लिए खेती प्रशिक्षण कार्यक्रम भी संचालित किए गए हैं।

चावल के प्रत्येक 100 हेक्टेयर क्षेत्र तथा गेहूं के 50 हेक्टेयर क्षेत्र पर एक प्रशिक्षण संचालित किया गया है। साथ ही बीज, उर्वरक, पौध सुरक्षा, रसायन तथा अन्य ख़र्चों को पूरा करने के लिए प्रत्येक प्रशिक्षण में कुछ धनराशि भी दी गई। चावल के प्रशिक्षण में ढाई हज़ार रुपये और गेहूं के प्रशिक्षण में दो हज़ार रुपये की सहायता प्रदान की गई। इतना ही नहीं, धान में सघनता प्रणाली विकासशील

किसानों के खेतों पर प्रदर्शित की गई और संबंधित संस्थानों द्वारा इसके लिए तीन हज़ार ₹ की सहायता की गई। यही नहीं प्रमाणित बीज हेतु बीज उत्पादन कंपनियों ने बीज उत्पादन एजेंसियों को संकर धान पर प्रति क्विंटल हज़ार रुपये भी दिए। इसके साथ ही संकर धान का प्रमाणित बीज भी वितरित किया गया। किसानों को फ़सलों के उत्पादन और संरक्षण का प्रशिक्षण भी दिया गया।

2007 से 2012 तक की ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में प्रतिशत वाली वृद्धिदर हासिल करने के लिए राष्ट्रीय कृषि विकास योजना शुरू की गई थी। इस दिशा में कई महत्वपूर्ण प्रयास हुए और सफलताएं भी हासिल हुईं। इसी दिशा में 2009 में सकल घरेलू उत्पादन के 3.5 फीसदी तक विशेष राहत पैकेज़ भी दिया गया ताकि विकासदर को निर्धारित लक्ष्य तक हासिल करने में कुछ हद तक मदद मिले।

खाद्यान्नों का उत्पादन बढ़ाने के साथ ही हमें अपने सार्वजनिक वितरण प्रणाली को भी मज़बूत बनाना होगा, तभी हम सभी को खाने के लिए अनाज़ मुहैया करा सकेंगे। क्योंकि हमने यह भी देखा है कि एक तरफ अनाज़ भंडारों में सड़ रहे होते हैं और दूसरी तरफ लोग भूखे मर रहे होते हैं। क्योंकि अनाज़ ख़रीदकर खाने की क्षमता उनमें नहीं होती। आजकल जिस तरह से महंगाई बढ़ी है उसमें तो बेहतर सार्वजनिक वितरण प्रणाली और भी ज़्यादा ज़रूरी हो गई है। महंगाई ने दालों को आम लोगों के भोजन से अलग कर दिया है। 35 ₹ किलो चीनी और 40 ₹ किलो दूध ख़रीदने की क्षमता भी काफी कम लोगों में रह गई है। चाय के आदी ज़्यादातर लोग बिना चीनी और दूध के चाय पीने लगे हैं जबकि वे मधुमेह के मरीज़ भी नहीं हैं। महंगी सब्ज़ियों में से भी वे छांट-छांट कर सस्ती सब्ज़ियों के सहारे रोटी खा रहे हैं। देश की 120 करोड़ की आबादी में से क़रीब 65 करोड़ लोगों का यही हाल है। उन्हें पौष्टिक और ज़रूरी आहार नहीं मिल रहा। ऐसे में सार्वजनिक वितरण प्रणाली को मज़बूत बनाना और भी ज़रूरी हो गया है। अभी तक केरल और तमिलनाडु जैसे कुछ राज्यों को छोड़कर ज़्यादातर राज्यों में जनवितरण प्रणाली की दुकानें भ्रष्टाचार और अनिश्चितताओं की शिकार हैं। बहुत से ग़रीबों के पास अभी तक लालकार्ड नहीं है और है भी तो उन्हें राशन नहीं मिलता।

दुनिया का सबसे सस्ता राशन प्रदान करने का नेटवर्क हमारे पास है। देश में क़रीब 5 लाख सस्ते गल्ले की दुकानें काम कर रही हैं। लेकिन इन दुकानों में भ्रष्टाचार बहुत है। नेता, अफसर, ठेकेदार, दुकानदार और बाबू सब भ्रष्टाचार की बहती गंगा में अपना हाथ धो रहे हैं।

राशनकार्ड के ज़रिये ग़रीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करने वालों को सस्ता राशन मुहैया कराया जाता है। इसके तहत गेहूं, चावल, चीनी और मिट्टी का तेल सस्ती दरों पर उपलब्ध कराया जाता है। केंद्र सरकार हर साल सब्सिडी के तौर पर इस पर करोड़ों रुपये ख़र्च करती है। 2006 में इस मद में 23,827 करोड़ ₹ ख़र्च किए गए जोकि 2010 में बढ़कर 58,242 करोड़ ₹ हो गए। देश के 6.52 करोड़ परिवार बीपीएल श्रेणी के तहत आते हैं। इसमें 2.44 करोड़ अति ग़रीब परिवार हैं। ग़रीबी के आंकड़े भी अलग-अलग हैं। केंद्र सरकार जहां 6.52 करोड़ लोगों को बीपीएल श्रेणी में मानती है वहीं राज्य सरकारों ने 10.59 करोड़ परिवारों को बीपीएल कार्ड जारी किए हैं। राज्य सरकारें केंद्र सरकार पर अक्सर आरोप लगाती रहती हैं कि केंद्र उनके ग़रीबों को ग़रीब नहीं मानता। बिहार के मुख्यमंत्री के मुताबिक, उनके राज्य में बीपीएल परिवारों की संख्या 1.50 करोड़ है जबकि केंद्र के मापदंड के मुताबिक महज़ 65 लाख परिवार ही बीपीएल श्रेणी में आते हैं। वैसे एक सच्चाई यह भी है कि केंद्र और राज्य सरकार की परिभाषाओं से अलग ग़रीबों की तादाद कहीं बहुत ज़्यादा है। बाक़ी लोगों को सरकारें भले ग़रीब न मानें पर 80 रुपये किलो दाल, 40 रुपया लीटर दूध और 35 रुपया किलो चीनी ख़रीदकर ख़ाने की क्षमता कितने प्रतिशत भारतीयों में है? क्या इन लोगों को (जो ये चीज़ें नहीं ख़रीद पा रहे) ये चीज़ें सरकार की ओर से मुहैया नहीं कराई जानी चाहिए?

सरकार की आर्थिक समीक्षा के मुताबिक 51 फीसदी जनवितरण प्रणाली का खाद्यान्न काले बाज़ार में बिक जाता है। इस कालाबाज़ारी के खेत में नेता, अफसर, ठेकेदार, दुकानदार और बाबू सभी शामिल हैं। इसीलिए इसकी शिकायत तक दर्ज़ नहीं होती। कालाबाज़ारी की शिकायतों पर ध्यान दिया जाए तो 2007 में 99, 2008 में 94, 2009 में 169 और 2010 में क़रीब 200 शिकायतें दर्ज़ की गईं। आप खुद समझ सकते हैं कि जहां 51 फीसदी जनवितरण प्रणाली की खाद्यान्न की चोरी हो रही हो, उस परिदृश्य में दर्ज़ शिकायतें कितनी कम हैं।

12वीं पंचवर्षीय योजना में जनवितरण प्रणाली को लेकर जो मसौदा तैयार किया गया है उसमें इसके तहत ग्रामीण इलाक़ों की 75 फीसदी आबादी को लाने की बात कही गई है जिसमें 46 फीसदी को प्राथमिकता दी जाएगी। इसमें 50 फीसदी शहरी आबादी को शामिल करने की बात है जिसमें से 28 फीसदी को प्राथमिकता श्रेणी में रखा गया है। इसमें यह भी सुझाव दिया गया है कि केंद्र सरकार राज्यों को खाद्यान्न के बजाय आटा की आपूर्ति करे। ग्रामीण इलाक़ों की 46 फीसदी प्राथमिकता वाली आबादी को प्रतिव्यक्ति प्रतिमाह सात किलो मोटा अनाज़ एक रुपये प्रतिकिलो, गेहूं दो रुपये प्रतिकिलो और चावल तीन रुपये प्रतिकिलो की दर से देने का प्रस्ताव है। शहरी इलाक़े की प्राथमिकता वाली 28 फीसदी आबादी को भी इसी दर पर खाद्यान्न मुहैया कराए जाने का प्रस्ताव है। जनवितरण प्रणाली के तहत आने वाली बाक़ी आबादी को (29 फीसदी ग्रामीण और 22 फीसदी शहरी) 50 फीसदी सब्सिडी पर खाद्यान्न उपलब्ध कराने का प्रस्ताव है। गर्भवती महिलाओं, बच्चों और उपेक्षित लोगों के लिए राज्य सरकारों से योजनाएं बनाने और चलाने का प्रस्ताव दिया गया है। इन योजनाओं का दिशा-निर्देश केंद्र सरकार द्वारा तय करने की बात कही गई है। इसके अलावा 12वीं योजना के प्रस्ताव में राष्ट्रीय खाद्य आयोग और अग्रिम खाद्य सुरक्षा का भी प्रावधान करने को कहा गया है।

देश के लिए खाद्यान्न सुरक्षा बेहद ज़रूरी है। क्योंकि कोई भी व्यक्ति बिना खाए ज़िंदा नहीं रह सकता। चाहे वह अमीर हो या ग़रीब, अन्न सभी को चाहिए। लेकिन यह अन्न तभी मिल सकता है जब किसान ज़िंदा रहें और अन्न उपजता रहे। अभी तो किसान आत्महत्याएं कर रहे हैं। सरकार अगर खाद्यान्न सुरक्षा चाहती है तो उसे किसानों को अनुकूल माहौल उपलब्ध कराना होगा और फिर जनवितरण प्रणाली को मज़बूत बनाना होगा। तब कहीं जाकर खाद्यान्न सुरक्षा का माहौल बनेगा। ❑

(लेखक दिल्ली स्थित स्वतंत्र पत्रकार हैं)

गन्ना आधारित बहुउद्देशीय कृषि यंत्र

बहत्तर वर्षीय अन्ना एक प्रगतिशील और उन्नत कृषक हैं। नयी-नयी चीज़ों की खोज में उनकी बहुत रुचि है। वे एक उत्कृष्ट शिल्पकार भी हैं और प्राचीन बौद्ध मूर्तियों के संधारण में उन्हें विशेष महारत हासिल है। उन्होंने एक ऐसा उपकरण बनाया है जो ट्रैक्टर में लगा दिए जाने पर गन्ने की खेती से संबंधित अनेक कार्य कर सकता है।

उनके परिवार में उनकी पत्नी के अतिरिक्त दो पुत्र और एक पुत्री हैं। बेटी की शादी हो चुकी है और वह अपने ससुराल में रहती है। अन्ना साहब और उनकी पत्नी दोनों ही अशिक्षित हैं, परंतु उनके दोनों बेटे स्नातक हैं और कृषि की देखरेख करते हैं। कृषि के नवीन और नवाचारी तरीक़ों से वे अपने 20 एकड़ खेत से अच्छी-खासी कमाई कर लेते हैं।

अन्ना साहब पढ़ाई के लिए विद्यालय नहीं जा सके क्योंकि उन्हें अपने पिता के कार्य में मदद करनी होती थी। नयी-नयी चीज़ों की खोज की प्रवृत्ति वैसे तो उनमें बचपन से ही थी, परंतु जब वे 25-30 वर्ष के हुए तो उनकी यह भावना और बलवती हुई। पिछले 50 वर्षों में यह दिन-प्रतिदिन दृढ़तर ही हुई है।

1960 में उन्होंने एक ऐसी घड़ी बनाई जो पानी की बूंद से चलती थी। सेकंड के कांटे पर पानी की बूंद गिरने से वह आगे बढ़ता था। पानी की बूंद एक ऐसे डिस्पेंसर से कांटे पर गिरती थी, जिसे उचित रूप से 'टाइम्ड' किया गया था। इस अन्वेषण के लिए तत्कालीन प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने उनकी प्रशंसा की थी।

1962 में उन्होंने एक ऐसा चरखा बनाया जिसे मोड़कर सूटकेस में रखा जा सकता था। इसे उन्होंने साबरमती आश्रम में प्रदर्शित किया जहां उसमें कुछ और सुधार किया गया ताकि उससे अधिक सूत काता जा सके।

लगभग 25 वर्ष पूर्व, जब लोग ड्रिप सिंचाई के बारे में ज्यादा नहीं जानते थे, उन्होंने अपने ही तरीक़े से कुछ इसी प्रकार की प्रणाली से अपने खेतों में सिंचाई की। पानी के अभाव से सूख रहे अपने पान के खेतों को बचाने के लिए उन्होंने बिजली के कार्यों में इस्तेमाल होने वाले पीवीसी पाइप में कील से किए छेद से बूंद-बूंद पानी टपका कर पान के पौधों की सिंचाई की। प्रतिदिन एक घंटे की सिंचाई कर उन्होंने सात वर्षों तक पान की फ़सल ली।

पान की खेती से कोई विशेष लाभ न होता देख उन्होंने गन्ने की खेती में हाथ आजमाया। उनका विचार था कि गन्ने के खेतों में लगने वाले रस कीटों (पेड़ों का रस चूसने वाले कीड़ों) और श्वेत मक्खियों की समस्या का निराकरण उच्चदाब वाले वाटर स्प्रे (जल छिड़काव यंत्र) से हो सकता है। और तभी 1980 के दशक में उन्होंने घूमने वाले फव्वारे का इज़ाद किया, जो 140 फीट के दायरे में सिंचाई कर सकता था। इसका नाम उन्होंने देवी चन्द्रप्रभा के नाम पर 'चन्द्रप्रभा रोटर स्प्रिंकलर : दि रेन गन' रखा। चन्द्रप्रभा रेन गन के अनेक लाभ हैं। यह डेढ़ घंटे में एक एकड़ खेत में सिंचाई कर सकता है। चूंकि इसमें तीन इंच व्यास का पाइप और चौड़ी टोंटी लगी होती है, इससे कंपोस्ट खाद अथवा बायोगैस (गोबरगैस) की गाद का छिड़काव भी किया जा सकता है। जब इसमें से वेगपूर्वक पानी निकलता है, तो रसकीट और श्वेत मक्खियां भी बह जाती हैं। चूंकि यह यंत्र 140 फीट की दूरी तक छिड़काव कर सकता है, इसमें अतिरिक्त पाइप लगाने की ज़रूरत नहीं होती। इस अन्वेषण के लिए उन्हें 2001 में एनआईएफ का प्रथम नेशनल ग्रास रूट टेक्नोलॉजिकल इनोवेशन और पारंपरिक ज्ञान पुरस्कार प्रदान किया गया।

1990 के दशक के प्रारंभिक वर्षों में अन्ना साहब ने एक चूषण पंप का इस्तेमाल करते हुए पांव से चलने वाली दूध दुहने की मशीन भी बनाई थी।

मशीनी आविष्कारों के साथ-साथ वे कृषि फ़सलों की नयी-नयी प्रजातियों के विकास में भी रुचि लेते रहे हैं। उन्होंने गन्ने की अधिक पैदावार देने वाली एक नयी प्रजाति- गंगावती 6081 का विकास किया, जिसके लिए 2001-02 में धारवाड़ के कृषि विज्ञान विश्वविद्यालय ने उन्हें राज्यस्तरीय पुरस्कार प्रदान किया।

2005 में उन्होंने सागर की लहरों से विद्युत उत्पादन करने का एक नया प्रयोग किया। वे अपनी मशीन को गोवा-महाराष्ट्र की सीमा पर स्थित अंबाघाट के पास ले गए और सागर की लहरों से विद्युत उत्पादन में सफलता प्राप्त की। उनकी इस मशीन से इतनी बिजली पैदा हुई कि उससे सौ-सौ वाट के चार बल्ब जल उठे। यह मशीन सागर की लहरों के बल के ज़रिये वायु के दाब के सिद्धांत पर काम करती थी, जिससे टरबाईन चलाकर विद्युत का उत्पादन किया जाता था।

उत्पत्ति

अन्ना गन्ने की खेती करते थे। खेती के लिए उन्हें जितने श्रमिकों की आवश्यकता होती थी उतने मिल नहीं पाते थे। बुवाई और अन्य कृषि कार्यों के लिए श्रमिकों के अलावा प्रतिएकड़ 20 लीटर डीज़ल भी लगता था।

अन्ना का अनुभव था कि बाज़ार में उपलब्ध ट्रैक्टर से खिंचने वाले रोटोवेटर मशीनों से गन्ने की कटाई में सफ़ाई और एकरूपता नहीं आ पाती थी। श्रमिकों के हाथों से कटाई में भी यही समस्या आड़े आती थी। आदर्श रूप से किसान ऐसी मशीन चाहते हैं जो गन्ने की खूंट की कटाई-सफाई, खाद देने, नालियां बनाने और मिट्टी चढ़ाने (मेड़ बनाने) जैसे तमाम कार्य कर सके। इससे समय, श्रम और धन तीनों की बचत होती है और साथ ही मिट्टी की उर्वरता भी बनी रहती है। उनके इस यंत्र के कुछ ऐसे लाभ हैं, जो मौजूदा यंत्रों में नहीं मिलते। अन्ना साहब ने गन्ने के खेतों की प्रारंभिक अवस्था में गन्ने के बीजों को घास-पत्ती आदि से ढकने और मिट्टी चढ़ाने के लिए एक बहुउद्देशीय यंत्र बनाने में सफलता प्राप्त की है।

यह एक ऐसा बहुउद्देशीय उपकरण है जो 30-40 अश्व शक्ति के ट्रैक्टर में लगाया जा सकता है। यह मशीन नालियां बनाने, बीज रोपने, खाद डालने और गन्ने की कटाई जैसे सभी काम कर सकती है। इस यंत्र में जुताई, गन्ने के बीजों (रोपा) के बीच की दूरी नापने और रोपने तथा खाद डालने के साथ-साथ मिट्टी चढ़ाने और फ़सल काटने के लिए आवश्यक कल-पुर्जे लगे हुए हैं।

इस मशीन से एक घंटे में 105 किलोग्राम उर्वरक का छिड़काव भी किया जा सकता है, साथ ही गन्ने की कटाई में एकरूपता लाने के लिए आवश्यक उपकरणों का समायोजन किया जा सकता है। इसे चलाने के लिए केवल एक ही व्यक्ति की आवश्यकता होती है और डीज़ल की खपत भी कम होती है। लागत में कमी के साथ-साथ प्रदूषण भी कम होता है। मौजूदा मॉडल की क़ीमत 40,000 ₹ है।

225 किलोग्राम भार वाला यह यंत्र बाज़ार में उपलब्ध बहुउद्देशीय कृषि यंत्र की तुलना में एक तिहाई कम है और इसलिए मिट्टी को भी कम क्षति पहुंचाती है।

अन्ना साहब ने अपनी इस अन्वेषण के पेटेंट के लिए आवेदन कर दिया है। वे इसे कई वर्षों से उपयोग में ला रहे हैं। ❑

(पृष्ठ 50 का शेषांश)

लाया गया है। सबसे ज्यादा महत्व की बात यह है कि नागरिकों एवं सरकार के बीच जहां छोटे-मोटे भ्रष्टाचार का प्रश्न है, वे सभी स्थानीय स्तर के निकायों में व्याप्त हैं न कि केंद्र अथवा राज्यों के स्तर पर। आपूर्ति के मामले में आपूर्ति के स्रोत में सुधार लाने की ज़रूरत है। इन सार्वजनिक जिन्सों एवं सेवा का निर्धारण कौन करता है? कौन यह तय करता है कि मदों के लिए संसाधन किस तरह आवंटित किया जाए? स्थानीय निकायों का उचित विकेंद्रीकरण, अधिकारियों का नियोजन एवं विकेंद्रीकरण कर ऐसे सवालों के लिए उन्हें उत्तरदायी बनाया जा सकता है। फिर भी उनके लिए ऐसे कार्यों का निर्धारण केंद्रीय रूप से होता रहा है, जबकि स्थानीय निकायों के अधिकारियों से अधिक बेहतर सेवा के लिए प्रतिरोध का दवाब बढ़ता रहा है। इन अधिकारियों को अक्सर इन ज़रूरतों के निष्पादन के लिए वहां तैनात किया जाता है।

ज़्यादा दिन पहले की बात नहीं है जब प्रधान आर्थिक सलाहकार कौशिक बसु ने यह सुझाव देकर हंगामा खड़ा कर दिया था कि कुछ तरह की रिश्वत के मामलों में रिश्वत को कानूनी रूप दे दिया जाना चाहिए। उनका मक़सद उन वस्तुओं एवं सेवाओं के लिए रिश्वत से था जिनको पाने का लोगों को अधिकार है। इस तरह के भ्रष्टाचार के लिए अक्सर उदाहरणस्वरूप एक चर्चित फॉर्मूला है जिसकी काफी वैधता है। भ्रष्टाचार (एकाधिकार + विवेकाधिकार)- (जवाबदेही + ईमानदारी + पारदर्शिता)। भ्रष्टाचार के जिन मामलों का अक्सर जिक्र किया जाता है, उनमें निम्नलिखित शामिल हैं :

- नियमों, नियमनों, नीतियों एवं कानून का अभाव,
- कमज़ोर प्रवर्तन प्रणाली,
- निगरानी की कमज़ोर प्रणाली,
- जवाबदेही का अभाव,
- पारदर्शिता का अभाव,
- प्रणाली के नियंत्रण का अभाव (उदाहरण के लिए विधायी एवं न्यायिक प्रणाली में संस्थागत कमज़ोरियां),
- ईमानदारी का अभाव,
- एकाधिकार,
- अत्यधिक विवेकाधिकार,
- अल्प वेतन,
- ज़ोखिम की बनिस्वत उच्च पुरस्कार और
- अपराध अनुसंधान की निम्न दर।

इसलिए भ्रष्टाचार निरोधक (एंटीजेट) उपाय इस प्रकार के होंगे :

- असैनिक सेवा में सुधार, जिनमें आचरण संहिता, वेतन, प्रविष्टि एवं पदोन्नति शामिल हैं, और विश्वसनीय भ्रष्टाचार निरोधी कानून।
- स्वतंत्र भ्रष्टाचार निरोधी निकायों की स्थापना।
- निजी क्षेत्र को सेवा प्रदान करने का अधिकार देकर सार्वजनिक सेवा प्रदान करने के एकाधिकार की समाप्ति, क्योंकि ऐसे अनेक सार्वजनिक सौदों एवं सेवा का बाज़ार की विफलता से कोई लेना-देना नहीं होता।
- सार्वजनिक ख़रीद को अधिक पारदर्शी बनाने की ज़रूरत है।
- नागरिक समाज द्वारा उचित प्रतिरोधी दबाव बनाने की ज़रूरत है, जिसके लिए जागरुकता एवं सूचना का आदान-प्रदान ज़रूरी है। इनमें से कुछ ही पूर्व शर्तें अभी तक पूरी की जा सकी हैं। ❑

(लेखक नयी दिल्ली स्थित सेंटर फॉर पॉलिसी रिसर्च में प्रोफेसर हैं।
ई-मेलः bdebroy@gmail.com)

कर्मयोग की दिव्य लौ - गांधी

● सरोज कुमार शुक्ल

मनुष्य, सृष्टि के विकास क्रम में निस्संदेह उत्कृष्टतम रचना है। लेकिन इनमें कुछ विरले ही होते हैं जो अपने जीवनकाल में ही श्रेष्ठता की ऊंचाइयों को छूने में सफल हो पाते हैं और इतिहास में महामानव के रूप में अंकित हो जाते हैं। संसार में किसी भी महापुरुष का उसके जीवनकाल में मूल्यांकन करना अथवा इतिहास में उसके स्थान का निर्धारण करना एक दुष्कर कार्य है। क्योंकि एक ओर जहां उनका स्वयं का जीवन अपने में सफलताओं और असफलताओं की अनेक गुत्थियों की अनंत गाथा समेटे होता है, वहीं दूसरी ओर अपने समय की समृद्ध गौरवशाली परंपराओं और उनके द्वारा किए गए युगांतकारी परिवर्तनों का मूर्त गवाह भी होता है।

महात्मा गांधी आधुनिक भारत के ऐसे ही महान एवं युगांतकारी नेता हुए जिनके अप्रतिम योगदान की छाप आज भी अक्षुण्ण रूप से विद्यमान है। वे अपनी अनोखी कर्ममयी, साधनामयी तथा विलक्षण प्रतिभा द्वारा भारतीय जीवन को विविध पहलुओं से देखते थे। वस्तुतः गांधीजी का विराट चिंतन और जीवनदर्शन अनुभव पर आधारित ज्ञान का विपुल महासागर है। जिस प्रकार महासागर में से अमूल्य रत्नों को प्राप्त करने के लिए हमें उसमें अनेक बार डूबना-उतराना पड़ता है, उसी तरह गांधीजी के विशाल जीवनानुभव में से अलभ्य रत्नों को प्राप्त करने के लिए उनके जीवनदर्शन, सिद्धांतों और व्यावहारिक नीतियों के वेगवान प्रवाहों से अपने को रू-ब-रू करना होगा। इसमें हमें अनेक थपेड़ों का सामना भी करना पड़ सकता है। परंतु ये थपेड़े ही वह माध्यम बनेंगे जो महात्मा गांधी के निकट जाने में सहायक होंगे।

वैश्विक धरातल पर उन्नति के जिस मार्ग पर आज हम अग्रसर हैं इसे प्रशस्त करने का श्रेय महात्मा गांधी को ही जाता है। महात्मा गांधी ने हमें केवल अंग्रेज़ों की दासता से मुक्ति नहीं दिलाई अपितु हमारी धुंधलाई चेतना का संस्कार किया। इसके लिए आंतरिक ऊर्जा उन्हें भारतीय परंपरा एवं संस्कारों से ही मिली। गांधी के जीवनदर्शन में *श्रीमद्भागवत गीता* का विशेष प्रभाव था और इसीलिए उनकी दृष्टि, योजना और कार्य में कर्मयोग की साधना झलकती है। यहां यह स्मरणीय है कि आधुनिक भारत में सामाजिक सक्रियता के क्षेत्र में कार्यरत अनेक बड़े नाम शामिल हैं जिनमें लोकमान्य तिलक और आचार्य विनोबा भावे शामिल हैं, जिन्होंने गीता पर न केवल गंभीरता से विचार किया अपितु वे उससे प्रेरणा भी ग्रहण करते रहे। महात्मा गांधी ने *गीता* को समकालीन संदर्भों में आधुनिक भारत की आवश्यकताओं का विशेष रूप से ध्यान रखते हुए समझने की चेष्टा की। महात्मा गांधी के सत्याग्रह आंदोलन की नींव अहंकार और मोह से मुक्त आधार भूमि पर तैयार की गई थी। सत्याग्रह को एक अमोघ अस्त्र के रूप में ग्रहण कर गांधी जी ने अहिंसक राजनीति का नया अध्याय शुरू किया जो लोकतंत्र और मनुष्यता का आदर करते हैं। गांधीजी की

दृष्टि में घोर आशा और घोर निराशा दोनों ही इंसानियत के मार्ग में बाधक एवं घातक हैं। वे अपने जीवन में कभी भी मोह, लोभ और भय के कारण कर्तव्य पथ से विमुख नहीं हुए। यही कारण है कि उनके जीवनदर्शन का पूरा ख़ाका आधुनिक भारत के नवनिर्माण की संकल्पनाओं पर केंद्रित किंतु सातत्य विकास पर आधारित था।

गांधीजी के स्वराज का व्यापक अर्थ है संपूर्ण संसार में प्रत्येक के लिए वैयक्तिक न्याय का स्वशासन। भारत में पूर्णरूप से स्वराज तब तक नहीं आएगा, जब तक एक भी व्यक्ति को अछूत माना जाता रहेगा। आत्मनिर्भरता और अपनी संस्कृति और उसके मूल्यों के प्रति आग्रह गांधीजी के व्यक्तित्व की ख़ास बातें हैं। वे एक ऐसे विलक्षण महापुरुष थे जिन्होंने अपने जीवन के कुरुक्षेत्र में स्वयं ही कृष्ण एवं अर्जुन दोनों की भूमिका निभाई। जहां कृष्ण के रूप में उन्होंने जग को कर्म की महत्ता का ज्ञान कराया वहीं स्वत: इसका पालन अर्जुन के रूप में करके लोगों में प्रोत्साहन की भावना का संचार किया।

आज जब उन्हें इस धरती से भौतिक रूप से विदा लिए हुए आधी सदी से भी अधिक अवधि बीत चुकी है यह कहना विस्मय-भरा लगता है कि 21वीं सदी में उनके महानतम आदर्शों और सिद्धांतों का ठीक-ठीक मूल्यांकन कर पाने में हम पूर्णत: समर्थ हैं। गांधीजी गौतम बुद्ध और ईसा मसीह के बाद ऐसे महानतम अवतार थे जिन्होंने रक्तहीन क्रांति के माध्यम से भारत को विदेशी दासता से मुक्त कराया। गांधी जी महानता के ऐसे अवयव हैं जिनमें योग और क्षेम का दुर्लभ संयोग दिखाई पड़ता है। उनमें अपने ध्येय के प्रति एक ऐसा नि:स्वार्थ समर्पण भाव था जिसमें प्रयोजन की शुद्धता और सामाजिक सेवा की उदात्त भावना के ज्वार का अनोखा संगम मिलता है। गांधीजी कर्म में डायोनिसियस, विनम्रता में सेंट फ्रांसिस और बुद्धिमानी में सुकरात जैसे थे।

गांधीजी शाश्वत सच्चाइयों के ऐसे विरले जननायक थे जिन्होंने भारतीय जीवन पद्धति को वैज्ञानिक कसौटी पर कसकर उसे नयी बुलंदियों पर पहुंचाया। वे आदर्शों पर चलने वाले ऐसे इंसान थे जिनके विशाल अनुभवों की संपदा से सारा संसार न केवल समृद्ध हुआ अपितु उनका अनुगामी भी बना। वे असीम प्रेम से परिपूरित ऐसे जीव थे जिनके जीवन का मूलमंत्र अखंड मानवता के लिए समर्पित था। गांधीजी ने जीवन में कभी भी हार नहीं मानी। वे अंतिम सांस तक मानवीय कर्तव्य पालन करते हुए क्षुद्र सीमाओं से ऊपर उठकर दीन-दुखियों के प्रति सहानुभूति के लिए निरंतर ज़ेहाद छेड़ते रहे। वे अलौकिक महापुरुष थे, उनकी एक आवाज़ पर लाखों लोग जीवन के समर में अपनी आहुति देने को तत्पर रहते थे। वे अदम्य उत्साह के ऐसे पारखी थे जो वास्तविक कल्पना की सारी उड़ानों को धरती से ही निहारते रहे।

भारतीय स्वाधीनता आंदोलन में महात्मा गांधी का आगमन न केवल एक बड़ी घटना के रूप में देखा जाता है वरन वे भारतीय समाज में व्याप्त असमानता और अस्पृश्यता का विरोध करने वाले एक अवतारी पुरुष के रूप में भी स्मरण किए जाते हैं। गांधी के 'सपनों के भारत' में एक ऐसे मानव की परिकल्पना है जो न किसी का ग़ुलाम होगा और न ही किसी पर निर्भर रहेगा बल्कि वह एक आत्मनिर्भर मनुष्य की संकल्पना रखते हैं। मातृत्व, सर्वधर्म समभाव और प्रकृति के साथ सामंजस्य कैसे स्थापित किया जाए इसका उदाहरण प्रस्तुत करते हुए गांधीजी ने जीने की राह दिखाई।

गांधीजी का जीवनदर्शन ध्येय और न्यायोचित कर्म पर आधारित था इसलिए उनका मानना था कि सत्य कभी भी किसी को नुक़सान नहीं पहुंचाता। उनकी दृष्टि में जीवन एक ऐसी साधना है जिसके लिए आत्मशुद्धि करना नितांत आवश्यक है। आत्मशुद्धि की प्राप्ति सत्य का अवलंबन लेकर की जा सकती है। सत्य के प्रयोग को वे अपने जीवन का अपौरुषेय या ईश्वरीय शक्ति मानते थे। इसलिए उनका दृढ़ विश्वास था ''यदि सारी दुनिया झूठ की चपेट में आती प्रतीत हो तो भी आस्थावान व्यक्ति सत्य का परित्याग नहीं करेगा।''

गांधीजी अहिंसा को एक विज्ञान मानते थे। जिस प्रकार विज्ञान के शब्दकोश में असफलता के लिए कोई स्थान नहीं होता उसी प्रकार अहिंसा भी एक ऐसा राम-बाण है जो किसी भी काल व परिस्थिति में असफल नहीं हो सकता। अहिंसा सत्य की आधारशिला है तथा आंतरिक शुद्धि का मेरुदंड है। अहिंसा का मुख्य अर्थ यह है कि हम विरोधी के रुख को नरम बनाएं और उसे द्रवित कर दें तथा उसकी हृदय-वेदनाओं को इस प्रकार झंकृत कर दें कि वह स्वयं 'अहिंसा' का सबसे बड़ा समर्थक बन जाए।

गांधीजी की दृष्टि में आज़ादी जीवन का 'श्वास' और क्षमा उसकी 'लौ' है। गांधीजी मानते थे कि राष्ट्रीय स्वतंत्रता कोई काल्पनिक वस्तु नहीं है। यह उतनी ही आवश्यक है जितनी कि व्यक्तिगत या निज़ी स्वतंत्रता। उनके अनुसार यह संपूर्ण ब्रह्मांड एक अणु में समाया हुआ है। इसके माध्यम से ही हम ब्रह्मांड के एक छोर से दूसरे छोर का अनुभव करते हैं। गांधीजी की दृष्टि में स्वराज का अर्थ जनसाधारण के बीच एक जागृति तथा सरकार के नियंत्रण से मुक्त होने का निरंतर प्रयास है। पूर्ण स्वराज एक सामंजस्य भी है तथा आंतरिक और बाह्य आक्रमण से मुक्ति का मार्ग भी। स्वराज एक तीर्थयात्रा की कठिन चढ़ाई है जिसमें हमें छोटी से छोटी बातों पर ध्यान देते हुए आगे बढ़ने की आवश्यकता होती है ताकि हम अपने समक्ष आ सकने वाली कठिनाइयों का अनुमान कर सकें तथा स्वराजरूपी मंदिर के दर्शन निष्काम भाव से कर सकें। स्वराज का एक अर्थ है संगठन की जबरदस्त योग्यता, ग्रामवासियों की सेवा तथा सर्वसाधारण में राष्ट्रीय चेतना का विकास। गांधीजी की दृष्टि में यह बरगद के वृक्ष की तरह ऐसा विकास पुरुष है जिसमें शीघ्रता के लिए कोई गुंजाइश नहीं। वाणी और लेखनी की आज़ादी पूर्ण स्वराज का आधारस्तंभ है और आत्म त्याग इसकी आधार पीठिका है। गांधीजी की दृष्टि में प्रेम की परिधि का विस्तार तब तक करते रहना चाहिए जब तक उसमें पूरा गांव समाहित न हो जाए। इसी प्रकार गांव को शहर, शहर को प्रांत, प्रांत को देश और देश को समूची दुनिया को अपने प्रेम की गोद में समेट लेना चाहिए क्योंकि भारत गांवों में बसता है।

गांधीजी का लक्ष्य विश्व मैत्री है और उनके ज़ज़्बातों की यह ऐसी दास्तां है जिसमें मनमुटाव अस्त्र के प्रयोग का निषेध है और साथ ही संपूर्ण दुनिया को प्रेम के सूत्र में बांधने की प्रतिबद्धता है। गांधीजी एक ऐसे महामानव थे जिसमें ईश्वर के प्रति सच्ची आस्था, मानवता के प्रति असीम प्रेम और हृदय की अतल गहराइयों को छू लेने वाली

संवेदना के निदर्शन होते हैं।

उनका मानना था कि, ''सच्ची महानता पहाड़ी के ऊपर बैठकर आम लोगों की भीड़ को दर्शन नहीं देती। यह ऐसी महानता है जो बुद्धि तक ही सीमित नहीं रहती अपितु हृदय में उतरने के लिए निरंतर लालायित रहती है। यह शांति की ऐसी यात्रा है जिसमें समग्र सुख को त्यागने और दुख को गले लगाने का विचार उद्भूत होता है।''

गांधीजी के जीवनदर्शन में आदर्श समाज वही हो सकता है जिसमें संन्यासी भी गृहस्थ का आचरण करे और गृहस्थ भी संन्यासी का आचरण करे और तभी हम दोनों के बीच की खाई को पाट सकेंगे। गांधीजी एक सच्चे अनुसंधानी की तरह सत्य को तर्क से पकड़ते थे और उन्हें ऐसा भी आभास होता था कि- ''सत्य सचमुच उनके रोम-रोम में समाविष्ट हो गया है। वे इतिहास को एक घटना मानते हैं जो मृत्यु के उपरांत भार बनने लगती है, पत्थर बनने लगती है तथा दंतकथा व पुराण बनने लगती है। बीती हुई घटनाओं पर इतिहास अपनी झिलमिलाती रोशनी की ऐसी छाप छोड़ता है जिसे केवल बुद्धि रूपी उंगली से पकड़ा जा सकता है।'' वे चाहते थे हमारी जिज्ञासाओं में निरंतर बढ़ोतरी हो और हम शिक्षा में गहराई और गतिशीलता लाएं। यह तभी संभव होगा जब हमारे दिल और दिमाग़ में क्षमा एवं संयम की लौ के साथ आत्मीयता का तेल और बाती हो।

महात्मा गांधी हमारे युग के ऐसे कर्मयोगी महापुरुष भी थे जिनके रोम-रोम में कर्मयोग का रक्त प्रवाहित होता रहा। वे राजनीति और धर्म के चलते-फिरते पथिक थे। वे सुख और दुख को समान रूप से अनुभव करते थे। सुख और दुख के संबंध में उनका यह कथन यहां प्रासंगिक हो सकता है, ''दागदार जीवन यह मानता है कि सुख ही जीवन की अनुभूति है। जीवन का संपूर्ण सार सर्वस्व प्राप्ति है। सुख के इसी अहम को मिटाने का कार्य विधाता ने दुख को सौंपा। दुख से परास्त न होकर जो मनुष्य साधना के तौर पर दुख को स्वीकार करता है वही व्यक्ति सुख-दुख से अलग रहकर जीवन समृद्धि के आनंद को भोग सकता है।''

गांधीजी एक व्यक्ति न होकर एक संस्था थे। गांधी दर्शन एक ऐसा उपवन है जिसमें स्नेह, प्रेम, समन्वय, सुख-दुख, धैर्य, सहनशीलता और सौहार्द के पल्लवित एवं पुष्पित वृक्षों से शीतल छाया प्राप्त होती है। वे एक ऐसे अवतारी पुरुष थे जिनका दृष्टिपत्र ईसा, मूसा, हज़रत, राम, बुद्ध और नानक के समकक्ष था।

गांधीजी आज सशरीर हमारे बीच नहीं हैं लेकिन उनकी कीर्ति की यशोगाथा आज भी हमारे समक्ष प्रेरणा के रूप में विद्यमान है। उनकी मृत्यु पर संपूर्ण संसार में ऐसा शोक छाया जैसा आज तक मानव इतिहास में किसी अन्य महापुरुष की मृत्यु पर शायद ही प्रदर्शित हुआ होगा। उनकी मृत्यु के समय एक प्रेक्षक का निम्न कथन इस लौकिक संसार में उस साधक के अलौकिक जीवन के महत्व और उपयोगिता को दर्शाता है: ''उनकी हत्या की याद शताब्दियों तक गूंजती रहेगी और वे अब एक युगपुरुष की कोटि में आ गए हैं और हमारे बीच से एक ऐसे व्यक्ति का दिव्यलोक की ओर गमन हुआ है जिसकी पूर्ति शायद ही फिर कभी हो सकेगी।'' ❑

(लेखक राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग से संबद्ध हैं)

VISHWAS
EDUCATION PVT LTD
(An Institute for I.A.S./G.P.S.C./P.S.I./Staff Selection/Bank Exam.)

ALL INDIA TEST SERIES PROGRAMME
सामान्य अध्ययन
&
CSAT
रजनीश तोमर के दक्ष मार्गदर्शन में

21 कार्यक्रम प्रारम्भ
JANUARY

मुख्य आकर्षण
• 21 TESTS (सामान्य अध्ययन) एवं 16 TESTS (CSAT).
• सभी प्रश्नों के Source सहित व्याख्यात्मक हल (Printed) उपलब्ध.
• सुदूर क्षेत्र के छात्रों के लिए Postal programme की सुविधा.
• English medium के छात्रों के लिए भी यह कार्यक्रम उपलब्ध.
• FEE : 3000 (सामान्य अध्ययन), 2500 (CSAT)

TEST SHEDULE के लिए संस्थान से संपर्क करें या www.vishwaseducation.in देखें

पत्राचार कार्यक्रम उपलब्ध

Note : Demand Draft in favour of VISHWAS EDUCATION Pvt. Ltd., Payable at Delhi, Ahmedabad.

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स

PALI
रजनीसो तोमरो
(Dept. of Buddhist studies, spl. in pāli, Delhi University, Delhi)

10 Batch Starts
June
7:30 AM (Mukherjee Nagar)
6:00 PM (Rajendra Nagar)

NORTH DELHI : 102, A-40/41, IInd Floor, Ansal Building B/H HDFC Bank, Dr. Mukherjee Nagar
Mob.: 011-27652066/67, 9891605091, 9953468158
CENTRAL DELHI : 76, Old Rajinder Nagar Market, Near AXIS BANK, New Delhi-110060
Ph.: 011-41412463, 9911001083, 9540717271
AHMEDABAD : A/1/G, Chinubhai Tower, Near H.K. Collage, Ashram Road,
(079) - 26586832, 30616926, 09427071727, 09924191307

YH-239/2011

विवेकानंद और गांधी
आधुनिक सभ्यता के स्वीकार से इंकार का सफ़र

● सरोज कुमार वर्मा

स्वामी विवेकानंद और महात्मा गांधी दोनों आधुनिक भारत के आकाश में जगमगाते हुए ऐसे दो नक्षत्र हैं जिनके प्रकाश में भारतीयता आगे की यात्रा तय करती है। इन दोनों ने रास्ते का जो नक्शा निर्मित किया उसी पर चलकर आधुनिक भारत का निर्माण हो सका। इस मायने में ये दोनों आधुनिक भारत के निर्माता हैं। यद्यपि उनकी परिकल्पित योजना के मुताबिक भारत निर्मित नहीं हो पाया, परंतु आज भारत जिस रूप में जैसा है, उसका बहुत सारा श्रेय इन्हीं दोनों को जाता है। आज भारत में यदि सर उठाकर खड़ा होने का हौसला है और भारतवासी स्वतंत्र फिज़ा में सांस ले रहे हैं तो यह इन दोनों के ही प्रतिबद्ध प्रयास से हो पाया है। विवेकानंद सांस्कृतिक जागरण के उन्नायक थे तो गांधी राजनीतिक स्वतंत्रता के पुरोधा। विवेकानंद और गांधी के बीच एक ऐसी तारतम्यता है जो इस देश को सांस्कृतिक जागृति से लेकर राजनीतिक स्वतंत्रता तक ले आती है। लेकिन इस तारतम्यता की मज़बूत डोर जिन महीन धागों से बनी है उनमें कुछ तंतु असमानताओं के भी हैं, जिन्हें इन दोनों के आधुनिक सभ्यता विषयक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन करके चिह्नित किया जा सकता है।

विवेकानंद का जन्म 1863 में हुआ था। 1981 में वे अपने गुरु रामकृष्ण से मिले थे। गुरु का सान्निध्य उन्हें मात्र 5 वर्षों का मिला। 1986 में उनके गुरु रामकृष्ण की मृत्यु हो गई। उनकी मृत्यु के बाद उनके सारे कार्यों की जिम्मेवारी विवेकानंद पर आ गई। इस जिम्मेवारी के निर्वहन के लिए पहले वे दो बार भारत-भ्रमण पर निकले। पहली बार 1888 में और दूसरी बार 1891 में। इन दोनों भ्रमणों से जहां उन्हें भारत की उन्नत आध्यात्मिक परंपरा एवं समृद्ध सांस्कृतिक एकता का ज्ञान हुआ, वहीं उन्हें भारत की अज्ञानता, दरिद्रता, निर्बलता, निराशा और रोग-शोक का भी ज्ञान हुआ। फलतः इन भ्रमणों के बाद वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि यदि भारत को फिर से अपनी आध्यात्मिक और सांस्कृतिक विरासत को हासिल करना है तो उसे पहले अपनी दरिद्रता और निर्बलता पर विजय पाना होगा। उन्हें अपने गुरु के शब्द याद आए कि ''धर्म भूखे लोगों के लिए नहीं है।'' इसलिए उन्होंने सबसे पहले भारत की ग़रीबी दूर करने का निश्चय किया और इसके लिए उन्हें जो मार्ग दिखाई पड़ा वह पश्चिम से विनिमय करना था। उन्होंने कहा ''मैं सारे भारत में घूम चुका हूं, पर हे बंधुओं! यह मेरे लिए दारुण कष्ट था, मैंने जनसाधारण की भयंकर निर्धनता और पीड़ा को अपनी आंखों से देखा और मैं अपने आंसू न रोक सका। अब मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि बिना पहले उनकी ग़रीबी और कष्ट दूर किए, उनमें धर्म का प्रचार करना व्यर्थ है। इसी कारण दरिद्र भारत की मुक्ति के साधन जुटाने के लिए मैं अब अमरीका जा रहा हूं।'' (*मॉर्निंग स्टार*, 31 जनवरी, 1926)। अमरीका जाने के पीछे उनका उद्देश्य वहां वेदांत की शिक्षा देकर भारत के लिए धन जुटाना था। यह विनिमय था। पश्चिम से आध्यात्मिक ज्ञान के बदले भौतिक संपदा की प्राप्ति करना। 1893 में शिकागो के सर्वधर्म सम्मेलन में भाग लेने वे इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए गए थे।

विवेकानंद के ऐसा करने की वजह उनका पश्चिम की भौतिक सभ्यता के प्रति आकर्षित होना था। उन्हें पश्चिम से उम्मीद थी, यद्यपि कि वे पहले पश्चिम कभी गए नहीं थे। पश्चिम के बारे में वे जो कुछ भी जानते थे, वह वहां के विद्वानों को पढ़कर ही। अपने छात्र जीवन में उन्होंने मिल, स्पेंसर, शेली, वर्ड्सवर्थ और हेगेल आदि विद्वानों को गंभीरता से पढ़ा और उनसे काफी प्रभावित हुए थे। इसलिए तब वे केवल संशयवादी नहीं थे, बल्कि नास्तिक भी थे। यद्यपि रामकृष्ण से मुलाक़ात के बाद उनका संशय और उनकी नास्तिकता पूरी तरह मिट गई थी, परंतु संभवतः उन पाश्चात्य विद्वानों के प्रभाव की कोई सूखी रेखा उनके जेहन में बची रह गई थी जो उन्हें पश्चिम के प्रति आशान्वित किए हुई थी। उन्हें लगा था कि पश्चिम उनकी मदद करेगा। वे वहां से विनिमय करने में सफल होंगे। आध्यात्मिक ज्ञान के बदले भौतिक संपदा जुटा सकेंगे। इसलिए जब वे शिकागो गए तो वहां की शक्ति और समृद्धि से अभिभूत होकर वहां की प्रशंसा करने लगे। उनके जीवनीकार रोमां रोलां इस संबंध में लिखते हैं- ''पहले तो वह बच्चों की तरह आंखें फाड़े, मुंह बाए शिकागो की औद्योगिक विश्व प्रदर्शनी में चक्कर काटते रहे। हर वस्तु उन्हें आश्चर्य में डालने वाली, विस्मयकारी थी। उन्होंने पाश्चात्य जगत की शक्ति, समृद्धि और आविष्कार क्षमता की ऐसी कल्पना कभी न की थी। रवीन्द्रनाथ ठाकुर और महात्मा गांधी की तुलना में, जो यूरोपीय-अमरीकी, विशेषरूप से अमरीका की विक्षिप्त गति और शोर-शराबे से त्रस्त थे विवेकानंद शक्ति के प्रति अधिक आकर्षित थे। इसलिए कम से कम प्रारंभ में तो उन्हें यह सहज लगा। बारह दिनों तक उनकी आंखें इस नयी दुनिया को सराहती रहीं'' (*विवेकानंद की जीवनी*, पृ-30)।

इस सराहना के पीछे विवेकानंद का

पश्चिमी लोकतंत्र और यंत्रों के अत्यधिक उपयोग से भी प्रभावित होना था। तभी तो वह पश्चिम से यंत्रवाद की शिक्षा लेने के हिमायती थे। वह वहां की सामाजिक श्रेष्ठता और स्त्रियों की स्वतंत्रता के भी प्रशंसक थे। इसलिए उन्होंने अमरीकियों के आध्यात्मिकता में निम्न होने के बावजूद उनके समाज को श्रेष्ठ माना था। रोमां रोलां का इस संबंध में कहना है- ''उनकी दृष्टि में पश्चिमी देशों की भौतिक ही नहीं, बल्कि सामाजिक और नैतिक उपलब्धियों का भी महत्व था। वह लोकतंत्र में अंतर्निहित उस समता की प्रशंसा से मुग्ध थे जिसमें एक ट्रामगाड़ी में एक लखपति और साधारण मज़दूरिन साथ-साथ धक्का-मुक्की करते हैं। इसे उन्होंने ज़रूरत से ज्यादा महत्व दिया। इसके अतिरिक्त उन्होंने अनेकानेक अमरीकी स्त्रियों की उच्च बौद्धिक उपलब्धियों और उनकी स्वतंत्रता के सदुपयोग की प्रशंसा की। उन्होंने विविध प्रकार से पश्चिम की सामाजिक श्रेष्ठता को स्वीकार किया, क्योंकि वे चाहते थे कि देशवासी उनसे लाभ उठाएं। इसमें कहीं भी उनका जातीय स्वाभिमान आड़े नहीं आया।'' (वही, पृ.-60-61)

वह पश्चिम से केवल लेने के पक्ष में नहीं थे, उसे कुछ देना भी चाहते थे। और वह अध्यात्म था। वह चाहते थे कि पश्चिम से हम विज्ञान की शिक्षा लें और बदले में उसे अध्यात्म की शिक्षा दें। वह एक विनिमय चाहते थे, समान स्तर पर। उन्होंने भारत भ्रमण और पश्चिम यात्रा में यह देख लिया था कि भारत दुखी और निर्धन है, जबकि पश्चिम सुखी और संपन्न। परंतु साथ-साथ उन्होंने यह भी देखा था कि भारत शांत और संतुष्ट है, जबकि पश्चिम अशांत और असंतुष्ट। इसलिए उन्हें लगा कि मानव और विश्व का कल्याण तभी हो सकता है जब भारत पश्चिम की तरह समृद्ध और पश्चिम भारत की तरह शांत हो। यह आपसी लेन-देन से संभव हो सकता है। इसलिए उन्होंने कहा ''पश्चिम से हम यंत्रवाद की शिक्षा ले सकते हैं। और भी कई बातें अच्छी हैं, जिन्हें पश्चिम से ग्रहण करना आवश्यक दीखता है। किंतु हमें उन्हें कुछ सिखाना भी है। हम उन्हें धर्म और आध्यात्मिकता की शिक्षा दे सकते हैं। पश्चिम वालों से हमें एक विनिमय करना है। धर्म और आध्यात्मिकता के स्तर की चीज़ें हम उन्हें देंगे और बदले में भौतिक साधनों का दान हम सहर्ष स्वीकार करेंगे'' (रामधारी सिंह 'दिनकर' की पुस्तक *संस्कृति के चार अध्याय* के पृष्ठ 510 से उद्धत)। विवेकानंद का यही कथन उनके धर्म और विज्ञान के विचार का आधार बना।

परंतु सैद्धांतिक स्तर पर इस विनिमय की संगति होने के बावजूद व्यावहारिक स्तर पर यह विनिमय नहीं हो पाया। भारत ने ज़रूर पश्चिम से यंत्र और विज्ञान की शिक्षा ली और अब भी ले रहा है, परंतु पश्चिम ने भारत से धर्म और अध्यात्म की शिक्षा नहीं ली। तब भी नहीं, जब विवेकानंद इसका प्रयास कर रहे थे। इसलिए पश्चिम की प्रथम यात्रा से लौटते वक़्त वह खिन्न और उदास थे। भारत की दरिद्रता दूर करने के लिए जिस भौतिक संपदा के लिए वह पश्चिम गए थे, वह उन्हें नहीं मिली। यह सफलता उन्हें 1899 में भी नहीं मिली जब वह 1897 में पहली यात्रा से भारत लौटने के बाद, दूसरी बार पश्चिम की यात्रा पर गए। यद्यपि इस यात्रा का घोषित उद्देश्य धर्म प्रचार के लिए वहां शुरू किए गए कार्यों की समीक्षा करना था, लेकिन उसकी पृष्ठभूमि में भारतीयों के लिए धन इकट्ठा करने का उद्देश्य भी शामिल था। मगर इस बार भी उनकी सारी प्रसिद्धि, सारी सफलताएं उन्हें मात्र तीस करोड़ की राशि नहीं दिला सकी, जो वह भारत के भौतिक पुनरुद्धार के लिए चाहते थे। अत: उनकी निराशा स्वाभाविक थी। वह धर्म के बदले जिस धन के लिए वहां गए थे वह उन्हें नहीं मिला।

लेकिन इस बार इतना ज़रूर हुआ कि पश्चिमी सभ्यता से उनका मोहभंग हो गया। वैसे यह मोहभंग उन्हें प्रथम यात्रा में ही होने लगा था। मगर इस बार वह इस आधुनिक सभ्यता का असली चेहरा बखूबी पहचान गए थे। इसलिए उन्हें इससे वितृष्णा-सी होने लगी थी। रोमां रोलां उनके इस मोहभंग के बारे में लिखते हैं- ''वह पाश्चात्य साम्राज्यवाद की खूनी और घृणा से भरी आंखों में आंखें डालकर देख चुके थे। उन्होंने अनुभव किया कि पहली यात्रा में वह अमरीका और यूरोप के लोकतंत्र की सतही बातों, उसकी शक्ति और संगठन क्षमता के छलावे में आ गए थे। इस बार उन्होंने उसमें छिपी पैसा बटोरने की ललक, अपना वर्चस्व स्थापित करने के लिए भीषण संघर्ष और उसके विकराल गठबंधनों को समझ लिया था। भौतिक समृद्धि अब उन्हें धोखा न दे सकी। उन्होंने देखा कि आत्मशक्ति के निरर्थक अपव्यय के नीचे पीड़ा और छिछोरे चेहरे के पीछे गहरा संताप छिपा हुआ है'' (वही पृ-116-117)।

इस प्रकार विवेकानंद की पश्चिम की दो यात्राओं और उनकी परिणतियों पर नज़र डालने के बाद यह बात साफ़ हो जाती है कि अपने आरंभिक दिनों में विवेकानंद पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित थे। इसलिए उसी के आधार पर निर्मित समाज व्यवस्था यहां भी चाहते थे। वहां की शक्ति और समृद्धि उन्हें आकर्षित करती थी और वह चाहते थे कि वैसी ही शक्ति और समृद्धि भारत को भी प्राप्त हो। परंतु अपने अंतिम दिनों तक वह इस प्रभाव और आकर्षण से बंधे नहीं रहे। इन दो यात्राओं में पश्चिमी समाज और आधुनिक सभ्यता का असली चेहरा उनके सामने आ गया। ऊपर से साफ-सुथरा दिखने वाले इस चेहरे के पीछे एक गंदा, वीभत्स चेहरा था। एक ऐसा क्रूर और अमानवीय चेहरा जो अपने हित के लिए किसी का भी किसी हद तक नुक़सान पहुंचा सकता है, शोषण कर सकता है।

गांधी को यह पहचान आरंभ में ही हो गई थी। उन्होंने ऊपर से चमचमाते पश्चिमी समाज और आधुनिक सभ्यता के भीतर की विद्रूपता को शुरू में ही परख लिया था। गांधी का जन्म 1869 में हुआ था। 1888 में वह कानून की शिक्षा लेने इंग्लैंड गए। वहां वह लगभग तीन सालों तक रहे। इन तीन सालों में उन्होंने पाश्चात्य सभ्यता की प्रशंसा में कहीं कुछ कहा हो, संभवत: ऐसा नहीं है। उन्होंने कानून की डिग्री मिलने के बाद एक दिन भी इंग्लैंड में रुकना पसंद नहीं किया। उनके जीवनीकार लुई फिशर के मुताबिक ''अंतिम परीक्षाएं पास करने में उन्हें कोई कठिनाई नहीं हुई। 10 जून, 1891 को उन्हें अदालत में पैरवी करने की अनुमति मिली, 11 जून को उन्होंने हाईकोर्ट में दाखिला कराया और 12 जून को भारत के लिए रवाना हो गए। वह इंग्लैंड में एक दिन भी अधिक नहीं बिताना चाहते थे। इंग्लैंड में गांधीजी दो वर्ष आठ महीने रहे। इससे उनके व्यक्तित्व का निर्माण अवश्य हुआ होगा, परंतु इसका प्रभाव शायद उतना ही पड़ा जितना साधारणतया पड़ना चाहिए था''

(*गांधी की कहानी*, पृ-22)। इसका कारण संभवतः गांधी का वैष्णव परिवार में पैदा होना था। चूंकि वैष्णव संप्रदाय हिंदू धर्म की गहन नैतिकता की शुद्ध अभिव्यक्ति है, इसलिए गांधी के पूरे व्यक्तित्व पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा। *रामायण, भागवत* की आचार संहिता तथा श्रवण, हरिश्चन्द्र के व्यक्तित्व की अमिट छाप उनके जेहन पर पड़ी। इंग्लैंड जाने के पूर्व उन्होंने शायद किसी पाश्चात्य लेखक को पढ़ा भी नहीं था। हिंदुस्तान में तो उन्होंने कभी अख़बार भी नहीं पढ़ा था। वह अध्ययन हेतु इंग्लैंड भी तभी जा सके जब मां को मांसाहार तथा धूम्रपान आदि न करने का वचन दिया। परिवार से मिली इसी मज़बूती के कारण वह आधुनिक सभ्यता के आकर्षण में नहीं पड़े और उससे बचते-बचाते भारत लौट आए।

मगर भारत लौटने के दो वर्षों के बाद सन् 1893 में उन्हें फिर अब्दुल्ला सेठ के मुक़दमें के सिलसिले में दक्षिण अफ्रीका जाना पड़ा। वहां डरबन बंदरगाह पर उतरने के बाद मुक़दमा लड़ने के लिए उन्हें प्रिटोरिया जाना था। इसके लिए वह प्रथम श्रेणी का टिकट लेकर गाड़ी में बैठ गए। लेकिन ट्रांसवाल की राजधानी मोरित्सवर्ग में जब एक गोरा आदमी रेल के डिब्बे में चढ़ा तो वहां काले आदमी को बैठा देख भड़क गया। उसने रेलवे के दो कर्मचारियों को बुलाकर उस काले आदमी को तीसरे दर्ज़े में जाने के लिए कहा और उस काले आदमी द्वारा जाने से इंकार कर दिए जाने पर पुलिस को बुलाकर सामान सहित उसे धक्के देकर बाहर निकाल दिया। पश्चिम की गोरी चमड़ी की काली करतूतों से गांधी का पहला वास्ता यहीं पड़ा। इसके बाद प्रिटोरिया जाने में गांधी के साथ और भी कई दुर्व्यवहार हुएं। मगर गांधी इससे विचलित नहीं हुए और मुक़दमा तय होने के बाद डरबन लौट आए। पहली बार गांधी तीन वर्षों तक दक्षिण अफ्रीका में रहने के बाद 1896 में भारत लौटे परंतु कुछ ही दिनों बाद उन्हें फिर दक्षिण अफ्रीका जाना पड़ा। इस बार उनके साथ पिछली बार से भी ज्यादा बुरा सलूक हुआ। पहले तो उन्हें डरबन बंदरगाह पर जहाज़ से उतरने नहीं दिया गया और किसी तरह जब वह उतर कर आगे बढ़े तो उनपर ईंट-पत्थर और अंडे फेंके गए तथा उनकी पगड़ी छीन कर उन्हें ठोकरें लगाई गई। इतना ही नहीं बेहोशी की हालत में भी उन्हें बूटों से पीटा गया और क्रोधित भीड़ द्वारा उन्हें खट्टे सेब के पेड़ से लटका देने के नारे लगाए गए। यद्यपि गांधी लटकने से बच गए लेकिन उन्हें पश्चिम की क्रूरताओं और बर्बरताओं का खूब ज्ञान हो गया। फिर भी वह घबराए बिना हिंदुस्तानियों की लड़ाई लड़ते हुए वहां और चार वर्षों तक रहकर 1901 में भारत लौटे। मगर इस बार भी वह ज्यादा दिनों तक भारत में नहीं रह पाए। 1902 में उन्हें फिर दक्षिण अफ्रीका जाना पड़ा और इस बार लगभग 12 वर्षों तक वहां रहने के पश्चात 1915 में वह भारत लौट आए। इस प्रकार गांधी अपने अध्ययन काल सहित इंग्लैंड और दक्षिण अफ्रीका में लगभग 25 वर्षों तक रहे और इस बीच उन्होंने पश्चिमी समाज और सभ्यता को जितना जाना-समझा उस आधार पर उन्होंने कभी भी उसकी प्रशंसा नहीं की बल्कि यथासंभव पूरी बेबाकी से उसकी आलोचना ही की।

गांधी की यह आलोचना उनकी प्रसिद्ध पुस्तक *हिंद स्वराज* में बड़ी मुखरता के साथ मौजूद है। यद्यपि गांधी ने यह पुस्तक 1909 में लिखी लेकिन ज़ाहिर-सी बात है कि इसमें उनके जो विचार प्रकट हुए वह कोई एक दिन की तात्कालिक उपज नहीं थी। इस पर वह बहुत पहले से सोच रहे होंगे। कोई भी बात, अनुभव अथवा घटना विचार का ठोस रूप लेने में लंबा वक़्त लेती है। गांधी के साथ भी ऐसा ही हुआ होगा। *हिंद स्वराज* में व्यक्त जिस विचार को गोखले और नेहरू, जोकि उनके राजनीतिक गुरु और शिष्य थे, दोनों ख़ारिज कर चुके थे, उस पर गांधी अंत तक टिके रहे, तो यह निश्चय ही किसी तुरत-फुरत का नतीजा नहीं था, बल्कि उनके गहन चिंतन का परिणाम था। यह चिंतन उन्होंने अवश्य ही अपने अध्ययन काल के इंग्लैंड प्रवास और दक्षिण अफ्रीका प्रवास के दौरान किया होगा।

यह नतीज़ा आधुनिक सभ्यता के विनाशकारी होने का था। इसलिए उन्होंने *हिंद स्वराज* में बड़ी स्पष्टता से लिखा कि ''यह सभ्यता तो अधर्म है और यह यूरोप में इतने दरजे तक फैल गई है कि वहां के लोग आधे पागल जैसे देखने में आते हैं। उनमें सच्ची कूबत नहीं है, वे नशा करके अपनी ताक़त कायम रखते हैं। एकांत में वे बैठ नहीं सकते। जो स्त्रियां घर की रानी होनी चाहिए, उन्हें गलियों में भटकना पड़ता है, या कोई मज़दूरी करनी पड़ती है। इंग्लैंड में ही चालीस लाख ग़रीब औरतों को पेट के लिए कठिन मज़दूरी करनी पड़ती है और आजकल इसके कारण सफ्रेजेट का आंदोलन चल रहा है।

यह सभ्यता ऐसी है कि अगर हम धीरज धर कर बैठे रहेंगे तो सभ्यता की चपेट में आए हुए लोग खुद की जलाई हुई आग में जल मरेंगे। पैगम्बर मोहम्मद साहब की सीख के मुताबिक यह शैतानी सभ्यता है। हिंदू धर्म इसे निरा कलयुग कहता है। मैं आपके सामने इस सभ्यता का हू-ब-हू चित्र नहीं खींच सकता। यह मेरी शक्ति के बाहर है। लेकिन आप समझ सकेंगे कि इस सभ्यता के कारण अंग्रेज़ प्रजा में सड़न ने घर कर लिया है। यह सभ्यता दूसरों का नाश करने वाली और खुद नाशवान है। इससे दूर रहना चाहिए'' (पृ.20)।

गांधी के ऐसा लिखने का कारण यह था कि यह सभ्यता सिर्फ़ शारीरिक सुख का ख्याल रखती है और उसकी पूर्ति के लिए भौतिक संपदा के संग्रह को जीवन का एकमात्र लक्ष्य मानती है। इसलिए उन्होंने *हिंद स्वराज* में घर, कपड़े, भोजन, सवारी आदि की लंबी फेहरिस्त भी गिनाई है, जिनके होने से व्यक्ति अपने को सभ्य समझता है। लेकिन इस फेहरिस्त में कहीं भी नीति, धर्म, सच्चाई, ईमानदारी आदि का कोई जिक्र नहीं है, जिसके पालन से व्यक्ति का आत्मिक उत्थान होता है। यह सभ्यता तो सिर्फ़ मांग, संग्रह, सुख और संपदा आदि को महिमा मंडित करती है, इसलिए इससे किसी लोकहित और विश्व कल्याण की अपेक्षा रखना बेमानी है।

गांधी के अनुसार जिन यंत्रों से मनुष्य के समय और श्रम की बचत होती है उसे स्वीकार लेने में कोई हर्ज़ नहीं है। लेकिन उन्होंने भौतिक शक्ति से चलने वाले पेचीदा यंत्रों के उपयोग को स्वीकृति नहीं दी, बल्कि वह उसके त्याग की ही बात करते रहे, इस दलील के साथ कि ऐसे स्वचालित यंत्र मनुष्य के अंगों को बेकार बना देंगे।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि गांधी अपने आरंभिक दिनों से लेकर अंतिम दिनों तक पाश्चात्य सभ्यता के आलोचक रहे। इस सभ्यता में उन्हें कुछ भी ऐसा दिखाई नहीं दिया जिसकी प्रशंसा की जाए या जिसके कारण उससे प्रभावित हुआ जा सके। इसी

कारण उन्होंने पश्चिम से हिंदुस्तान के लिए कोई उम्मीद भी नहीं रखी और न ही वहां से कोई सहयोग मांगा या अपेक्षा रखी। वह हमेशा स्वयं को और भारतवासियों को इस बात के लिए तैयार करते रहे कि भारत का उद्धार भारत को ही करना होगा। वह इस बात के प्रबल पक्षधर थे कि जिसका घर टूटता है, वह अपना घर खुद बनाता है।

इस प्रसंग में यह बात भी उल्लेखनीय है कि जिस समय 1893 में, विवेकानंद अमरीका के धर्म संसद में अपने ओजस्वी और प्रभावपूर्ण भाषण से पश्चिमी विद्वानों को चमत्कृत करते हुए ख्याति के शीर्ष पर पहुंच कर युगपुरुष बन रहे थे, उसी समय 1893 में ही, गांधी दक्षिण अफ्रीका पहुंचकर वहां रहने वाले हिंदुस्तानियों के हक़ की लड़ाई लड़ रहे थे। यद्यपि यह विवेकानंद की पहली विदेश यात्रा थी और गांधी की दूसरी, क्योंकि इसके पहले वह इंग्लैंड से अपनी शिक्षा समाप्त कर लौट आए थे, तथापि दोनों की आयु में अधिक का अंतर नहीं था। क्योंकि विवेकानंद का जन्म 1863 में हुआ था और गांधी का 1869 में। यद्यपि दोनों हमउम्र और समकालीन थे लेकिन पश्चिम प्रवास के आकलन दोनों के अलग-अलग थे। हो सकता है यह अलगाव दोनों के उद्देश्यों की भिन्नता के कारण हो। विवेकानंद भारत की दरिद्रता दूर करने के लिए वहां धन प्राप्त करने के उद्देश्य से गए थे, जबकि गांधी अपनी जीविका चलाने के लिए पेशा करने के उद्देश्य से। अब चाहे कारण जो भी हो, परंतु इतनी भिन्नता दोनों में जरूर है कि गांधी कभी भी आधुनिक सभ्यता से उस तरह प्रभावित नहीं हुए जैसे विवेकानंद शुरू में प्रभावित हुए थे।

कदाचित इसी प्रभाव के कारण विवेकानंद धर्म और विज्ञान के समन्वय तथा पूरब और पश्चिम के मिलन की बात भी करते रहे, जो कि वैचारिक स्तर पर संगत होने के बावजूद व्यावहारिक स्तर पर कभी सफल नहीं हो पाया। इस समन्वय और मिलन का हश्र यह हुआ कि पूरब पर पश्चिम का आधिपत्य हो गया। यह आधिपत्य राजनीतिक भले न हो, लेकिन वैचारिक जरूर है। गांधी भविष्य की इस परिणति को तभी भांप गए थे। इसलिए उन्होंने यंत्रों का प्रकारांतर से ही विरोध किया और उसकी स्वीकृति दी भी तो सीमा में रहकर ही। इसलिए उन्होंने स्पष्ट शब्दों में यंत्रों की हद बांधने की और विज्ञान को लोभ का साधन न बनने देने की हिदायत दी। विवेकानंद अपने धर्म और विज्ञान के समन्वय में ऐसी किसी हद और हिदायत की बात की हो, संभवत: ऐसा नहीं है। इसे विवेकानंद और गांधी के बीच एक महत्वपूर्ण भिन्नता के रूप में रेखांकित किया जाना चाहिए।

इन दोनों के बीच इस बात को लेकर भी भिन्नता है कि किसी दूसरे की मदद से अपना उद्धार हो सकता है या नहीं? विवेकानंद इससे सहमति रखते थे। इसलिए वह भारत की ग़रीबी दूर करने के लिए पश्चिम से धन लाने गए। यद्यपि उन्होंने इसके बदले में पश्चिम को धर्म की शिक्षा देने की बात ज़रूर की, परंतु इसमें भी यह उद्देश्य तो निहित था कि धन पश्चिम से मिले और निर्धनता भारत की दूर हो। लेकिन गांधी ऐसा नहीं समझते थे। इसलिए उन्होंने देश की दरिद्रता खुद के प्रयासों और श्रम से दूर करने की बात की, पश्चिम से कभी किसी विनिमय की वक़ालत नहीं की। क्योंकि वह यह जानते थे कि दूसरे का धन लोभ पैदा करता है। उससे अपना उत्थान नहीं होता। अपना उत्थान तो अपने श्रम द्वारा अर्जित धन से ही हो सकता है। यद्यपि बाद में विवेकानंद भी यह बात अच्छी तरह समझ गए इसलिए उन्हें पश्चिम से कोई आशा न रही। रोमां रोलां ने उनकी इस निराशा के बारे में लिखा है- ''बाद में उनकी आंखें खुलीं। अमरीका की दूसरी यात्रा में उन्होंने मुखौटा उतार फेंका। नस्ल, धर्म और रंग के दंभ की बुराइयां अपनी नग्नता में प्रकट हुईं और उनका दम घोंटने लगीं। उन्होंने डॉलर के सर्वभक्षी साम्राज्यवाद को पहचाना। बाद में कुमैक साउड ने मुझे स्वामी जी के उद्गारों को बताया, अमरीका भी वैसा ही है। अत: वह कार्यसिद्धि का साधन न बन सकेगा'' (वही, पृ-61)।

इस प्रकार विदित होता है कि विवेकानंद और गांधी के आधुनिक सभ्यता संबंधी विचारों में कई असमानताएं थीं। इनमें कुछ असमानताएं तो प्रारंभिक दौर की थीं जो बाद में दूर हो गईं, परंतु कुछ अंत तक बनी रहीं। डॉ. कमला द्विवेदी इन पर प्रकाश डालते हुए लिखती हैं-''स्वामी विवेकानंद समस्त मानवता की एकता के साथ-साथ पाश्चात्य और प्राच्य संस्कृति के बीच एक सेतु थे और दोनों संस्कृतियों की आंतरिक एकात्मकता पर बल देते रहे। किंतु, गांधी पाश्चात्य संस्कृति और मशीनों पर आधारित उनके औद्योगिक विकास के खोखलेपन को भलीभांति समझ चुके थे। इसलिए उन्होंने मानवता की एकता पर तो बल दिया किंतु उनका बल भारतीय संस्कृति के मूल आधारों पर अधिक था और वह भौतिकवाद के साथ समन्वय करने के बजाय अध्यात्मवादी और अहिंसा तथा सत्य पर आधारित एक नयी सामाजिक संरचना के पोषक थे।'' (*गांधी के शिक्षा-दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन*, पृ. 259)

वैसे इस भिन्नता को रेखांकित करते हुए इसकी पृष्ठभूमि में इस तथ्य को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि विवेकानंद को अपना कार्य करने के लिए 40 साल से भी कम का समय मिला। उन्होंने मात्र 39 साल की उम्र में ही 1902 में अपना देहत्याग कर दिया, जबकि गांधी को अपना कार्य करने के लिए 70 साल का समय मिला। क्योंकि उनकी मृत्यु 1948 में हुई। परंतु इतने कम समय में ही विवेकानंद ने इतना कुछ कर दिया कि उसमें से बहुत कुछ गांधी के लिए भी प्रेरणा का स्रोत बना। जैसे, दरिद्र नारायण की सेवा। गांधी ने यह शब्द विवेकानंद से लिया है। भारत का उद्धार, निर्धनों की सेवा, मानवता का हित तथा विश्व का कल्याण आदि कई ऐसी बातें हैं, जिनमें दोनों न केवल समान हैं, बल्कि गांधी विवेकानंद से प्रेरित भी हैं। तभी तो रोमां रोलां कहते हैं- ''उन्होंने पुकारा, आओ! अब दीन-हीन, परित्यक्त, पददलित आओ, हम सब एक हैं। हम सबने अछूतों को उनके अधिकार और सम्मान दिलाने के लिए धर्म युद्ध छेड़ा है।'' मोहनदास करमचंद गांधी नामक व्यक्ति ने उनके हाथ से जलती हुई इस मशाल को थामा। 'दिनकर' भी कुछ इसी तरह की बात व्यापक संदर्भों में व्यक्त करते हुए लिखते हैं- ''वर्तमान भारत जिस ध्येय को लेकर उठा है, उसका सारा आख्यान विवेकानंद कर चुके थे। बाद में महात्मा और नेता उस ध्येय को कार्यरूप देने का प्रयास करते रहे हैं। जिस स्वप्न के कवि विवेकानंद थे, गांधी और जवाहरलाल उसके इंजीनियर हुए''। ❑

(लेखक बीआरए बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर के दर्शनशास्त्र विभाग में व्याख्याता हैं)

सिविल सर्विस

सामान्य अध्ययन

by

Ashok K. Singh, Alok Ranjan & CL Faculty

160+ FINAL SELECTIONS OVER THE PAST 3 YEARS*

CSAT by CL

80+ SELECTIONS IN CS PRELIMS'11*

भूगोल

by **Alok Ranjan**

100+ FINAL SELECTIONS IN CS'10*

उत्तर प्रदेश

इतिहास द्वारा अख्तर मलिक	राज्य व्यवस्था द्वारा डी.एन. पाण्डेय	भूगोल/ अर्थव्यवस्था द्वारा सत्येन्द्र पी. सिंह

*Results undergoing internal audit

Delhi: Meridian Courses: 27652131 **Alok Ranjan's IAS:** 27658009 **CL Mukherjee Nagar:** 41415241
Alok Ranjan/ CL Rajendra Nagar: 25756009, 9953004689 **CL SDA:** 26513072 **Public admin**: 9911366520
Allahabad: 995613 0010 **Ahmedabad:** 26561061 **Patna** (Meridian Courses): 3215310 **Kanpur:** 2234879
Varanasi: 2222915 **Gorakhpur:** 2342251 **Pune:** 65296428 **Chandigarh:** 4000666 **Indore:** 4037249

DIGMANI EDUCATIONS
ALOK RANJAN'S IAS
www.alokranjanslas.com

Ashok K. Singh's
QUITE SIMPLY THE BEST
MERIDIAN COURSES

CL | Civil Services Test Prep
www.careerlauncher.com/civils

YH-238/2011

आर्थिक संवृद्धि एवं विकास का सच

● उत्पल कुमार

कृति : भारत में आर्थिक वृद्धि एवं विकास: गहराते अंतर्विरोध 1991-2011 **संपादक :** कमल नयन काबरा, व्रजेंद्र उपाध्याय, अरुण कुमार त्रिपाठी, ए.के. अरुण; **प्रकाशक :** युवा संवाद प्रकाशन, नई दिल्ली; **ई-मेल:** ysamvad@gmail.com; **पृष्ठ संख्या :** 149; **मूल्य :** 175/-(पेपर बैक), 350/-(हार्ड बाउंड)

प्रस्तुत पुस्तक भारत में आर्थिक उदारीकरण के परिणामस्वरूप पिछले 20 वर्षों में हुए विकास को आर्थिक परिप्रेक्ष्य से निकाल कर सामाजिक न्याय एवं समावेशी विकास के संदर्भ में परीक्षण करने एवं विकल्प सुझाने का अनूठा प्रयास है। संपादकों (कमल नयन काबरा, वी. उपाध्याय, ए.के. त्रिपाठी एवं ए.के. अरुण) ने विकास के आंकड़ों की सुनहरी तस्वीर को हमारे देश में मौजूद एवं दिनोंदिन गहराती व्यापक ग़रीबी, असमानता एवं भ्रष्टाचार के परिप्रेक्ष्य में जांचने का सफल प्रयास किया है। इस क्रम में 17 लेखकों ने अपने-अपने यथार्थवादी वैचारिक लेखों के माध्यम से भारतीय अर्थव्यवस्था की नवउदारवादी आर्थिक नीतियों की न केवल सार्थक समालोचना का प्रयास किया है बल्कि एक वैकल्पिक समाधान ढूंढने की आवश्यकता एवं पृष्ठभूमि भी तैयार की है।

1991 के बाद विभिन्न सरकारों के नवउदारवादी नीतियों के फलस्वरूप जहां एक ओर भारत ने आर्थिक संवृद्धि दर के दहाई के आंकड़े को छुआ तथा तथाकथित विस्तार की सीमाओं को पार करते हुए अगले कुछ वर्षों में दुनिया की तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बनने की संभावना लिए हुए है वहीं दूसरी तरफ पिछले 20 वर्षों में अमीर-ग़रीब के बीच की खाई, ग़रीबी, बेरोज़गारी, भ्रष्टाचार, भुखमरी इत्यादि की दर एवं इनकी वृद्धि की रफ़्तार भी बेतहाशा बढ़ी है।

पुस्तक में पहला लेख प्रसिद्ध अर्थशास्त्री एवं समीक्षक कमल नयन काबरा का है, जबकि दूसरा लेख प्रो. अरुण कुमार एवं अरुण कुमार त्रिपाठी द्वारा लिखा गया है। इनमें भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास के विरोधाभासों, अंतर्विरोधों एवं अंतर्द्वंद्वों का चित्रण एवं जांच-पड़ताल की गई है। अपने लेख में प्रो. काबरा ने यह इंगित किया है कि आर्थिक विकास और राष्ट्रीय आय में वृद्धि के कारण सैद्धांतिक रूप से रोज़गार में वृद्धि एवं अर्थव्यवस्था का समावेशी स्वरूप उद्घाटित होना चाहिए था, परंतु यह मात्र छलावा साबित हुआ। ग़रीबी, बेरोज़गारी एवं विषमता भारतीय समाज को अपने दुष्चक्र में फांसता जा रहा है। सन् 2011 तक की समावेशी विकास की नीतियों और कार्यक्रमों, नीयत, अनुपालन आदि के खोट को उजागर करते हुए सरकार की असली मंशा पर ही प्रश्नचिह्न लगाते हुए प्रो. काबरा देश में ग़रीबी की परिभाषा, ग़रीबों की संख्या, प्रकृति इत्यादि पर सरकार के बीच भ्रम व मतभेद को उज़ागर करते हैं। इस असमान विकास को बाज़ारी उन्मुक्तता एवं एकपक्षीय भूमंडलीकरण का स्वाभाविक परिणाम मानकर लेखक समावेशी विकास की एक वैकल्पिक रूपरेखा तय करने का प्रयास करता है। अरुण कुमार एवं अरुण त्रिपाठी अपने लेख में स्पष्ट रूप से काली कमाई, कालाधन एवं काली अर्थव्यवस्था के बीच के अंतर को रेखांकित करते हुए इनके अंतर्संबंधों का भारतीय अर्थव्यवस्था पर हो रहे दुष्प्रभाव का मूल्यांकन करते हैं।

एक अन्य महत्वपूर्ण लेख अरविंद मोहन का है। इसमें उन्होंने पिछले 20 वर्षों के विकास की जांच विभिन्न आयामों में की है। उन्होंने रुचिकर ढंग से विक्टर ह्यूगो की उक्ति का उल्लेख किया है कि ''जिस विचार का समय आ चुका होता है उसे रोकने की हिम्मत कोई नहीं कर सकता।'' इसी उक्ति के साथ तत्कालीन वित्तमंत्री मनमोहन सिंह ने 24 जुलाई, 1991 को बजट पेश करते हुए आर्थिक उदारीकरण एवं निज़ीकरण की शुरुआत की थी। पुन: आज 20 साल बाद वही मनमोहन सिंह भारत के प्रधानमंत्री की हैसियत से संयुक्त राष्ट्र को संबोधित करते हुए भूमंडलीकरण पर गंभीर सवाल उठाते हुए ब्रेटनवुड संस्थाओं (विश्व बैंक, अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष इत्यादि) की प्रासंगिकता पर भी सवाल खड़े कर रहे हैं। इससे यह संकेत मिलता है कि जिस विचार के जाने का समय आ गया है उसे कोई बचा भी नहीं सकता। पर विडंबना यह है कि आज जब संपूर्ण विश्व में नवउदारवादी आर्थिक नीतियां मुंह की खा रही हैं, भारत में कुछ अर्थशास्त्री आर्थिक सुधार के दूसरे चरण की वकालत कर नवउदारवादी आर्थिक नीतियों की पैरोकारी में लगे हैं। इसी संदर्भ में भारत के प्रमुख राजनीतिक दलों की लगभग एक जैसी आर्थिक नीतियों की खोखलेपन की पोल खोलते पुस्तक में दो लेख लिखे गए हैं। पहला, अरुण कुमार त्रिपाठी द्वारा एवं दूसरा, कृष्ण मुरारी द्वारा।

त्रिपाठी ने तो अन्य राजनीतिक दलों के नीतिगत विकल्पहीनता एवं वैचारिक दिवालियेपन के साथ-साथ वामपंथी पार्टियों को भी नहीं बख़्शा है। एनडीए एवं यूपीए की एक जैसी आर्थिक नीतियां जहां केंद्र में स्पष्ट दिखाई देती हैं वहीं पश्चिम बंगाल में पिछले 34 सालों तक शासन कर चुकी वामपंथी मोर्चे के नीतिगत ढुलमुल रवैये के कारण उन्हीं की नीतियों का सहारा लेकर एक दूसरी पार्टी के सत्ता में आने को त्रिपाठी 2011 की बड़ी राजनीतिक परिघटना मान रहे हैं। प्रणव वर्द्धन एवं शंकर गोपालकृष्णन को उद्धृत करते हुए कृष्ण मुरारी ने नवउदारवादी नीतियों के प्रति अस्पष्टता के कारण माना कि यह व्यापक समर्थन वाला चुनावी मुद्दा नहीं है तथा यह किसी भी राजनीतिक दल के स्पष्ट, घोषित एवं प्रभावशाली विचारधारा के रूप में विकसित नहीं हो सका है। 2007 का गुजरात चुनाव एक अपवाद मात्र है जहां संघ-नवउदारवादी गठबंधन ने बड़ी जीत हासिल की।

एक अन्य लेख में प्रो. वी. उपाध्याय महंगाई एवं खाद्य सुरक्षा के अंतर्संबंधों को रेखांकित करते हुए बढ़ती महंगाई से हुए आर्थिक नुक़सान से आगे जाकर इसे सरकार की वैधता पर प्रश्नचिह्न बताते हैं। श्री उपाध्याय 2010-11 के केंद्र सरकार की आर्थिक समीक्षा की एक व्याख्या (जिसमें कहा गया है कि मनरेगा जैसे कार्यक्रमों से ग़रीबों की क्रयशक्ति बढ़ी है) का सहारा लेते हुए यह प्रश्न करते हैं कि अगर ग़रीबों की क्रयशक्ति बढ़ने से महंगाई बढ़ी है तो करोड़ों लोग भुखमरी जैसी स्थिति में क्यों जी रहे हैं? एक अन्य लेख में सरकार की नवउदारवादी आर्थिक नीतियों का भारत की कृषि पर दुष्प्रभाव की व्याख्या करते हुए किसानों, विशेषकर सीमांत किसानों की बदहाली का चित्रण किया गया है एवं साझा उत्पादन आधार की ज़रूरत पर बल दिया गया है। हमारे देश में औद्योगिक विकास का एक सच यह भी है कि यह कुछ ही राज्यों एवं महानगरीय इलाक़ों तक ही सीमित है। इससे देश में क्षेत्रीय असंतुलन बढ़ा है और गांव एवं शहर के बीच की खाई और गहरी हुई है। संतुलित विकास के लिए देश की नीतियों में परिवर्तन की आवश्यकता पर बल देते हुए प्रो. वी. उपाध्याय यह निष्कर्ष निकालते हैं कि तक़नीक का यथावत अंधानुकरण आय तथा संपत्ति केंद्रीकरण, ऊर्जा के महंगे होने तथा पर्यावरण प्रदूषक स्रोतों पर बढ़ती निर्भरता, सामाजिक प्राथमिकताओं के प्रति संवेदी सामाजिक उद्यमिता को जागृत और सक्रिय करने के प्रयासों की अनुपस्थिति आदि, सोच, सिद्धांत, मूल्य नीतियों तथा क्रियान्वयन– हर क्षेत्र पर नकारात्मकता का ग्रहण लगा रहे हैं।

पुस्तक के एक अध्याय में डॉ. ए.के. अरुण आम आदमी की दो मुख्य आवश्यकताएं- शिक्षा और स्वास्थ्य को 'कारपोरेटीकरण के ग्रास' के रूप में विश्लेषित करते हुए, स्वास्थ्य के मामले में सरकारी नीतियों एवं प्रयासों में व्याप्त भ्रष्टाचार एवं खोखलेपन को उजागर करते हैं। कालाजार, मलेरिया, पोलियो, ट्यूबरकुलोसिस इत्यादि बीमारियों को जड़ से उखाड़ पाने की लाचारी के साथ-साथ सरकार अब स्वास्थ्य क्षेत्र को तेज़ी से निज़ी क्षेत्र में धकेल रही है। 'सबको मुफ़्त स्वास्थ्य' सेवा उपलब्ध कराने के संवैधानिक कर्तव्य की इतिश्री केवल कुछ स्वास्थ्य कार्यक्रमों की शुरुआत कर सरकार महंगे, निज़ी अस्पतालों एवं नर्सिंग होम को खुली छूट दे रही है। यह लेख गांव एवं शहरों के बीच चिकित्सीय सुविधाओं में अंतर को दर्शाते हुए इससे उबरने एवं कम करने की चेतावनी देता है। एक स्वास्थ्य पत्रिका *लैनसेट* की एक रिपोर्ट का हवाला देते हुए लेखक कहते हैं कि भारतीय अपने इलाज ख़र्च का 78 फीसदी स्वयं वहन करते हैं अर्थात मात्र 22 फीसदी चिकित्सकीय व्यय ही सरकार के खाते में आता है। इससे भी सरकारी नीतियों एवं कार्यक्रमों की पोल खुलती है।

एक अन्य लेख सुनील द्वारा लिखा गया है जिसमें राजनीति के घोटाले एवं घोटाले की राजनीति का विश्लेषण किया है। इस अध्याय में भी देश की समकालीन परिस्थिति में राजनीति एवं व्यापार के घालमेल के लिए उदारीकरण, वैश्वीकरण, बाज़ारीकरण एवं कंपनीकरण के मौजूदा दौर को जिम्मेदार माना गया है। पुस्तक के एक अन्य अध्याय में कमल नयन काबरा ने काली अर्थव्यवस्था और 'याराना पूंजीवाद' को नवउदारवाद के अंतरंग दुष्फल के रूप में चिह्नित किया है। यहां प्रो. काबरा ने 'याराना पूंजीवाद' को पारिभाषित करते हुए इसे 'भ्रष्टाचार या रिश्वतखोरी के आधार पर कानूनी स्तर पर सबके प्रति समदर्शी व्यवहार से अपने चहेतों के पक्ष में ठोस आर्थिक वित्तीय लाभदायक झुकाव' बताया है।

फिक्की एवं सीआईआई रिपोर्ट का हवाला देते हुए एक लेख में राहुल वर्मन एवं मनाली चक्रवर्ती ने माओवाद के प्रति उद्योगपतियों की सोच एवं राणनीति को विश्लेषित किया है। एक अन्य लेख बहुत ही अलग एवं आकर्षक शैली में रामशरण जोशी ने लिखा है। इसमें कुछ काल्पनिक परंतु वैचारिक विभेदीकरण पर आधारित देश के सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक ढांचे को पुनर्रचित करने का प्रयास किया गया है। इसे यथार्थ के धरातल पर उतारकर इसके परिणामों एवं संभावनाओं को व्याख्यायित किया गया है। इस लेख के अंत में 42 विकल्पों द्वारा हमारे लोकतंत्र को इसके वास्तविक लक्ष्यों की ओर अग्रसर करने का रोडमैप प्रो. जोशी ने तैयार किया है।

मनाली चक्रवर्ती का लेख 15वीं जनगणना (2011) एवं इसपर आधारित पहली अंतरिम रिपोर्ट को आधार बनाकर लिखा गया है। इसमें जनगणना के सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों पहलुओं का जिक्र करते हुए चीन की जनसंख्या नीति से तुलना की गई है।

पुस्तक के अंत में कमल नयन काबरा द्वारा हाल ही के सर्वोच्च न्यायालय के उस फ़ैसले को आधार बनाकर (जिसमें न्यायालय ने सलवा जुडूम को अवैध घोषित किया है) अनुदित लेख में नक्सलवाद और माओवादी राजनीति को लोकतांत्रिक भारत के एक स्पष्ट विरोधाभास के रूप में चिह्नित किया है।

कुल मिलाकर यह पुस्तक न केवल पिछले दो दशकों में भारत में आर्थिक वृद्धि एवं विकास के अंतर्विरोधों को विश्लेषित करती है बल्कि एक वैकल्पिक समाधान ढूंढने का प्रयास करती है। पुस्तक में तथ्यों एवं आंकड़ों को तर्कों के साथ स्थापित किया गया है एवं बहुत ही रुचिकर तरीक़े से उन्हीं आंकड़ों का सहारा लेकर विकास के काले पक्ष को दर्शाया है। यह पुस्तक उन पाठकों एवं शोधार्थियों के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो सकती है जो भारत के समकालीन राजनीतिक अर्थशास्त्र में गहरी रुचि रखते हैं। इन सबसे ख़ास बात यह कि इस पुस्तक के सभी लेखक अपने क्षेत्र के विशेषज्ञ हैं एवं सभी लेख मूल रूप से हिंदी में ही लिखे गए हैं। एक बात इस पुस्तक को और संपूर्णता प्रदान करती यदि इसमें एक अध्याय 'भारत में शिक्षा एवं इस पर नवउदारवादी आर्थिक नीतियों के दुष्प्रभाव' की चर्चा को भी शामिल किया गया होता। ❑

(समीक्षक दिल्ली विश्वविद्यालय में राजनीति विज्ञान के शोधार्थी हैं।
ई-मेलः utpalramjas@gmail.com)

रोज़गार समाचार

साप्ताहिक

क्या आप सरकारी/सार्वजनिक क्षेत्र उपक्रम/कर्मचारी चयन आयोग/संघ लोक सेवा आयोग/ रेलवे भर्ती बोर्ड/सशत्र सेनाओं/बैंकों में रोज़गार तलाश रहें हैं?

रोज़गार समाचार आपका श्रेष्ठ मार्गदर्शक है। यह विगत तीस वर्षों से नौकरियों के लिए सबसे अधिक बिकने वाला साप्ताहिक है। आप भी इसके सहभागी बनें।

आपका हमारी वेबसाइटः *employmenteews.gov.in* पर स्वागत है, जो कि

- नवीनतम प्रौद्योगिकी से विकसित है।
- उन्नत किस्म के सर्च इंजिन से युक्त है।
- आपकेप्रश्नोंकाविशेषज्ञोंद्वारा शीघ्र समाधान करती है।

रोज़गार समाचार/एम्प्लाएमेंट न्यूज की प्रति के लिए निकटतम वितरक से संपर्क करें।

व्यापार संबंधी पूछताछ के लिए संपर्क करें :

रोज़गारसमाचार,पूर्वीखण्ड4,तल5,रामकृष्णपुरम,नईदिल्ली।

फोन : 26182079, 26107405, ई–मेल : enabm sa@yahoo.com

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

प्रकाशक व मुद्रक के. गणेशन, महानिदेशक द्वारा प्रकाशन विभाग के लिए ब्रजबासी आर्ट प्रेस लिमिटेड, ई-46/11, ओखला औद्योगिक क्षेत्र, फेस-2, नयी दिल्ली-110 020 से मुद्रित एवं प्रकाशन विभाग, सूचना भवन, सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड, नयी दिल्ली-110 003 से प्रकाशित। वरिष्ठ संपादक : राकेशरेणु

Licenced under U (DN)-52/09-11
आर.एन.आई. 951/57
R.N.I. 951/57

रजि.सं.डीएल (एस)-05/3231/2012-14 तथा डाक व्यय की पूर्व अदायगी के बिना डाक में डालने के लिए लाइसेंस-प्राप्त
Reg. No. D.L.(S)-05/3231/2012-14 Licenced to post without pre-payment at RMS, Delhi
26 दिसंबर, 2011 को प्रकाशित • 29-30 दिसंबर, 2011 को डाक द्वारा जारी

नवीन संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण 2011-12
(30 नवम्बर, 2011 तक के अद्यतन आँकड़े)

संघ एवं राज्य सिविल सेवा परीक्षाओं के सामान्य अध्ययन हेतु अत्यन्त लाभदायक सामग्री. विभिन्न विश्वविद्यालयों के भारतीय अर्थशास्त्र के प्रश्न-पत्र के लिए भी उपयोगी.

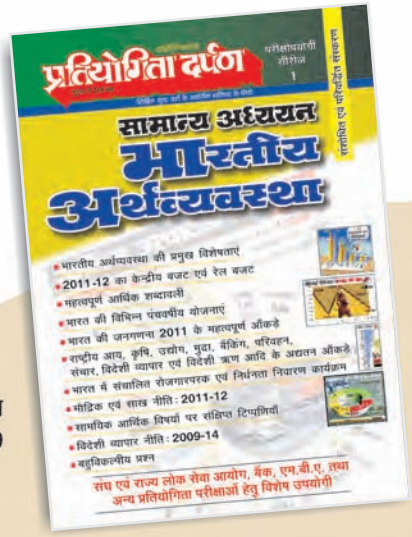

मूल्य
₹ 235.00

Price
₹ 240.00

टॉपर्स की राय में...

➥ प्रतियोगिता दर्पण की अतिरिक्तांक सीरीज विषयों/विशिष्ट विषयों की पुस्तकों की सर्वश्रेष्ठ सीरीज है. यह परीक्षार्थियों के लिए अत्यन्त लाभप्रद है. प्रतियोगिता दर्पण के 'अर्थव्यवस्था' अतिरिक्तांक की संस्तुति मैं विशेष रूप से करता हूँ.
—अजय प्रकाश
सिविल सेवा परीक्षा, 2010 में 9वाँ स्थान

➥ मैंने प्रतियोगिता दर्पण के अर्थव्यवस्था अतिरिक्तांक का अध्ययन किया है जो मेरे लिए तैयारी के दौरान काफी उपयोगी साबित हुआ है. —शिव सहाय अवस्थी
सिविल सेवा परीक्षा, 2010 में हिन्दी माध्यम से सर्वोच्च स्थान

➥ प्रतियोगिता दर्पण का भारतीय अर्थव्यवस्था अतिरिक्तांक तो मेरा पसंदीदा है. प्रारम्भिक और मुख्य दोनों परीक्षाओं के लिए मैं काफी हद तक इस पर निर्भर रहा हूँ. अन्य अतिरिक्तांक भी काफी उपयोगी हैं. —राहुल कुमार
सिविल सेवा परीक्षा, 2010 में हिन्दी माध्यम से द्वितीय स्थान

➥ मैंने अर्थव्यवस्था तथा दर्शनशास्त्र के अतिरिक्तांक पढ़े थे जो कि लाभदायक सिद्ध हुए. —मिथिलेश मिश्र
सिविल सेवा परीक्षा, 2010 में हिन्दी माध्यम से तृतीय स्थान

➥ मैंने प्रतियोगिता दर्पण के राजव्यवस्था तथा अर्थव्यवस्था के अतिरिक्तांकों को पढ़ा, वास्तव में दोनों स्पेशल अंक बेहतरीन हैं. इसे प्रत्येक अभ्यर्थी को पढ़ना चाहिए. —जय प्रकाश मौर्य
सिविल सेवा परीक्षा, 2009 में हिन्दी माध्यम से सर्वोच्च स्थान

मुख्य आकर्षण

* भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रमुख विशेषताएं * महत्वपूर्ण आर्थिक शब्दावली * भारत की जनगणना 2011 के महत्वपूर्ण आँकड़े * राष्ट्रीय आय, कृषि, उद्योग, मुद्रा, बैंकिंग, परिवहन, संचार, विदेशी व्यापार एवं विदेशी ऋण आदि के अद्यतन आँकड़े * मौद्रिक एवं साख नीति 2011-12 * 2011-12 का केन्द्रीय बजट एवं रेल बजट * विदेशी व्यापार नीति * भारत की विभिन्न पंचवर्षीय योजनाएं * भारत में संचालित रोजगारपरक एवं निर्धनता निवारण कार्यक्रम * प्रमुख केन्द्रीय मंत्रालयों के नवीनतम प्रतिवेदनों पर आधारित महत्वपूर्ण अध्ययन सामग्री * सामयिक आर्थिक विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ * महत्वपूर्ण बहुविकल्पीय प्रश्न.

आज ही अपने निकटतम पुस्तक विक्रेता से सम्पर्क कर अपनी प्रति सुरक्षित कराएं

प्रतियोगिता दर्पण
2/11 ए, स्वदेशी बीमा नगर, आगरा – **282 002** फोन : 4053333, 2531101, 2530966; फैक्स : (0562) 4053330
Website : www.pdgroup.in E-mail : care@pdgroup.in
ब्राँच आफिस : • नई दिल्ली फोन : 011-23251844/66 • हैदराबाद फोन : 040-66753330
To purchase online log on to **www.pdgroup.in**

YH-237/2011